दृष्टान्तों की संभवता और संलग्नता के विषय में ग्रंथकार ने कई स्थलों पर नोट देकर लिख दिया है कि—"यद्यपि यह दृष्टान्त असंभव है, पर उपयोगी होने से लिख दिया।" तथापि अधिकांश दृष्टान्त इस प्रकार लिखे गये हैं कि पढ़ने से उनकी आख्यायिकायें निरी मनगढ़ंत नहीं जान पड़तीं; वरन् सत्यघटना-मूलक और संभाव्य ज्ञात पड़ती हैं। किसी सत्य घटना का उल्लेख करते हुए उसका परिणाम दिखा कर जो उपदेश किया जाता है उसका चित्त पर जैसा कुछ विलक्षण प्रभाव पड़ता है वैसा कपोलकल्पित, अनर्गल और असंभव बात कहने से नहीं होता। ग्रन्थकार ने इस बात का यथाशक्य ध्यान रक्खा है और ऐसा करने में दृष्टान्तों की मनोहरता को भी बिगड़ने से बचाया है।

एक और विशेषता जिसने इसकी आख्यायिकाओं का सौन्दर्य बढ़ाने में सहायता की है, दृष्टान्तों के मध्य और समाप्ति पर उद्धृत श्लोकादि हैं। ये श्लोक वाक्य-रत्न वैराग्य, नीति एवं ज्ञान से पूर्ण हैं और आख्यायिकाओं के बीच में उनका उद्धृत होना सोने में सुगन्ध के समान है। दृष्टान्तों के साथ इन श्लोकों के संग्रह करने में ग्रन्थकर्ता ने बड़ा परिश्रम किया है और कहना पड़ता है कि इन श्लोकों के कारण यह संग्रह हितोपदेश और पंचतंत्र की शैली का सा एक ग्रन्थ बन गया है जिससे प्रत्येक पुस्तकावलोकन-प्रेमी विद्वान् के संग्रह करने तथा विद्याभ्यासी बालक बालिकाओं को उपहार में देने योग्य हो गया है।

इस पुस्तकरत्न का प्रथम संस्करण सन् १९१० में धर्मदिवाकर प्रेस मुरादाबाद से निकल चुका है, किन्तु जहां तक हमारा अनुमान है या तो प्रेस की असावधानी अथवा संशोधक महोदय के प्रमाद वा संशोधन-ज्ञानन्यूनता ने पुस्तक को एक प्रकार चौपट ही कर दिया था, यहां तक कि अनेक स्थलों पर पढ़ने से उसका कुछ अर्थ ही व्यक्त न होता था; तथापि यह संग्रह गुणग्राही पाठकों को ऐसा रुचिकर हुआ कि इसके प्रथम संस्करण की कुल कापीयां बिक गईं और पाठकों की मांग होने पर यह आवश्यकता हुई कि इसका दूसरा संस्करण निकाला जाय। आर्य-पुस्तकालय, बरेली के अध्यक्ष बाबू श्यामलाल वर्म्मा

ने, अब की बार, इस पुस्तक को जब लखनऊ के ऐंग्लो-ओरियंटल प्रेस में छपने को दिया तो उन्होंने इसका भाषा-दोष दूर करने का भार मुझे दिया। मैंने यह समझकर कि यह छपी हुई किताब है, इसमें कदाचित् अधिक सुधार की आवश्यकता न होगी, इस भार को स्वीकार कर लिया। किंतु जिस समय मेरे पास इसके प्रूफ आने लगे तो मुझे उसमें बड़ी ही गड़बड़ देख पड़ी यहां तक कि पुस्तक फिर से लिखी जाने योग्य जान पड़ी; किन्तु प्रकाशक महोदय इसके लिए असमर्थ थे, इस कारण प्रूफों में ही जो कुछ हो सका सुधार किया गया। जिन महाशयों को हिन्दी के प्रेसों में पुस्तकें छपाने का अवसर मिला होगा वे भली भांति जानते हैं कि प्रेसवाले प्रूफ में अधिक कोंटछांट निकालने से कितना हाहाकार करते हैं और विशेष कर उस दशा में जब कि उनसे काम शीघ्र छाप कर देने का वादा। विद्यार्थी नहीं [illegible] इत्यादि कारणों से पुस्तक की भाषा मार्जित और उसका विषयक्रम ठीक [illegible] ना सका; किन्तु इस बात का प्रयत्न किया गया है कि पुस्तक-लिखित भाषा के प्रत्येक वाक्य का मर्म हृदयंगम करने में पाठकों को कहीं भटकना न पड़े। श्लोकों को भी यत्र तत्र थोड़ा बहुत सुधार दिया गया है, पर अधिकांश श्लोक जैसे के तैसे ही रक्खे गये हैं, उनमें परिवर्तन नहीं किया गया। जिन दृष्टान्तों पर कुछ शीर्षक नहीं दिया था उनपर शीर्षक देकर सब की विषय-सूची भी बना दी गई है जिससे पाठकों को सुविधा होगी। पहले संस्करण में दृष्टान्तों की संख्या १९४ थी किन्तु इस बार २०३ है, इससे पाठक यह न समझें कि इस बार ९ दृष्टान्त बढ़ा दिये गये हैं; दृष्टान्त उतने ही हैं, केवल उनकी संख्या ठीक होजाने से वे २०३ हो गये हैं।

अब विशेष कुछ न कह कर हम पाठकों से एक बार इस पुस्तक के अवलोकन करने का अनुरोध करते हैं।

सआदतगंज, लखनऊ
२५-४-१६ } चन्द्रिकाप्रसाद गुप्त।

॥ ओ३म् ॥

दृष्टान्त-सागर

प्रथम भाग

मंगलाचरण

विश्वा[illegible] नाथ गुणागरम् ।
दुर्गुण दुख [illegible] दुख सब भंजनम् ॥
कल्याणकारी वस्तु [illegible] साधन दायकम् ।
स्व-प्रकाशरूप प्रकाशयुत सूर्यादि ग्रह सब साधकम् ॥
प्रभु जगत के उत्पन्न होने पूर्वमपि थे उपस्थितम् ।
हो आत्मज्ञान शरीर आदिक शक्ति के दाता परम् ॥
तुव ध्यान धरते योगि ज्ञानी देव ऋषि मुनि आदिकम् ।
पावें परमपद मोक्ष जो है जन्म-मरण-विनाशकम् ॥
इस दास को निज भक्त जानि कृपा करो करुणाकरम् ।
सब दुःख दारिद दूरि कर राखो शरण शरणागतम् ॥

१—ईश्वर विश्वास

परमात्मा पर सच्चा प्रेम रखते हुये जो मनुष्य उस पर सच्चा विश्वास रखता है और पुरुषार्थ करता है उसकी सम्पूर्ण अभिलाषाओं को परमेश्वर पूर्ण करते हैं। यथा:—

एक अनाथ बेवा स्त्री अत्यन्त ही दीन और धर्मज्ञ थी। उस के दो बालक थे—एक ६ वर्ष का, दूसरा ८ वर्ष का। बेचारी बेवा दीनता के कारण दूसरे पुरुषों की सेवा, पीसना कूटना करके अपने लड़कों का पालन पोषण किया करती थी परन्तु बच्चों को नित्य दूध बताशे तथा उत्तम भोजन खिलाया करती थी और उसने उनके पढ़ने आदि का पूर्ण प्रबन्ध तथा पढ़ाने के व्यय का भार भी उठा रक्खा था; और अपना निर्वाह केवल सूखी रोटियों से करती थी। और किसी किसी दिन वह भी पेट भर नहीं मिलती थी। बच्चे बड़े धर्मात्मा और सुशील थे। नित्य जिस समय वे पाठशाला से पाठ पढ़ कर आते तो आते ही माता से दूध बताशे मांगते थे। एक दिन ऐसा अवसर आया कि मा[illegible] न कमाने के कारण कुछ न मिला और बच्चों [illegible] आते ही नित्य की भांति माता से दूध बताशे [illegible]। माता ने उत्तर दिया कि "बेटा, आज तो मेरे पास कुछ नहीं है आज तो तुम्हें परमेश्वर ही दूध बताशे देगा तो पाओगे, नहीं तो मेरा कोई उपाय नहीं" बच्चों ने पूछा—"माता परमेश्वर कौन है?" माता ने कहा—"बेटा वह सबका पिता, सबका पालन पोषण करनेहारा है।" यह सुन कर बच्चों ने कहा—"तो माता वह हमें दूध बताशे देगा?" माता ने कहा—"अवश्य।" अब तो बच्चों के हृदय में सच्चा विश्वास हो गया कि माता ही दूध बताशे देने वाली नहीं किन्तु माता के इतर और दूसरा परमेश्वर भी देनेवाला है। बच्चों ने पुनः माता से पूछा कि—"माता, वह परमेश्वर कहां रहता है?" माता ने साधारण ही ऊपर को उंगली उठा दी। बच्चे चुपचाप पुस्तकें उठा कर पाठशाला को चल दिये और मार्ग में परस्पर दोनों भाई यह सम्मति करते जाते थे कि—"भाई, उस परमेश्वर तक ऊपर कैसे चलें कि जो उससे दूध बताशे मांगें?"

दूसरे ने कहा—"भाई, ऊपर पहुंचना तो कठिन है परन्तु हमने एक बात सोची है कि परमेश्वर को हम तुम दोनों एक चिट्ठी लिखें और पण्डित जी से छुट्टी मांग चल कर डाक में डाल आवें।" पहले ने कहा—"यह बहुत ही ठीक है।" दोनों पाठशाला पहुंच पत्र लिखने लगे—

"पिता परमात्मा! आप सबके पालन पोषण करनेहारे हो, हम दोनों भाई आपको नमस्कार करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि आध सेर दूध और एक छटांक पताशे हम दोनों भाइयों को कृपा कर नित्य भेज दिया कीजिये, हम आपके बच्चे हैं, हमें आपने बनाया है, इससे हमारा पालन भी कीजिये। अस्तु!

आपके सेवक,

दो बच्चे, जिनको आप जानते हैं।

चिट्ठी का सिरनामा यानी पता यह था:—

चिट्ठी पहुंचे पिता परमात्मा के पास—

बच्चे पण्डित जी से छुट्टी माँग पोस्ट आफिस में चिट्ठी डालने गये। डाक बाबू से पूछा—"बाबूजी, यह चिट्ठी कहां डालें?" बाबू ने कहा—"उस लेटरबाक्स में डाल दो।" लड़कों का शरीर छोटा था और लेटरबाक्स ऊँचे पर गड़ा हुआ था। बच्चे ऊपर उछल उछल कर चिट्ठी डालते थे परन्तु वे उसे लेटरबाक्स में न डाल सके। बाबू ने लड़कों को देख कर कहा—"लाओ हम तुम्हारी चिट्ठी डाल देंगे।" बच्चों ने चिट्ठी दे दी। बाबू पत्र हाथ में ले पता पढ़ कर अत्यन्त ही चकित हुआ और उसने बच्चों की ओर देखा। बच्चे सारे दिन के भूखे मलीन मुख अति दुखित थे। बाबू ने कहा-"तुम किसके बेटे हो, यह चिट्ठी किसने लिखी है?" बच्चों ने कहा—"अमुक वैद्य के लड़के हैं हम घर में नित्य दूध बताशे पाते थे, हम दोनों आज घर गये और माता से दूध

बताशे मांगे तो माता ने कहा—'बेटा आज तो तुम्हें परमेश्वर ही दूध बताशे देगा तो मिलेंगे नहीं तो मेरे पास नहीं। हम दोनों ने आज कुछ भोजन भी नहीं खाया और घर से भूखे ही पाठशाला को चल दिये और पाठशाला में आकर हम दोनों ने पिता परमात्मा को यह पत्र लिखा था सो डालने आये थे।"

बाबू—तुम जानते हो परमेश्वर कहां है?

बच्चे—माता ने बताया है कि ऊपर है।

बाबू—क्या हम तुम्हारे इस पत्र को खोल कर पढ़ें?

बच्चे—हां बाबूजी, पढ़ लीजिये।

बाबू ने पत्र खोल कर पढ़ा और बच्चों को दुखी देख कहा कि—"तुम दोनों नित्य आध सेर दूध और एक छटाँक बताशे हम से ले जाया करो।',

> वृत्यर्थं नाति चेष्टेत सा हि धात्रैव निर्मिता।
> गर्भादुत्पतितो जन्तो मातुः प्रस्रवतस्तनौ॥

२—झूठे आडम्बर में सच्चा ध्यान

एक कुम्हार का युवा लड़का एक राजा के यहां पान देने गया। वहां राजा की युवती मनमोहनी राजपुत्री को छत पर देख वह चकित हो गया और उसके हृदय में इस प्रकार काम बाण लगे कि घर आकर वह उस मोहनी के शोक में व्याकुल लेट रहा और खान पान सभी भुला कर केवल उस सुन्दरी के ध्यान में हाय हाय करने लगा। उसके घर के संपूर्ण लोगों ने उससे पूछा कि—"तुम्हारी क्या दशा है, तुमको क्या हो गया, क्या कुछ रोग है?" परन्तु युवक ने किसी से कुछ न कहा। थोड़ी देर के बाद उसकी माता ने उससे पूछा तो उसने अपनी माता से सच्चा सच्चा [illegible]

कि—"मैं आज राजा के यहाँ पात्र देने गया था, वहां राजपुत्री को देख यह मेरी दशा हो गई, सो चाहे मेरे प्राण चले जायं परन्तु जब तक मुझे उस राजपुत्री के पुनः दर्शन न मिलेंगे तब तक भोजन न करूंगा।" माता ने कहा—"उठो आज भोजन करो। आज से ६ मास के पश्चात् मैं तुम को राजपुत्री का दर्शन करा दूंगी।"

भोजन करने के पश्चात् उस की माता ने कहा कि—"तुम यहां से कहीं ६ मास के लिये चले जाओ और ६ महीने बाद जब आना तो साधू का भेष रख कर आना और आकर राजा की फुलवारी में ठहरना, तुम्हें राजपुत्री के दर्शन हो जायेंगे।" कुम्हार के बच्चे ने वैसा ही किया। जब ६ महीने पश्चात् राजा की वाटिका में साधू आया तो उसने एक मनुष्य के द्वारा अपनी माता को बुलवा कर कहा कि—"अब राजपुत्री के दर्शन कराओ।" माता ने कहा —"तुम आंखें बन्द करके ध्यान से बैठ जाओ, मैं तुम्हें अभी दर्शन कराती हूं।" उस कुम्हार की माता ने गांव भर में यह हल्ला कर दिया कि—"एक बड़े पहुंचे हुए महात्मा आये हैं और उनसे जो मांगो सो देते हैं।" यह सुन ग्राम के संपूर्ण नर नारी जाने लगे। यह बात राजा तथा राज महलों में भी पहुंची। राजा अपनी रानी तथा राजपुत्री सहित महात्मा के दर्शनों को गये। ज्यों ही राजा, रानी और राजपुत्री इस के सामने पहुंचे तो कुम्हार की माता ने पीछे से संकेत से कहा कि-"बेटा राजा रानी और राजपुत्री आगे खड़े हैं अब दर्शन कर लो

कुम्हार के लड़के ने सोचा कि आज जब कि मैं झूठा साधु महात्मा बना हुआ हूं तब तो मेरे आगे तमाम गांव के नर नारी तथा राजा रानी और राजपुत्री खड़ी हैं और यदि मैं सच्चा साधु महात्मा बन जाऊं तो न जाने मुझे क्या २ फल प्राप्त

होंगी ? ऐसा सोच कर कुम्हार के लड़के ने पुनः ध्यान से आखें न खोलीं और संपूर्ण आयु के लिये वह परमात्मा का सच्चा भक्त बन गया।

३—जो चाहो वह मिले

जा पर जेहि कर सत्य सनेहू।
सो तेहि मिलै न कछु सन्देहू॥

एक राजा के बहुत सी रानियां थीं राजा जी किसी कार्य्य वश विदेश को गये। वहाँ उन्हें बहुत समय तक रहना पड़ा। रानियों ने सुना कि राजा जिस देश में हैं वहां की अमुक अमुक वस्तुयें अच्छी होती हैं। ऐसा सुन किसी रानी ने महाराज को लिखा कि वहां की अंगूठी बहुत अच्छी होती है आप हमारे लिये अवश्य लायें। किसी ने लिखा कि वहां की पंचलड़ी बहुत अच्छी होती है आप अवश्य लायें। किसी ने लिखा वहाँ की फुलवर बहुत अच्छी होती हैं आप अवश्य लायें इस प्रकार संपूर्ण रानियों ने नाना प्रकार की वस्तुयें लिखीं पर एक रानी ने यह लिखा कि—'मुझे किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं मुझे बहुत काल से आपके दर्शन नहीं मिले आपके दर्शनों की आवश्यकता है सो दासी को आप कृतार्थ कीजिये। राजा ने संपूर्ण रानियों के पत्र पढ़े और उनकी याचनाओं के अनुसार भृत्यों से वस्तुयें मंगवाईं और अपनी इच्छानुसार भी जो चाहा वह मंगवाया। घर आते ही उन्होंने संपूर्ण रानियों के प्रार्थनापत्र खोले और जिसने जो वस्तु मांगी थी उसको वह दी। शेष वस्तुओं को जिन्हें राजा जी अपनी इच्छानुसार लाये थे लेकर उस रानी के गृह में गये जिसने लिखा था कि

मैं केवल आपको चाहती हूं। यह देख अन्य रानियां ने बहुत कुछ ईर्ष्या की और सबने महाराज से कहा कि—'महाराज हम लोगों ने क्या अपराध किया था जो आप हमारे यहां नहीं आये और हमको क्यों एक ही वस्तु दी गई? इस रानी को आपने क्यों बहुत सी वस्तुयें दीं?" महाराज ने उत्तर दिया —'तुम अपने अपने प्रार्थनापत्र देखो, तुमने जिसे चाहा वह तुम्हें मिला; और इस रानी का प्रार्थनापत्र देखो इसने जिसे चाहा वह इसे मिला।"

बस, इसी भांति संसार में जो मनुष्य जिस वस्तु की उपासना करता है उसको परमेश्वर वह वस्तु देता है—अर्थात् रुपये की उपासना वाले को रुपया, स्त्री की उपासनावाले को स्त्री, मिट्टी की उपासनावाले को मिट्टी, जल की उपासना वाले को जल, पत्थर की उपासना वाले को पत्थर; किन्तु परमात्मा के उपासक को परमात्मा और परमात्मा के संपूर्ण पदार्थ प्राप्त होते हैं इस लिये वस्तुओं की उपासना छोड़ परमात्मा की उपासना कीजिये।

यो यमर्थं प्रार्थयते यदर्थं घटते श्रयः।
सोऽवश्यं तदवाप्नोति न चेच्छ्रान्तो निवर्तते॥

४—ईश्वर जो करता है अच्छा ही करता है

एक राजा के मन्त्री का यह सच्चा विश्वास था कि ईश्वर जो कुछ करता है अच्छा ही करता है। एक बार राजा और मन्त्री जी आखेट के लिये किसी भयानक वन में पहुंचे। वहां सिंह पर शस्त्र प्रहार करने से राजा की एक अंगुली कट गई राजा ने मन्त्री से कहा—'मन्त्री जी हमारी अंगुली कट से

कट गई।" मन्त्री ने कहा—"परमेश्वर जो कुछ करता है, अच्छा ही करता है।" राजा यह वाक्य सुन बहुत अप्रसन्न हुये और उन्होंने कहा कि—'हमारी तो अंगुली कट गई और तू यह कहता है कि परमेश्वर जो कुछ करता है अच्छा ही करता है।" यह कह कर मन्त्री को उसी समय निकाल दिया। मन्त्री वन से अपने घर लौट गया। राजा एक दिन आखेट खेलते २ एक दूसरे राज्य में पहुंचे। वहां के राजा को बलिप्रदान के लिये एक मनुष्य की आवश्यकता थी। *दूत इन राजा जी को पकड़ ले गये। जब वहां के पण्डितों ने इन राजा जी को देखा तो इन की अंगुली कटी हुई पाई। पण्डितों ने कहा—"यह तो मनुष्य अङ्ग भङ्ग है। अङ्ग भङ्ग की बलि नहीं दी जाती।" अतः राजा जी छोड़ दिये गये। और प्राण लेकर वे अपने घर को चले। मार्ग में राजा ने सोचा कि मन्त्री सच कहता था कि—"परमेश्वर जो कुछ करता है अच्छा ही करता है। यदि मेरी अंगुली आज कट न गई होती तो मेरा बलिप्रदान कर दिया जाता।'

घर आते ही उसने मन्त्री को बुलवाया। मन्त्री डरते डरते कि राजा न जाने मुझे क्या करेंगे, राजसभा में आये और प्रणाम कर बैठ गये। तब राजा ने मन्त्री से कहा—"मन्त्री तुम्हारा यह कहना नितान्त सत्य है कि ईश्वर जो कुछ करता है अच्छा ही करता है क्योंकि जब हमने वन से आप को निकाल दिया तो हम आखेट खेलते खेलते एक राज्य में पहुंचे। वहां के राजा को बलिप्रदान के लिये एक मनुष्य की आवश्यकता थी, इससे उसके दूत मुझे पकड़ ले गये। मेरी अंगुली कटी होने से वहां के पण्डितों ने मुझे अङ्ग भङ्ग जान छोड़ दिया। मेरी अंगुली कटने से तो ईश्वर ने अच्छा यह

* कुछ समय पहले मूर्ख और नीच लोगों में यह परिपाटी थी।

किया कि मेरे प्राण बचे पर आप को जो मैंने निकाल दिया और इतने दिन तक नौकरी से पृथक किया तो आप के लिये ईश्वर ने क्या अच्छा किया ? मन्त्री ने कहा—"महाराज यदि आप मुझे न निकाल देते और मैं आपके साथ रहता तो आप तो अङ्ग भङ्ग होने के कारण बलिप्रदान से बच आये, पर मैं अङ्ग भङ्ग न होने से बलिप्रदान से कभी न बचता।"

५—ईश्वर हमारा सुख न देख सका

एक सिपाहीराम २० वर्ष नौकरी करके घर आ रहे थे। घर के लिये एक कच्चे रङ्ग की चुनरी अपनी स्त्री के लिये और कच्चे ही रंग के खिलौने अपने लड़कों के लिये और कुछ बताशे भी ला रहे थे। पर मार्ग में वर्षा होने लगी इससे सिपाहीराम की चुनरी और खिलौनों का रंग छूट छूट कर बहने लगा और बताशे सब पानी में घुल गये। यह दशा देख सिपाहीराम ने कहा—'ससुरो अब ही सरग करिबे को रहे। हाय ! २० वर्ष के बाद तो एक कच्ची चुनरी, खिलौने और कुछ बताशे बच्चों को लाये वह भी परमेश्वर से देखा न गया।" थोड़ी ही दूर वे चले थे कि क्या देखते हैं कि एक नाले में दो डाकू बैठे हैं और वे इन पर बन्दूक की गोली चला रहे हैं। पर बंदूक टोपीदार है और पानी होने के कारण बंदूक रंजक खागई, गोली नहीं चलती। तब तो कहते हैं—धन्य हो परमात्मा यदि इस समय वर्षा न होती तो हमारे प्राण ही जाते और हम अपने बाल बच्चों के मुख भी न देख पाते। यह चुनरी खिलौने यहीं पड़े रहते। अब इस विपत्ति से छुटकारा मिले तो मैं सकुशल अपने घर पहुंच कर बाल बच्चों से मिलूंगा। इस लिये हे भगवन ! मैंने अज्ञानता में आपको जो कुछ कहा

अज्ञानता में आपको जो कुछ कहा हो उस अपराध को आप क्षमा कीजिये।"

स एव धन्यो विपदि स्वरूपं यो न मुंचति ।
त्यजत्यर्ककरैस्तप्तं हिमदेहं न शान्तिताम् ॥

६—मुख्य कोष की प्राप्ति

एक विचारे महा दरिद्री पुरुष ने द्रव्य की अभिलाषा में चारो ओर बड़े बड़े नीच ऊंच दुर्गम से दुर्गम स्थानों में टक्करें मारीं पर उसे एक कौड़ी भी कहीं प्राप्त न हुई। वह महान् क्लेशित और निराश हो घर की ओर लौटा आ रहा था। अनायास मार्ग में एक महात्मा से भेंट हो गई। उस दीन पुरुष ने महात्मा जी को प्रणाम किया। और महात्मा जी के पूछने पर संपूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। महात्मा जी ने उस दीन की दशा देख कर कहा— तू इस मन्दिर को जो सामने गिर पड़ा है एक कुदारी और एक तलवार ले कुदारी से मन्दिर को खोद और तलवार से जो तेरे इस कार्य्य में बाधक हों उनको वध करता जा अन्त में तुझे एक बड़ा भारी कोष प्राप्त होगा।" दीन पुरुष ने कुदारी और तलवार ले मन्दिर को खोदना प्रारम्भ किया। थोड़ा ही खोदा था कि उसमें से एक स्त्री निकली जिसको देख दीन ने पूछा तू कौन है और कहां रहती है?" स्त्री ने उत्तर दिया कि— 'मैं ब्राह्मणी हूं मेरा नाम लज्जा है और नेत्रशाला में रहती हूं।" यह सुन दीन ने कहा कि—'तू पृथक बैठ।" और पुनः खोदने लगा थोड़ी ही देर के पश्चात् एक और स्त्री निकली। उससे भी दीन ने प्रश्न किया कि—"तू कौन है और तेरा क्या नाम तथा कहां रहती है?" स्त्री ने उत्तर दिया—"मैं ब्राह्मणी हूं मेरा नाम दया

है और द्वापर में रहती हूं" उससे भी—" तू पृथक बैठ ।" ऐसा कह कर दीन पुनः अपनी रामधुन में लगगया। कुछ ही खोदने के पश्चात् एक तीसरी स्त्री निकली। दीन ने उससे भी वैसे ही प्रश्न किये। स्त्री ने उत्तर दिया कि-"मैं ब्राह्मणी हूं, मेरा नाम कीर्त्ति है और मैं अन्तःपुर की निवासिनी हूं।" दीन उसे भी पृथक बैठा अपना कार्य्य करने लगा। कुछ ही काल के पश्चात् एक और चौथी स्त्री निकली। दीन ने उससे भी उसी भांति पूछा। स्त्री ने उत्तर दिया कि-"कि मैं ब्राह्मणी हूं, मेरा नाम धृति है और मैं मनुआंपुर की निवासिनी हूं।" इसे भी दीन ने अलग बिठा खोदना आरम्भ किया परन्तु उस बीमारी ने पीछा न छोड़ा और अब स्त्री के स्थान में एक बिल्हड़दास हाथ पैर झाड़ते हुये निकले। दीन ने प्रश्न किया कि—"आप रूप कौन हैं कहां आपका निवास है ?" पुरुष ने उत्तर दिया—'मेरी जाति पांति का तो कुछ ठीक नहीं परन्तु हां मेरा नाम काम है और मैं नैत्रशाला का निवासी हूं।" दीन ने कहा-'वहां तो एक स्त्री जिसका नाम लज्जा है रहती है कामने कहा कि—"वह तो मेरी स्त्री ही है।" तब दीन ने कहा "रे दुष्ट, जहाँ लज्जा है वहां तेरा क्या काम ?" ऐसा कह शीघ्र तलवार के द्वारा उसका सिर धड़ से अलग किया और पुनः कुदारी ले खोदने लगा। कुछ ही काल में एक मुस्टण्ड-राम लाल आँखें किये होंठ फरफराते हुये निकले। दीन ने यह भयंकर मूर्ति देख कर इस से भी वही प्रश्न किया। इन्होंने कहा..."जाति के चाण्डाल और हमारा नाम क्रोध और क्रोर-पुर के वासी हैं। दीन ने कहा —"वहां एक स्त्री जिसका नाम दया है, बसती है। क्रोध ने कहा कि—"वह तो मेरी स्त्री ही है।" तब तो दीन ने कहा कि—"रे दुष्ट, जहां दया रहती है वहां तेरा क्या काम ?" ऐसा कह इन्हें भी तलवार

स्त्री अर से अलग किया और पुनः खोदना आरम्भ किया कुछ ही खोदने के बाद एक और थिङ्कड़नाथ चकमक देखते हुये आ विराजे। दीन ने इनको भी देख कहो अपना पुराना प्रश्न किया। थिङ्कड़ जी ने उत्तर दिया कि— "हम जाति के वैश्य हैं और हमारा नाम लोभ है तथा हम अन्तःपुर के वासी हैं।" यह सुन दीन ने कहा कि—"वहाँ तो एक स्त्री कि जिसका नाम शांति है रहती है। लोभ ने, कहा कि— "वह तो मेरी स्त्री ही है।" तब तो दीन ने कहा कि—"ऐ नीच! जहाँ शांति है, वहाँ तेरा क्या काम?" ऐसा कह कर तलवार से इन्हें भी मौत के समर्पण किया और फिर खोदना आरम्भ किया कि थोड़ी ही देर में एक वृद्ध और निकल खड़े हुये। उनसे भी दीनने पूर्ववत प्रश्न किये। वृद्ध ने उत्तर दिया कि— "मैं जाति का सिद्ध हूं और मेरा नाम मोह और मनुष्यपुर का वासी हूं।" यह सुन दीन ने कहा—"रे मूर्ख जहां धृति है वहां तेरा क्या काम?" ऐसा कह इन्हें भी तलवार से उड़ा कर वह सोचने लगा कि—"यह स्त्रियाँ क्या मेरा साथ देंगी? इनसे भी कार्य्य में हानि ही होसकती है। मैं कभी २ इन की ओर देखने लगता हूं और यह कि, एक ही स्त्री से आपत्ति होती है फिर चार चार कौन निबाहेगा। ऐसा सोच समझ उसने कहा कि— लज्जा भी कभी २ दाब करा देती है यथा सन्दिग्धों के भय से बरातों में नाच इत्यादि है जाना; और शांति भी द्रोह उत्पन्न कर देती है; तथा दया भी कभी २ अधर्म का हेतु बन जाती है यथा—

अपात्रे तनुचिन्तनं कृष्य भरतवत् ।

इस लिये इन तीनों को तलवार से मार धृति को अपने साथ ले वह फिर खोदने लगा। अब आगे एक सज्जन हुं का-

ठिन वज्रवत् शिला आपड़ी। किन्तु उसे वह धृति के साथ खोदने लगा। कुछ काल के बाद वह शिला लौट गई और उसे एक महान् कोप प्राप्त हुआ जिसे पा घर आ वह अपने जीवन को आनन्द पूर्वक व्यतीत करने लगा।

यह तो हुआ दृष्टान्त पर इसका दार्ष्टान्त यों है कि यह दीन रूप विवेकाश्रम जी मोक्ष रूपी मुख्य कोष की प्राप्ती के लिए यत्र तत्र भटकते हुये पूर्ण योगी से मिले। योगी ने इनसे कहा —"तुम इधर उधर व्यर्थ परिश्रम क्यों करते हो? तुम इस शरीर रूप मन्दिर को ही ज्ञान रूपी कुदार और वैराग्य रूपी तलवार ले खोदना प्रारम्भ करो और तुम्हारे इस कार्य्य में बाधा डालने वाले जो शत्रु मिलें उनको वैराग्य रूपी तलवार से काटते हुये अपने कार्य्य साधन में लगे रहना।" ऐसा सुन विवेकाश्रम जी इधर उधर भटकना छोड़ ज्ञानमयी कुदार ले आत्मा में ही परमात्मा की प्राप्ती का यत्न करने लगा। जब उस यत्न में इनको काम, क्रोध, लोभ, मोह, आदि ने सताया तब इन्हों ने इन चारों को वैराग्य रूपी तलवार से काट डाला। अब आगे विवेकाश्रम जी को लज्जा, कीर्ति, दया आदिकों ने आ घेरा तब तो इन्होंने लज्जा, दया, कीर्ति इन तीनों से हानि समझ इन्हें भी उसी वैराग्यरूपी तलवार से काट केवल धृति को साथ लेकर जो आगे अहङ्कार रूपी वज्रवत् शिला लगी हुई थी उसको ज्ञान रूपी कुदार से काटना प्रारम्भ किया क्योंकि इसी शिला के बाद वह असली कोप है जिसके लिये मुण्डक में कहा है—

हिरण्मये परे कोषे विरजं ब्रह्म निष्कलम्।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः॥

अर्थ—चमकीले पदार्थों के परे अहङ्कार रूपी शिला के नीचे भीतरी हृदय कोष अविद्यादि दोषों से रहित निरवयव वह शुद्ध ब्रह्म ज्योतियों का भी ज्योति विद्वानों के जानने योग्य है, उसे विद्वान् जान सकते हैं। पुनः विवेक साधन की शिला कट जाने पर सुइच्छानुसार ब्रह्मानन्द रूपी सुख कोष प्राप्त कर मोक्ष सुख में आनन्द करने लगे। इससे आप लोग भी विवेक साधन की भाँति हृदय रूप मन्दिर में ही परमेश्वर को प्राप्त कीजिये। देखिये एक भाषा के कवि ने क्या अच्छा कहा है-

व्यापक ब्रह्म सदा सब ठौर। व्यर्थ चार धामों की दौर॥
देखु न क्यों हृद नैन उघारि। कनियां लड़िका गांव गोहारि॥

७—धर्म के सिवा कोई साथी नहीं

एक साहूकार का लड़का बड़ा दुराचारी था। एक दिन उसकी पतंग टूट कर उड़ते २ एक महात्मा के पास एक वन में जा गिरी। वह साहूकार का लड़का पतङ्ग के पीछे महात्मा जी के पास पहुंचा और महात्मा को देख पतङ्ग भूल महात्मा जी के सामने हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया। कुछ काल में जब महात्मा जी ने ध्यान से नेत्र खोले तो इस की ओर उनकी दृष्टि पड़ी। इसे हाथ जोड़े देख महात्मा ने पूछा कि—"बच्चा तुम कौन हो, यहां कहां आये?" महात्मा को देख साहूकार के बेटे के हृदय में कुछ श्रद्धा उत्पन्न हो गई और उसने संपूर्ण सच्चा सच्चा वृत्तान्त कह दिया और अन्त में नेत्रों में जल भर के गद्गद हो बोला कि—"महाराज, मुझे कोई ऐसा उपाय बतलाइये कि जिससे मैं इन कुकर्मों से बच सत्कर्मों का

अनुष्ठान करूं।" महात्मा ने कहा—"बच्चा, जैसा तुम इस समय मेरे सामने सत्य बोले हो ऐसा ही सर्वत्र, सदैव बोला करो। यही तुम्हें सम्पूर्ण दुष्कर्मों से बचावेगा।" साहूकार के लड़के ने वहीं से प्रतिज्ञा की कि—"आज से चाहे कुछ ही हो, असत्य कभी न बोलूंगा।" दूसरे दिन घर आ शराब की बोतल ले आबकारी की दूकान को चला। मार्ग में उसका बड़ा भाई मिला और उसने इससे कहा—"भैया, कहाँ जाते हो?" इस प्रश्न के होते ही इसे बड़ा संकट हुआ। इसने सोचा कि मैं यदि सत्य कहता हूं तो भाई जी फजीता करेंगे और झूठ कहता हूं तो व्रत टूटता है अतः उत्तर न दे वहीं से लौट आया इसी प्रकार तीसरे दिन वह वेश्या के घर जा रहा था। मार्ग में चचा मिला। उसने कहा—"बेटा, कहां जाते हो?" यह फिर उसी प्रकार के असमंजस में पड़ा और उत्तर न दे लौट आया। इसी प्रकार धीरे धीरे इसके संपूर्ण दुराचार छूट गये। दुराचार छूटते ही इसके हृदय में कुछ ज्ञान का प्रकाश हुआ और इसने सोचा कि जिस महात्मा की कृपा से ये सब दुराचार छूटे हैं, उन्हीं की सेवा में चलें और उनसे पूछें कि महाराज, अब हम क्या करें। साहूकार का बेटा महात्मा के पास गया और क्रम पूर्वक अपने प्रश्न पूछता रहा महात्मा ने इसे शौच, दन्तधावन, स्नान सन्ध्या, अग्निहोत्र, आदि पञ्च-यज्ञ, पञ्चदेव पूजा, माता, पिता, गुरु, अतिथि, ईश्वर आदि की बताई। पुनः अष्टाङ्ग योग सिखाना प्रारम्भ किया। साहूकार का बेटा सात अङ्गों तक तो करता चला गया आठवें अङ्ग समाधि के लिये महात्मा ने कहा—"समाधि तुझे तब बतलाऊंगा कि जब तू मेरी एक बात मान लेगा।" साहूकार के बेटे ने कहा—"महात्मा जी, कहिये।" महात्मा जी ने कहा कि—"तुम आज अपने घर जा अपनी माता आदि से कहना—

माता, आज तो मानों हमारे प्राण नहँ नहँ, रोम रोम से निकल रहे हैं। यदि मेरे जीवन में कुछ बाधा आपड़े तो जब तक अमुक महात्मा जी को जो अमुक वन में रहते हैं न बुला लेना तब तक मेरे शव को न जाने देना।' ऐसा कह प्राणायाम लगा लेट जाना।" साहूकार के बेटे ने घर आकर वैसा ही किया। माता से कहा -"माँ, आज मेरे प्राण रोम रोम से मानों निकल रहे हैं।' माता ने कहा-' बेटा, यह क्या कुशब्द बोल रहे हो? परमेश्वर तुम्हारे शत्रु को भी मौत न दे।' बेटे ने कहा कि-"कदाचित् ऐसा हो जाय तो जब तक अमुक महात्मा को अमुक स्थान से न बुला लेना, हमारा मृतक शरीर न जाने देना।" ऐसा कह प्राणायाम लगा ध्यान में सो गया। साहूकार के बेटे की माता, पिता, स्त्री, बहन सब ने उस की यह अवस्था देख व्याकुल हो रोना, पीटना प्रारम्भ किया। रोने की ध्वनि सुन टोला महल्ला के लोग भी साहू-कार के धनिक होने के कारण बहुत कुछ इकट्ठे होगये। अब तो छोटी मोटी अमावास्या का सा मेला इकट्ठा होगया और सब के सब अपनी अपनी कह रोने लगे। माता बोली "बेटा हाय! मुझ अभागिनी को मौत भी नहीं और तुम्हारी यह दशा। हाय! चाहे मैं मर जाती पर तुम बच जाते।" इसी भांति पिता, स्त्री, बहन, टोला, महल्लावाले भी कह कह कर रो रहे थे। पश्चात् यह ठहरी कि अब इस के शव को श्मशान लेचलें। यह सोच उसके पिता तथा पड़ोसियों ने विमान बना उस पर साहूकार के बेटे को रख उसे उठा कर लेचले कि इतने में साहूकार के बेटे की मां को याद आया और उसने कहा कि-"आप लोग कृपा कर कुछ काल इस शव को रख दीजिये" और उसने अपने पति से कहा कि-"बेटे ने मरते समय यह कहा था कि यदि मैं मर जाऊं तो अमुक

स्थान से अमुक महात्मा को अब तक न बुलवा लेना तब तक मेरा मृतक शरीर श्मशान को न जाने देना।" पिता यह सुन कर नंगे पैरों महात्मा जी के पास दौड़ा। पर महात्मा जी तो आगे से ही जानते थे, इससे उन्होंने एक पुड़िया में आध पाव मिसरी बहुत बारीक पीस कर रख छोड़ी थी। साहूकार आ महात्मा जी के चरणों में गिर पड़ा और उसने कहा—"महाराज मेरे बेटे का यह हाल हुआ। उसने मरते समय कहा था कि जब तक आप को न बुला लेना, तब तक हमारे मृतक शरीर को श्मशान न जाने देना। सो महाराज, यदि आपके पास कुछ उपाय हो तो कीजिये। महाराज, उस बेटे के बिना हमारा सब नाश हुआ जाता है। महाराज, चाहे हम मर जावें पर हमारा बेटा बना रहे।" महात्माजी ने कहा—"धीरज धरो, घबड़ाओ नहीं मैं अभी चलता हूं।" अब तो महात्माजी मिश्री की पुड़िया उठा साहूकार के साथ चल दिये महात्मा जी ज्योंही साहूकार के घर आये त्योंही उस बेटे की मां, बहन, स्त्री कुटम्बी, पड़ोसी सभी रोने और यह कहने लगे कि-"महात्माजी, चाहे हम लोग मर जांय पर यह लड़का जी जाय।" महात्माजी ने सब को धैर्य्य दे कहा कि-'आध सेर कपिला गौ का दूध शीघ्र लेआओ। जब दूध आया तो जो पिसी हुई मिश्री की पुड़िया महात्मा जी के हाथ में थी, सब को दिखा कर महात्माजी ने कहा कि 'यह संखिया है" और उसे दूध में डाल प्रथम लड़के की माता को बुलाया और कहा कि तुम अभी कहती थीं कि चाहे हम मर जांय पर हमारा बेटा जी जाय, इससे इस ज़हर को तुम पी लो सो तुम अभी मर जाओगी पर तुम्हारा बेटा जी जायगा।" माता ने कहा—"महाराज, हमारी जन्मपत्री तो देखो, हमारे और बेटे होंगे या नहीं?" महात्माजी ने

कहा–'तुमने इसे नौ मास पेट में रक्खा और पाला पोषा है, इससे 'कनिया का जाय और पेट का आसरा' वाली बात मत करो। इस दूध को पीलो।" माता ने कहा–"महाराज, हमें आप पहले यह बात बता दें कि हमारे और बेटे होंगे या नहीं?" महात्मा जी ने समझ लिया कि यह दूध नहीं पी सकती, बातों में टाल रही है, अतः माता को अलग कर पिता को बुलाया और कहा कि—"आप हमारे यहां दौड़े गये थे और कहते थे कि चाहे हम मर जांय पर हमारा बेटा जी जाय, इस लिये आप इस दूध को पीलें। आप तो अभी मर जायँगे पर बेटा आपका जी जायगा।" पिता ने कहा—"महाराज, हमारी अवस्था तो अभी इस प्रकार की है कि और बच्चे हो सकते हैं।" महात्मा ने इन्हें भी पीछे हटा साहूकार के बेटे की स्त्री को बुलवाकर कहा कि–"तुमने इस के साथ भांवरें फेरी हैं और तुम्हारी शोभा इसी से है और तुम भी अभी यही कहती थीं कि चाहे हम मर जांय पर हमारा पति जी जाय, इस लिये तुम इस दूध को पी लो। तुम तो अभी मर जाओगी और तुम्हारा पति जी उठेगा।" स्त्री ने कहा—"महाराज, यह जिया न जिया हमारे मां बाप के यहां बहुत धन है, हम वहां चली जायँगी और वहीं अपना जीवन व्यतीत कर देंगी।" महात्मा ने उसे भी अलग किया। अब टोला महल्लावालों ने सोचा कि साहूकार के माता पिता स्त्री सब से तो महात्मा जी कह चुके, अब हम लोगों की बारी आई, इस कारण सब के सभी टरक गये। अब केवल वहां ५ मनुष्य शेष रह गये—महात्मा, साहूकार का बेटा, उसकी माता, पिता, स्त्री! तब तो महात्मा जी ने यह सब देख कहा कि—"दूध हम पीलें!" माता पिता दोनों ने उत्तर दिया कि–"महाराज, महात्माओं का तो परोपकार के ही

लिये जीवन होता है।" तब महात्मा ने बेटे की माता से कहा–"यदि तुम यह प्रतिज्ञा करो कि यदि हमारा बेटा जी उठेगा तो यह सब यथार्थ वृत्तान्त हम अपने बेटे से कह देंगी, तो हम दूध पी लें।" माता ने प्रतिज्ञा की। महात्मा ने मिश्री पड़ा दूध बड़े आनन्द से पी लिया और साहूकार के बेटे को प्राणायाम से जगा दिया और उसकी माता से कहा कि—"अब इससे वृत्तान्त यथार्थ यथार्थ कहो।" माता ने कहने में संकोच किया। महात्मा ने कहा–"यदि तुम कुछ संकोच करोगी तो शाप देकर तुम, तुम्हारे पति, बहू तथा इस बेटे सब को अभी भस्म कर दूंगा।" ऐसा सुन साहूकार के बेटे की माँ को विवश हो सब कहना पड़ा। बच्चे ने सुन कर यह समझ लिया—

एकः पापानि कुरुते फलं भुंक्ते महाजनः।
भोक्तारो विप्रमुच्यन्ते कर्त्ता दोषेण लिप्यते॥

संसार में सिवा धर्म के तथा ईश्वर के, सचमुच अपना कोई नहीं। ऐसा जान इनसे मोह छोड़ महात्माजी के साथ जा समाधि सीख, समाधि तथा उसने मोक्ष-सुख को प्राप्त किया। सच है भर्तृहरिजी ने कहा है कि—

प्राप्ताः श्रियः सकलकामदुघास्ततः किं,
दत्तं पदं शिरसि विद्विषितां ततः किम्।
सन्मानिताः प्रणयिनो विभवैस्ततः किं,
कल्पं स्थितं तनुभृतां तनुभिस्ततः किम्॥

अर्थात्—इन नश्वर शरीरधारियों ने सब कामनाओं की दुहनेवाली लक्ष्मी पाई तो क्या, शत्रुओं के शिर पर पग दिया तो क्या, धन से मित्रों का सन्मान किया तो क्या फिर इस देह से कल्प भर जिये तो क्या अर्थात् परलोक न बनाया तो कुछ न किया।

जीर्णा कंथा ततः किं सितममलपटं पट्टसूत्रं ततः किं,
एका भार्या ततः किं हयकरिसुगणैरावृतो वा ततः किम्।
भक्तं भुक्तं ततः किं कदशनमथवा वासरांते ततः किं,
व्यक्तज्योतिर्नवांतर्मथितभवभयं वैभवं वा ततः किम् ॥

अर्थात्—पुरानी गुदड़ी धारण की तो क्या, उज्ज्वल निर्मल वस्त्र वा पीतांबर धारण किया तो क्या, एक ही स्त्री पास रही तो क्या, अथवा घोड़े हाथी सहित करोड़ स्त्रियाँ रहीं तो क्या, अच्छे व्यञ्जन भोजन किये वा कुत्सित अन्न सायङ्काल को खाया तो क्या, जिस से भव-भय नष्ट होजाय ऐसी ब्रह्म की ज्योति हृदय में न जगी तो बड़ा विभव ही पाया तो क्या?

८--परमात्मा सब देखते हैं; पापों से बचो

एक माली ने एक बाग़ बहुत ही अच्छा लगा रक्खा था जिस में हर प्रकार के फलफूल उपस्थित थे और माली स्वय-मेव अपने बाग़ का रक्षक था। एक बाबू साहब एक बहुत ही अच्छा कोट जिस में कई एक पाकिट, भीतरी ओर गल्ले तथा कई पाकिट बाहर भी थे और पतलून भी बढ़िया पहिने हुए एक क़ीमती टोपी दिये तथा हाथ में छड़ी लिये हुए उस बाग़ीचे को देखने के लिये पहुंचे और माली से पूछा कि—"हम आपके बगीचे को देखना चाहते हैं!" माली ने कहा—"आप बागीचे को प्रसन्नतापूर्वक देखिये परन्तु आप कृपाकर उसमें कोई फल फूल न तोड़ें।" बाबू साहब ने कहा-"वाहजी, यह भी कोई भलेमानसों की बातें हैं, भला यह आप क्या कहते हैं, कभी ऐसा हो सकता है?" बाबू साहब बगीचे के भीतर जा रविशों पर टहलने लगे और नाना प्रकार के वृक्ष,

पत्र, पुष्प, फल देख बाबू साहब का मन ललचाया और बाबू साहब ने यह सोचा कि यदि हम कुछ फल तोड़ अपने भीतरी चोरगल्लों में रख लें तो यहां माली किसी भांति न देख सकेगा, अतः बाबू साहब ने फल तोड़ तोड़ भीतरी चोरगल्ले तो खूब ही ठूंस ठूंस कर भर लिये और बाहिरी पाकिटों में यह समझ कि यदि हम इनमें कुछ फल डाल लेंगे तो यह मालूम पड़ेगा कि कपड़ा फूला हुआ है, कुछ फल उनमें भी तोड़ तोड़ कर डाल बगीचे से चल कर निकलने लगे तो बगीचे का माली बगीचे के दरवाज़े पर बैठा था, उसने कहा—"बाबू साहब, इस बगीचे का यह नियम है कि जो मनुष्य देखने जाता है, बिना झारा दिये नहीं जाने पाता है।" बाबू साहब ने कहा—"आप देख लीजिये, मैं खड़ा हूं।" तब तो माली ने कहा—"इस प्रकार झारा नहीं लिया जाता, यहां तो आप इस कोट को उतार कर अलग रखिये और मैं इसके एक एक पाकिट में हाथ डाल कर देखूँगा।" अब तो बाबू साहब हैं हैं करने लगे। माली ने कहा—"हैं हैं से कुछ न होगा। इस कोट को उतारिये।" अतः बाबू साहब को विवश हो कोट उतारना पड़ा और माली ने पाकिटों में हाथ डाल देखा तो फल मौजूद ही थे। अब तो माली ने बाबू साहब को पकड़ अपने नियम के अनुसार दण्ड दे पुलिस के हवाले कर जेल को भेज दिया।

पाठको, दृष्टान्त तो यह हुआ परन्तु दार्ष्टान्त इसका यह है कि परमात्मारूपी माली और प्रकृतिरूप जीव को लें—

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां, बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।
अजोह्येको जुषमाणोऽनुशेते, जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः॥

नाना भांति का संसाररूपी बगीचा रच कर स्वयमेव अपने आप ही संसार का रक्षक हो रहा है। यह जीवात्मा

शरीररूपी कोट पहिन बागीचे की सैर करने आता है, परन्तु उस माली ने (य० अ० ४० में) कहा था कि—

ईशावास्यमिदꣳसर्व्वं यत्किञ्चि ज्जगत्यां जगत् ।

तेन त्यक्तेन भुंजीथा मागृधः कस्य स्विद्धनम् ॥

बगीचा तो देखने जाते हो पर यह जो कुछ संसाररूपी बाग़ है सब मुझ से भरा है, अतः बागीचे में जा किसी वस्तु पर हाथ न डालना। ऐसा कह पुनः आज्ञा दी कि—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत ꣳ समाः ।

एवं त्वयि नान्यथेऽतोस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥

ऐसा जान कर यह स्मरण करते हुये कि बागीचे में किसी वस्तु को न छुयें, सैर कर आइये; पर इसने यहां आकर नाना भांति के मद्य, मांस, हिंसा, चोरी, जारी आदि कुकर्मों से खूब ही पेट रूप चोर गल्ले भरे। इसने सोचा कि यहां मुझे कोई देखनेवाला थोड़े ही है, यह न सोचा कि—

एकोहमस्मीत्यात्मानं यत्त्वं कल्याण मन्यसे ।

नित्यं ह्यन्तःस्थेषु पुण्यपापेक्षिता मुनिः ॥

यह परमात्मा सर्वत्र तथा आत्मा में भी पुण्य पाप का देखनेवाला मौजूद है, जीवात्मारूप बाबू बागीचे के बाहर चलकर नाना भांति के रूप बना अपने को यह दर्शाकर कि मैं बड़ा धर्मात्मा हूं बागीचे से अच्छी तरह निकलना चाहता है, पर यह साधारण मनुष्यों में तो चल जाती है कि चाहे जैसे अधर्म करो पर एक उत्तम सफ़ेद पोशाक पहरने, रूप बनाने, धन होने से सांसारिक लोग प्रतिष्ठा दे दिया करते हैं, क्योंकि सांसारिक मनुष्य तो व्यापक नहीं जो तुम्हारी भीतरी दशा जान सकें, किन्तु परमात्मा के यहां यह आडम्बर नहीं

चलता। जिस समय में संसाररूपी बा[illegible] द्वार पर मनुष्य पहुंचता है तो इसका शरीर[illegible] उतरवा कर अलग रखवा लेता है, यदि को[illegible] उसे पारितोषिक और यदि कुछ फल फूल त[illegible] में बरामद हुये तो दण्ड दे नाना प्रकार के योनिरूपी जेलखानों में अपने नियमरूपी दूतों के हाथ भेज कर्म का फल देता है।

९—पारस मणि की बटिया

एक महात्मा ने एक साहूकार को एक ऐसी पारसमणि की बटिया दी कि जिससे लोहे में छुआते ही लोहा सोना बन जाता था, परन्तु महात्मा ने यह कहा था कि बटिया मैं तुम्हें सात दिन के लिये देता हूं, सात दिन पूरे होने पर मैं तुम से यह बटिया ले लूंगा। साहूकार ने बटिया पाते ही सोचा कि मेरे घर में तो लोहा सिवा हसिया, खुरपी, फावड़ा, कुदार के और है ही नहीं और बटिया केवल सात ही दिन को मिली है अतः उसने सोचा कि अभी दिन तो सात पड़े हैं इतने में लोहा खरीद कर आ सकता है, ऐसा समझ एक आदमी कलकत्ता, दूसरा बम्बई भेजा और उन आदमियों से कहा कि लोहा जल्दी खरीद कर लाना। दो दिन में गाड़ी कलकत्ता आई, दो या ढाई दिन में बम्बई पहुंची। पुनः वहां लोहा खरीदते, गाड़ियों में लादते हुए दो दिन बीत गये। पुनः दो दिन में फिर यहां रेलगाड़ियां आईं। इस भांति छे दिवस बीत गये। सातवें दिन साहूकार ने मालगाड़ियों से माल उतरवा कर सोचा कि यदि यहीं पारस पथरी छुआये देते हैं तो तांतिया भील या दरोग सरीखे डाकू सब लूट लेंगे, अतः लोहे को घर में भर कर तब पारस पथरी छुआयें, ऐसा समझ लोहा बैलगाड़ियों में भरा कर लाये। घर में दरवाज़े

से लोहा बैलगाड़ियों से उतरवा उतरवा घर में भर रहे थे (यह समय सातवें दिन बारह बजे रात का था) तब तक महात्मा जी बटिया लेने के लिए आ गये। साहूकार ने महात्मा जी का बहुत कुछ आदर सत्कार किया। महात्माजी ने कहा—"वह बटिया लाइये।" साहूकार ने कहा—"महाराज, अब तक तो हम लोहा ही ख़रीदते रहे, कुछ काल गम खाइये।" महात्मा जी ने कहा—"मैं एक मिनट भी नहीं गम खा सकता, बटिया लाइये।" साहूकार ने कहा—"महाराज, अच्छा हम अभी जाकर लोहे में छुआये लेते हैं।" महात्मा जी ने कहा—"बस, आपकी अवधि हो गई, अब बटिया दे दीजिये।" साहूकार ने कहा—"अच्छा ये लो, हम छुआये लेते हैं।" महात्मा ने हाथ पकड़ बटिया छीन ली।

इस दृष्टान्त का दार्ष्टान्त यह है कि जीवात्मा रूप साहूकार को परमात्मारूपी महात्मा ने यह शरीररूपी पारसमणि की बटिया सात दिन के लिये (सात दिन का तात्पर्य्य यह है कि दिन सात ही होते हैं) दी थी कि इस पारसमणि पथरी से माया जंजाल विषयों से अलग हो मोक्षरूपी सोना बना लेना। पर यह जीवात्मारूपी साहूकार सातों दिन यानी सदैव लोहा ही ख़रीदता रहा अर्थात् विषयों में ही फंसा रहा। जब महात्मा इनसे अवधि आने पर बटिया लेने गया तब कहते हैं परमेश्वर दो वर्ष या एक वर्ष या छै मास की और आयु दे तो हम कुआं बनवा लें, यज्ञ कर लें, योग साधन कर लें परन्तु वहां अवधि के पश्चात् एक मिनट की भी मोहलत नहीं, जैसा किसी कवि ने कहा है—

> श्वःकार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम्।
> नहि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वा कृतम्॥

जो काम करना हो उसको आगे की प्रतीक्षा न करके अभी करे क्योंकि मौत यह नहीं देखती कि इसका यह काम शेष पड़ा है, इससे इसे इतने दिन के पश्चात् भक्षण करेगी। अतः इस पारसमणि पथरी को यों ही व्यर्थ मत खोइये। यह मनुष्य शरीर बार बार नहीं मिलता। देखिये किसी कवि ने कहा है—

जन्मेदं वन्ध्यतां नीतं भवभोगोपलिप्सया।
कांचमूल्येन विक्रीतो हन्त चिन्तामणिर्मया॥

अर्थ—यह जन्म सांसारिक भोगों की लालसा से बन्धन में डाल दिया। हाय! मैंने चिन्तामणि को कांच के समान बेच डाला। दूसरा कवि कहता है—

महता पुण्यपण्येन क्रीतेयं कायनौस्त्वया।
पारं दुःखोदधेर्गन्तुं त्वर यावन्न भिद्यते॥

अर्थ—बड़ी पुण्यरूपी हाट से तूने यह मनुष्य देहरूपी नाव संसार रूपी समुद्र से पार जाने के लिये ली थी जब तक यह टूट न जाय तब तक इस समुद्र से पार जाने का शीघ्र शीघ्र यत्न कर।

१०—कुछ आगे के लिए भी कीजिये

एक राज्य में यह नियम था कि उसका प्रत्येक राजा १० वर्ष राज्य करने के पश्चात् वन को भेज दिया जाता था। कई एक राजा उस गद्दी पर बैठे परन्तु इस दुख से वे इतने दुखी थे कि जिसका पारावार नहीं और सोचते रहते थे कि यह सब सामान अब केवल हमारे पास ४ वर्ष है, २ वर्ष है, १ वर्ष है, ६ मास है। इस दुख से उनका खाना पीना और आनन्द सभी

वन्द थे। अनायास एक राजा साहब के यहां एक महात्मा आ गये। महात्मा ने कहा—"राजा, तू इतना दुखी क्यों है ?" राजा ने कहा—"महाराज, ६ मास के पश्चात् वन को भेज दिया जाऊंगा और ये राज्य के सम्पूर्ण पदार्थ छूट जायेंगे, तब मुझे बड़ा कष्ट होगा। इसी कारण दुखी रहता हूं।" महात्मा ने कहा—' राजन्, उसके लिये इतना दुख क्यों करते हो यह तो थोड़ी सी बात है। आप को ६ मास के बाद जिस वन को जाना है, अभी से राज्य के सम्पूर्ण पदार्थ क्यों नहीं धीरे धीरे उस वन को भेज देते हो ताकि वहाँ कष्ट न हो।' राजा ने वैसा ही किया और वह वन में जा आनन्द भोगने लगा।

इसका दृष्टान्त यों है कि इस जीवात्मारूपी राजा को कुछ दिनों के पश्चात् अन्य योनियों वा अन्य शरीरों की प्राप्ति हुआ करती है और वह शरीर तथा शरीर के साथ उपलब्ध पदार्थों एवं सम्बन्धियों के छूट जाने के शोक में शोकित होता है के जाने दूसरे जन्म में मिलें या नहीं। तो उसके लिये बतलाया कि यज्ञादि तथा दान धर्म द्वारा क्यों न तू अपने पदार्थ धीरे धीरे इस प्रकार पहुंचा दे कि तुझे पुनर्जन्म में वे संपूर्ण पदार्थ प्राप्त हों।

यावज्जीवेन तत् कुर्य्यात् येनामुत्र सुखं भवेद्।

११—वैराग्य

एक राजा का मन्त्री अत्यन्त योग्य और बड़ा ही चतुर था तथा महाराज की सेना भी बड़ी प्रबल और पुष्ट थी। सभी अपना काम बड़े नियत समय पर किया करते थे परन्तु मन्त्री के चालबाज़ होने और बरग़लाने से सम्पूर्ण सेना मन्त्री से मिल गई थी जिससे राजा को हर समय भय रहता था कि

जाने किस समय यह मन्त्री सेना ले मुझ पर धावा कर दे।
एक दिन राजा रानी दोनों आनन्द में लेटे हुये थे तो रानी जी ने महाराज से कहा कि—"महाराज, मंत्री का विरुद्ध रहना अच्छा नहीं, न जाने किस समय वह सेना ले धावा कर दे। इससे कल प्रातःकाल आप अपने बेटे को भेजें कि वह मन्त्री जी के मैल को हटा दे और वह आप से विरोध करना छोड़ आपके अनुकूल हो जाय।"

इसका दृष्टान्त यह है कि जीवात्मा रूपी राजा का मन रूपी मंत्री बड़ा ही योग्य और चतुर है, जिसके ही द्वारा सम्पूर्ण कर्म जीव के होते हैं। इन्द्रिय रूप सेना से मन रूप मंत्री जिस प्रकार चाहता है कर्म कराता है। परन्तु यह मन इतना चंचल है कि इसके लिये कहा है—

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥

देखिवे को दौरे तौ सटकि जाय वाही ओर सुनिवे को दौरे तो रसिक सरताज है। सूंघिवे को दौरे तौ अघाय न सुगन्ध करि खाइवे को दौरे तो न धावे महाराज है॥ भोगिवे को दौरे तो तृपति हू न काहू होय हनुमत कहै याको नेकहू न लाज है। काहू को न कह्यो करे, अपनी ही टेक धरे मन सों न कोऊ हम देख्यो दगाबाज़ है॥ १॥

बस, इस मन्त्री ने इन्द्रियरूप सेना अपने वशीभूत कर जब जीवात्मारूप राजा पर धावा करना चाहा तो बुद्धिरूपी स्त्री ने जीवात्मा रूप राजा से कहा—'महाराज आप अपने बेटे वैराग्य को मन्त्री मन के पास भेजिये ताकि बेटा वैराग्य जाकर मंत्री के मन के मैल को हटा दे और मन्त्री आपके अनुकूल

हो जाय। ऐसा ही हुआ। बेटे के जाते ही मन्त्री अनुकूल हो गया और जीवात्मा रूपी राजा का विजय हुआ।

१२—अब के न तब के

एक बार एक राजा ने अपने मन्त्री से कहा कि आप ६ मनुष्य इस तरह के लाइये कि दो तब के और दो अब के और दो अब के न तब के। मन्त्री यह प्रश्न सुन चकित हो गया परन्तु कुछ काल सोचने से मन्त्री महाराज की समझ में यह बात आ गई, अतः उन्होंने ग्राम में आकर सन्यासी महात्माओं से प्रार्थना की कि आप कृपा कर कुछ देर के लिये हमारे राजा के यहाँ तक चलिये और दो राजाओं को बुलवा कर साथ लिया और दो हम में तुम में से ले जाकर राजा साहब से कहा—"महाराज वे छः ओं मनुष्य आ गये।" महाराज ने कहा—"लाओ।" मन्त्री प्रथम राजाओं को खड़ा किया और कहा कि—"महाराज, ये तब के हैं यानी पूर्व जन्म में किया था सो अब भोग रहे हैं।" पुनः दोनों सन्यासी महात्माओं को खड़ा किया और कहा—"ये अब के हैं यानी अब ये योगादि अङ्गों का पालन कर रहे हैं जिसका फल आगे पावेंगे।" और दो हम में तुम में से ले जाकर खड़े कर दिये और कहा—"ये अब के न तब के, अर्थात् न इन्होंने पूर्व जन्म में ही ऐसा कुछ सुकृत किया था जिससे कुछ ऐश्वर्य्य प्राप्त करते और अब भी इनके ऐसे ही कर्म हैं कि दूसरे जन्म में ऐश्वर्य्य पाना तो एक ओर रहा वरन् मनुष्य जन्म भी नहीं पा सकते।" एक कवि का वाक्य है—

धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते।
अजागलस्तनस्यैव तस्य जन्म निरर्थकम्॥

१३-देह में खुजली

एक अन्धा किसी बड़े भारी मकान के भीतर पड़ गया। अब बेचारे को मार्ग मिलना कठिन हो गया, परन्तु अन्धे ने एक युक्ति सोची कि यदि दीवार पकड़े पकड़े इसके सहारे मैं चलूं तो दर्वाज़ा अवश्य मिल जायगा और अन्धे ने ऐसा ही किया। परन्तु दीवार पकड़े पकड़े जभी वह दर्वाज़े के सामने आता तो उसकी देह में ऐसी खुजली उठती कि वह दोनों हाथों से दीवार का सहारा छोड़ खुजलाने लगता। इसी भांति उसने सैकड़ों चक्कर लगाये, पर हर बार दर्वाज़ा निकल जाता था और वह यों ही हाथ मलता रह जाता था।

इसका दृष्टान्त यों है कि यह जीवात्मारूपी अन्धा पुरुष योनिरूप मकान के घेरे में पड़ उससे निकलने का उद्योग करता है। यह ज्ञात रहे कि योनिरूपी घेरे के अन्दर से निकलने का दर्वाज़ा एक मात्र मनुष्य योनि ही है। पर इस जीवात्मा रूप अन्धे को जब जब मनुष्य योनि प्राप्त होती है तब तब उसमें इसे पञ्च विषय रूप खुजली उठा करती है और विषयों में ही इसकी उम्र व्यतीत हो जाती है और मनुष्य शरीर-रूप दर्वाज़ा निकल जाता है। इस लिये, सज्जनों! विषयों में इस दर्वाज़े को न निकालिये नहीं तो योनि रूपी मकानों के घेरे में ही चक्कर खाया करोगे। जैसा कि कवि ने कहा है—

> तृष्णाया विषयैः पूर्तिर्नैव कश्चित् कृवापुरा।
> करिष्यन्ति न चान्येतैर्भोगतृष्णा ततस्त्यजेत् ॥

१४—देह होते हुए विदेह नाम क्यों?

एक वार महाराज जनक जी के मन्त्री ने उनसे पूछा कि—'महाराज, आपके देह होते हुये भी आपका नाम विदेह क्यों है?" महाराजने कहा—'इसका उत्तर हम तुम्हें कुछ दिवस बाद देंगे।' जब कुछ दिन व्यतीत हुये तो महाराजने एक दिन उस मंत्री का निमन्त्रण किया और घर में सम्पूर्ण पदार्थ ऐसे बनवाये कि जिनमें किसी में भी नमक न पड़ा था और मन्त्री जी के भोजन करने के प्रथम ही एक ढिंढोरा इस प्रकार का पिटवा दिया कि "आज ४ बजे उक्त मन्त्री को फांसी दी जायगी" और ढिंढोरा पीटने वाले से कहा कि—"मन्त्री जी के द्वार पर तीन आवाज़ें लगा देना कि जिसमें मन्त्री सुन लें।" ऐसा ही हुआ। पश्चात् दो बजे महाराज जनक जी ने मंत्री को भोजन के निमित्त बुलवाया और बड़े आदर से भोजन कराया। जब मन्त्री जी भोजन कर चुके तब महाराज जनक जी ने कहा—'मन्त्रीजी, यदि आप हमें बता दें कि किस किस भोजन में कैसा कैसा लवण था तो मैं आपको सूली से मुक्त कर दूं'।

मन्त्रीजी ने उत्तर दिया कि—"महाराज, मुझे मौत के भय से यह ज्ञान न रहा कि किस भोजन में लवण है, किसमें नहीं मैं कैसे बताऊं!" तब तो महाराज जनक जी ने मन्त्री से कहा—"सुनिये, आप की सूली का समय चार बजे था और दो बजे आप भोजन करते बैठे थे, भोजन के समय से मौत के समय तक दो घन्टे की ज़िन्दगी की आप को पूर्ण आशा थी परन्तु फिर भी आपको लवण का ज्ञान शरीर, स्मरण-शक्ति, जिह्वा और ज्ञान आदि के होते हुये भी न रहा किन्तु मुझे तो एक मिनट की भी ज़िन्दगी की पूर्ण आशा नहीं, अतः जिस

प्रकार तुम दो घन्टे का समय होते हुये भी देह होते हुये विदेह हो गये इसी प्रकार एक मिनट की भी आयु की आशा न रखता हुआ मैं सदैव विदेह रहता हूं। जनकजी का वाक्य है कि—

अनंतवत मेवित यस्य मे नास्ति किंचन ।
मिथिलायां प्रदीप्तायां न मे किंचन दह्यते ॥

१५--विषयों की असलियत

एक राजपुत्र एक दिन अपने ग्राम में घूमने गया । एकाएक राजपुत्र की दृष्टि एक महल के ऊपर पड़ी । महल पर एक सोलह वर्ष की कन्या अत्यन्त ही रूपवती स्नान करके अपने केश सुखा रही थी। यह कन्या उसी राजपुत्र के पिता राजा साहब के मन्त्रीजी की कन्या थी। राजपुत्र देख तुरन्त ही मूर्छित हो गया और कुछ काल के पश्चात् जब इसकी मूर्छा जागी तो फिर इस की दृष्टि महल की ओर गई परन्तु फिर इसे वहां वह रूपवती न दिखलाई पड़ी। राजपुत्र अपने घर लौट आया परन्तु घर आकर वह सब खान पान एक दम छोड़ शोकभवन में लेट रहा। बहुत कुछ पूछने पर इसने सच्चा २ हाल कह दिया। राजा अपने पुत्र की यह दशा देख बड़े ही शोक में पड़ गया। मन्त्री राजा जी की यह दशा देख अपने घर गया और अपनी कन्या से सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा। कन्या ने अपने पिता से कहा—"पिता जी इसके लिये राजा और राजपुत्र क्यों दुखी हैं? आप जा कर राजपुत्र से कह दीजिये कि आप उठिये, स्नान भोजन कीजिये, मेरी कन्या आप से परसों मिलेगी।" मन्त्री ने ऐसा ही किया। राजपुत्र ने यह संन्देशा सुन अत्यन्त प्रसन्न हो उठ कर स्नान भोजन किये। मन्त्री जी जिस समय अपने घर गये तो उनकी कन्या

ने उनसे कहा कि—"पिता जी, मुझे एक जमालगोटा और ८० कूंड़े मिट्टी के और ८० रूमाल रेशमी आज ही मंगवा दीजिये। पिता ने उसी समय ये सब चीज़ें मंगवा दीं। रूपवती ने ज्यों ही जमालगोटे का जुलाब लिया कि उसे दस्त पर दस्त आने प्रारम्भ हो गये। रूपवती हर बार उन्हीं कूंड़ों में पाखाने जाती और हर कूंड़े पर जिसमें कि वह पाखाना हो जाती थी एक रेशमी रूमाल ओढ़ा दिया करती थी। इस प्रकार वे सभी कूंड़े सज गये और रूपवती की यह दशा हो गई कि उसका सम्पूर्ण शरीर पीला पड़ गया और इतनी दुबली हो गई कि मानों चारपाई में लग गई थी। वह टूटी सी खाट पर लेटी हुई थी और उसके चारों ओर मक्खियां भिनक रही थीं और मल मूत्र सने कपड़े पहने थी। इस अवस्था में स्थित उसने अपने पिता मन्त्री से कहा कि—"पिता जी, अब आप राजपुत्र को ले आइये।" राजपुत्र पूर्ण रूप से सज धज बड़ी उमंग के साथ मन्त्री के साथ चल दिये। जब मन्त्री जी के महलों में प्रवेश करने लगे और ज्यों ही भीतर पहुंचे तो कुछ दुर्गन्धि आई। राजपुत्र ने रूमाल से अपनी नाक दबा कहा—"मन्त्री जी दुर्गन्धि काहे की आती है?" मन्त्री ने कहा—"होगी किसी चीज़ की, आप चले आइये?" पर बड़ी कठिनता से दुर्गन्ध सहन करते हुये राजपुत्र रूपवती तक पहुंचे। रूपवती की यह दशा देख राजपुत्र दंग रह गया कि—"अरे! इसकी क्या दशा हो गई! मैंने परसों इसे उत्त रूप में देखा था, आज क्या हो गया? रूपवती ने कहा—"महाराज, आइये" परन्तु राजपुत्र को रूपवती के पास जाना तो क्या बल्कि वहां खड़े रहने में मिनट मिनट में इतनी तकलीफ हो रही थी कि जिसका पारावार नहीं। रूपवती ने कहा—"महाराज, आप की प्रीति यदि मुझ से थी तो यह

दासी आप की सेवा में उपस्थित है और यदि मेरी खूबसूरती से प्रेम था तो वह कूंड़ों में भरी रक्खी है।" परन्तु इस मूढ़ राजपुत्र को फिर भी बोध न हुआ। इसने समझा कि खूबसूरती कोई वस्तु है जो कूंड़ों में भरी रक्खी होगी। और ऊपर रेशमी रूमाल देख इसे ख्याल हुआ कि खूबसूरती कोई बड़ी उत्तम वस्तु होगी जिस पर कि रेशमी रूमाल पड़े हैं। राजपुत्र ने जाकर ज्योंही रूमाल खोले तो वहां पाखाना देख नाक दबा कर चल दिया और इस दृश्य से उसे ऐसा वैराग्य हुआ कि तमाम उमर उसने योगादि अङ्गों का पालन कर मोक्ष सुख को प्राप्त किया।

प्रिय सज्जनों! आप लोगों ने संसार के पदार्थों की खूबसूरती तथा चमकीलेपन की असलियत समझ ली होगी। किसी कवि ने कहा है—

कदली स्तम्भ निस्सारे संसारे सार मार्गणम्।
यः करोति ससम्मूढ़ो जलबुद्बुद सन्निभा॥

संसार के चमकीले पदार्थों में सार ढूंढ़ना इसी भांति है जैसे केले, प्याज या करमकल्ले उधेड़ते जाइये, वक्कल ही वक्कल मिलेंगे।

१६--अष्टावक्र

एक वार महाराज जनक जी ने एक सभा की जिसमें बड़े बड़े विद्वानों को बुलाकर कहा कि हमें कोई ऐसा उपाय बताओ कि जिसमें २ घंटे में ईश्वर प्राप्त हो जाय। इस प्रकार वहां बहुत से पण्डित एकत्र हुये थे। उसी सभा में महाराज अष्टावक्र के पिता भी गये थे। महाराज अष्टावक्र जिस समय बाहर से घर आये तो अपनी माता से पूछा कि—"माता जी

आज पिताजी नहीं दिखलाई पड़ते, कहां गये हैं ?" माता ने कहा कि—"आज महाराज जनक की सभा में इस प्रकार का विषय उपस्थित है, आपके पिता वहां गये हैं ।" महाराज अष्टावक्र ने कहा—"माता जी आज्ञा हो तो भोजन के पश्चात् हम भी राजा जनक की वह सभा देख आवें ?" माता ने अष्टावक्र से कहा कि—"बेटा प्रथम तो तुम्हारी आठों गांठें टेढ़ी हैं, हाथ पैर से अपाहिज हो कहां कढ़िलते हुये जाओगे ? दूसरे तुम्हें देख सब हसेंगे ।" पर अष्टावक्र जी तो बड़े विद्वान् थे अतः माता से आज्ञा ले वे राजा जनक की सभा में जा पहुंचे । इनके पहुंचते ही इन्हें आठों गांठ टेढ़ा देख सम्पूर्ण सभा के लोग हंस पड़े; पर महाराज अष्टावक्रजी सभा के लोगों से दुगने हँसे । तब तो सभा के लोगों ने महाराज अष्टावक्र जी से पूछा कि "आप क्यों हंसे ?" महाराज अष्टावक्र जी ने सभा के लोगों से कहा—"आप क्यों हंसे ?" सभा के लोगों ने कहा—"हम तो आपका आठों गांठ टेढ़ा देख कर हंसे ।"

तब तो महाराज अष्टावक्र ने कहा—"हम यों हंसे कि तुम सब चमार हो, क्योंकि हड्डी चमड़े की परीक्षा चमार ही को होती है ।" किन्तु राजा जनक ने महाराज अष्टावक्रजी का बड़ा ही सत्कार किया और अपना प्रश्न महाराज अष्टावक्र जी से भी किया । महाराज अष्टावक्र जी ने कहा कि—"राजन, यदि हम आपको दो घन्टे में ईश्वर प्राप्त करा देंगे तो आप हमें क्या देंगे ?" महाराज जनक ने कहा- -"हम तुमको अपना सम्पूर्ण राज्य दे देंगे ।"महाराज अष्टावक्र ने कहा कि–"क्या राज्य तुम्हारा है ? क्या जिस समय आप पैदा हुये थे, राज्य साथ लाये थे ? आप तो खाली हाथ क्यहाँ क्यहाँ करते हुये उतपन्न हुये थे । तब तो महाराज जनक ने कहा कि—"महाराज राज्य के सिवाय तो हमारे पास कुछ नहीं हम आपको क्या दें ?" महाराज अष्टावक्र

के पालन करने में वे दृढ़ थे। ब्राह्मण के देश में एक बार अकाल पड़ा और जो कुछ संग्रह उंछ था वह सब चुक गया। भिक्षावृत्ति धर्म नहीं, अब आवे तो कहां से आवे। उंछ तो तभी मिलता है जब खेतों में अन्न उपजता है। ब्राह्मण को तपोनिष्ठ जान लोग अन्नदान पहुंचाने लगे, परन्तु तो भी यथासमय आहार न मिलने से वह सब परिवार भूखों मरने लगा। इस परम कष्ट को धैर्य्य से सहन करते हुए ब्राह्मण ने कालक्षेप किया, किन्तु अपने कर्तव्य में तिल भर भी अन्तर न आने दिया। दुःख पर बड़े बड़े योद्धे हिल जाते हैं, भार्या पेट की मार से स्वेच्छाचारिणी हो जाती है, पुत्र वा पुत्रियाँ साथ छोड़ अपने सुभीते की राह लेते हैं, माताओं ने भूख के मारे अपने बच्चों के मारे एक ग्रास पर बालक बेच दिये वा मार्ग में तड़प तड़प आत्महत्या कर ली। सच कहा है—

> वार्द्धक्ये जरा कष्टं कष्टं निर्धन जीवनम्।
> पुत्रशोकं महाकष्टं कष्टात्कष्टतरं क्षुधा॥

अर्थात्—प्रथम तो बुढ़ापा ही दुःखदाई है, निर्धन जीवन और भी दुःखदाई है। पुत्र का मरण महा क्लेश है और क्षुधा तो सब से महान् कष्ट है। गांधारी ने सौ पुत्रों का मरण देखने पर भी भूख से विह्वल हो भोजनोपाय किया था तो इस दीन ब्राह्मण का परिवार विचलित हो जावे तो क्या आश्चर्य है? किन्तु ऐसा नहीं हुआ। ब्राह्मण अपने नियत धर्म पर सकुटुम्ब स्थिर रहा। यद्यपि वह और उसकी पत्नी क्षुधार्त रहने से सूखकर ठठरी रह गईं; पर उनका आत्मा दुर्बल न था अतएव वे अपने व्रत से न डिगे। इसी प्रकार पुत्र वा पुत्रवधू ने भी मर्यादा रक्खी। अस्तु इसी भूखे समय में एक दिन सेर भर जौ ब्राह्मण को प्राप्त हुए उसने उनके सत्तू बनवाये और पाव पाव सेर स्त्री पुत्रादि को बाँट दिए और पाव भर अपने लिये रख छोड़े कि इतने में—

गाँव का रहनेवाला लाला हूं लेकिन किसी ने न सुना। यहाँ तक कि लालाजी के घरवालों ने भी न पहिचाना और लाला जी को मारते रहे। जब लाला जी ने देखा कि अब प्राण ही जाते हैं तब भाग खड़े हुये और वन में जा एक स्थानमें बैठ रहे। पश्चात् महात्माजी जिस ओर लालाजी भग कर गये थे, जाकर लालाजी से मिले और कहा—"कहो लालाजी फुरसत है?" लालाजी ने महात्मा से कहा—"महाराज, हम से जो कहो सो करें, हमें तमाम दिन फुरसत है। पर अब ऐसा उपाय कीजिये जिससे कि मैं अपने घर तो जाने पाऊं" महात्मा ने कहा कि "तो प्रतिज्ञा करो कि हम आज से नित्य पूजा, पाठ, सन्ध्या, अग्निहोत्र, परमात्मा का भजन करेंगे।" लालाजी ने प्रतिज्ञा की महात्माजी ने लालाजी को अपने साथ ले उनके घर पहुंचा दिया।

इसका दार्ष्टान्त यों है कि जीवात्मा रूपी लाला को परमात्मा रूपी महात्मा ने उपदेश दिया था—

अहरहसन्ध्यामुपासीत तस्तारहोरात्रस्य संयोगे ब्राह्मणः सन्ध्यामुपासीत उद्यन्तमस्तं यान्तमादित्यमभिध्यायन न तिष्ठति तु यः पूर्वां सायं सायं ग्रहपतिर्नो प्रातः प्रातः ग्रहपतिर्नो।

नित्य प्रातःकाल से उठते ही ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ, नृयज्ञ आदि स्वधर्म का पालन, सबसे मेलमिलाप किया करो, पर इन्हें तो 'आदित्यस्य गता गतैरहरहः' सांसारिक कामों तथा विषयों से फुरसत ही नहीं। परमात्मा ने सोचा कि इस प्रकार यह न मानेगा अतः उसने अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अतिशीत, अति-उष्ण, नाना प्रकार के प्लेगादि रोगों के द्वारा इस फुरसत न पाने वाले पापी जीवात्मा शैतान को खूब ही ठीक कराया। तब तो यह दुःख में पड़ महात्मा के चरणों में गिर कर बोला

कि—"महाराज, जो कहो सो करें।" जैसे आज कल संसार में वैसे तो कभी नाम नहीं लेते पर दुःख पड़ने पर 'हाय राम हाय राम! हे ईश्वर! कहीं कथा मानते हैं, कहीं होम मानते हैं, परन्तु किसी भाषा के कवि ने कहा है—

दुःख में सुमिरन सब करैं, सुख में करै न कोय।
सुख में जो सुमिरन करै, तो दुःख काहे को होय॥

इससे क्यों न हम सब लोग आगे से ही अपने कर्त्तव्य कर्मों का पालन करें ताकि इस दुःख के देखने की नौबत ही न आये।

१८-ऋषिसन्तानों का त्याग

महात्मा कणाद जब सब काश्तकार अपने खेत काट लेते थे और उनका शीला बीन लिया जाता था और उन खेतों में पशु-चर जाते थे और जब देखते कि अब इस खेत में काश्तकार का कुछ नहीं रहा तब वे एक एक कण बीन कर अपना निर्वाह किया करते थे, इसलिये उनका नाम कणाद (अर्थात् 'कणान् तीति कणादः' कण बीन बीन कर खानेवाला=कणाद) हुआ। इस भांति तो महात्मा अपना निर्वाह करते और हमारे लिये 'वैशेषिक दर्शन' जैसा रत्न कितने कितने भारी कष्ट उठा कर रच गये, जिसको हम आज पढ़ते भी नहीं हैं। ये महात्मा केवल शरीर में एक लंगोटी लगाये नङ्ग धड़ङ्ग वन में रहा करते थे परन्तु जिस वन में ये रहा करते थे, जब उस वन के राजा के यहाँ खबर पहुंची कि आपके राज्य में एक महात्मा इस प्रकार से रहा करते हैं और शास्त्रों में लिखा है कि यदि किसी राजा के राज्य में कोई सच्चा महात्मा कष्टित रहे तो राजा का संपूर्ण

राज्य तथा पुण्य, दान, धर्म, तप, सब का सर्म नष्ट होजाता है। ऐसा जान राजा जी ने अपने कामदारों के हाथ कुछ द्रव्य महात्मा कणाद की सेवा में भेजा। वे कामदार जाकर द्रव्य ले सामने खड़े हो गये। जब कुछ काल के पश्चात् महात्मा ने ध्यान से कपाट खोले तो पूछा—"तुम कौन हो, और कहां आये हो?" कामदारों ने कहा—"महाराज आपके लिये यहां के राजा साहब ने कुछ द्रव्य भेजा है।" महात्मा जी ने कहा—"तुम जाकर किसी कंगले को दे दो।" कामदार यह शब्द सुन हैरान थे कि इस महात्मा के पास केवल एक लंगोटी है, पर यह कहता है कि तुम यह द्रव्य जाकर किसी कंगले को दे दो। कामदारों ने राजा से आकर वैसा ही कह दिया। राजा ने इस बात को अपनी सभा में उपस्थित किया। वहां यह निश्चय हुआ कि राजा साहब की हैसियत के अनुसार यह सत्कार न था, इस लिये महात्मा जी ने लौटा दिया है। ऐसा सोच कर उस द्रव्य को दुगुण कर पुनः कामदारों को राजा साहब ने भेजा। पर महात्माजी ने फिर भी यही कहा कि तुम जाकर किसी कंगले को दे दो। राजा साहब ने पुनः इस बात को सभा में प्रगट किया। अब की बार यह निश्चय हुआ कि राजा साहब स्वयमेव इसका चौगुना द्रव्य और बहुत सा सामान दुसाले आदि ले कर जांय और ऐसा ही हुआ। जब राजा साहब पहुंचे और उन्होंने सब सामान महात्मा जी के सन्मुख उपस्थित किया तो महात्माजी ने कहा—"तुम इस सामान को जाकर किसी कंगले को दे दो।" राजा ने हाथ जोड़ कर कहा—"महात्माजी, अपराध क्षमा हो आपके पास सिवाय एक लंगोटी के और कुछ तो दीखता ही नहीं और आप इस सामान के लिये यह कह रहे हो कि तुम जाकर किसी कंगले को दे दो। हमें तो आप से विशेष कंगला और कोई

दीखता नहीं। महात्मा ने फिर वही कहा "कि तुम जाकर किसी कंगले को दे दो। राजा विवश हो लौट आया और जब रात में अपनी चित्रसारी पर आकर लेटा तो उसने अपनी रानी से संपूर्ण वृत्तान्त कहा। रानीजी ने कहा कि 'आपने बड़ी भूल की। ऐसे विद्वान तत्वदर्शी को आप द्रव्य और दुशाले दिखलाने गए थे। उनके पास क्या नहीं है? और दूसरी भूल यह की कि ऐसे महात्मा के पास पहुंच कर कुछ रसायन विद्या ही सीख आते जिससे कि राज्य के सैकड़ों गरीबों का काम चलता। इस से अब भी कुशल है, आप महात्मा के पास जाकर पूछ आइये। आधी रात का समय है। राजा उसी समय उठकर महात्मा जी के पास गया। ज्योंही राजाजी पहुंचे कि महात्माजी ने पूछा "कौन है?" राजा ने उत्तर दिया कि—"वही दिनवाला आपका सेवक राजा है।" महात्मा ने कहा—"आप इतने समय क्या आये?" राजा ने कहा—"महाराज, हमारा अपराध क्षमा हो जो हम आपको अपनी दौलत दिखाते रहे। अब हमें आप कोई ऐसी रसायन विद्या बता दें जिससे हमारे राज्य के दीनों का पालन हो और हम और बहुत कुछ पुण्य दान कर सकें।" महात्मा जी ने कहा—"राजन्, मैं दिन में तेरे दर्वाज़े नहीं गया, लेकिन अब आधी रात का समय है और तू मेरे दर्वाज़े खड़ा है। अब बतला कि मैं कंगला हूं या तू कंगला है?" राजा साहब ने महात्मा के चरणों पर सिर नवा क्षमा मांगी। पुनः महात्मा ने राजा को रसायन-विद्या यानी ब्रह्म-विद्या का उपदेश किया और विषय रूपी लोहे को सोना बनाना बता दिया।

११–महात्मा कैयट का त्याग

संसार में ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो महात्मा कैयट से विज्ञ

न हो। आपका महाभाष्य-तिलक जगद्विख्यात है। जिस समय आप महाभाष्य-तिलक बना रहे थे उस समय आपकी यह दशा थी कि आप स्वयं महाभाष्य-तिलक वन में लिखा करते थे और आपकी धर्मपत्नीजी वन से मूंज लाकर उनकी रस्सी बटतीं और उसे बेच अन्न ले उसे कूट पीस भोजन तय्यार कर कहतीं कि "प्राणनाथ स्वामिन्, भोजन तैयार है।" ऐसा सुन महात्मा कैयट अपनी लेखनी रख भोजन करने जाते थे। एक दिन यहां के राजाने महात्मा कैयट की यह दशा सुनी तो वह स्वयं उनकी सेवा में जा हाथ जोड़ उपस्थित हुआ। महात्मा कैयट नीचे सिर झुकाये लिख रहे थे। कुछ काल के पश्चात् जब उन्होंने सिर उठाया तो तुरन्त ही राजाने प्रणाम कर कहा—"महाराज आप हमारे राज्य में इतना कष्ट उठा रहे हैं, इससे हमें बड़ा भारी पाप लगता है।" इतना सुनते ही महात्मा कैयट ने अपनी धर्म पत्नी से कहा कि—"यदि हमारे रहते हुये राजा को पाप लगता है तो उठाओ चटाई, यहां से चलें।" यह सुन राजाने कहा कि—'महाराज! मेरा यह प्रयोजन नहीं कि आप चले जांय, मेरा तो यह अभिप्राय है कि यदि आपके रहते हुये हम आपका सत्कार न करें और आप इतने कष्ट भोगें तो हम पापी हैं।" और राजाने हाथ जोड़ महात्मा से कहा कि—"महाराज आप जो जो पदार्थ कहें या जो आज्ञा हो उसके लिये यह आपका सेवक उपस्थित है।" महात्मा कैयट ने राजा जी से कई वार यह कहला लिया कि—"आप हमारी आज्ञा मानेंगे?" राजा ने कहा—"महाराज, कहिये।" महात्मा कैयट ने कहा—"हम यही आपसे मांगते हैं कि आप इसी समय यहां से चले जाइये।"

२०--एक ब्राह्मण

एक वार एक वेदशास्त्रों का ज्ञाता, शुद्ध ब्राह्मण एक वन में

तपस्या कर रहा था। महाराज अर्जुन ने उसका समाचार सुन अपना एक दूत ब्राह्मण को निमंत्रण देने के लिये भेजा। ब्राह्मग के पास ज्योंही वह दूत पहुंचा और उसने ब्राह्मण से निवेदन किया कि—"महाराज, आपको आज महाराज अर्जुनने निमंत्रण भेजा है।" तो ब्राह्मग यह सुन दूत को कुछ भी उत्तर न दे कर तुरन्त ही रोने लगा। कुछ काल के पश्चात् दूत वहां से चला गया और उसने जाकर महाराज अर्जुन से कहा कि—"महाराज, ब्राह्मण से ज्योंही मैंने जाकर निमंत्रण को कहा त्योंही वह रोने लगा।" यह सुनते ही महाराज अर्जुन भी रोने लगे। दूत यह चरित्र देख और आश्चर्य को प्राप्त हुआ और वहां से चल कर उसने महात्मा योगिराज श्रीकृष्णचन्द्र के पास जा पूछा कि—"महाराज, आज मुझे महाराज अर्जुन ने अमुक वन में जो एक तपस्वी ब्राह्मग रहता है उसे निमंत्रण देने को भेजा था, ज्योंही मैंने जाकर उस ब्राह्मण से निमंत्रण को कहा, ब्राह्मण उसी समय रोने लगा और जब मैंने महाराज अर्जुन से उसका समाचार कहा तो वे भी रोने लगे। सो महाराज, इन दोनों महाराजाओं के रोने का कारण बातइये ?" भगवान् श्रीकृष्ण ने दूत को उत्तर दिया कि—"ब्राह्मण तो इस लिये रोया कि मैं जितना काल न्योता खाने में दूंगा उतने काल मेरे तप में बाधा होगी और यह सोचा कि अब आगे ऐसे ब्राह्मण होंगे कि जिन्हें जप तप से कोई अर्थ न रहेगा, केवल न्योता खाने में ही वे अपना समय वितावेंगे और अर्जुन इस लिये रोया कि हा! क्षत्री आज ऐसे हो गये कि जिनका ब्राह्मणों ने तिरस्कार किया!"

हमारे इसके लिखने का प्रयोजन यह है कि जब तक ब्राह्मण वास्तविक ब्राह्मग, वेद शास्त्रों के ज्ञाता, आचार विचार में श्रेष्ठ थे तब तक संसार में इनके प्रताप से पृथ्वी काँप रही थी। देखिये शूरवीर कर्ण ने कहा है—

नाहं विशंके सुरराजवज्रान्न त्र्यक्षशूलान्न यमस्य दण्डात् ।
नाग्नेर्न सोमान्न रविप्रतापात् शङ्काम्यहं ब्रह्मकुलापमानात् ॥

अर्थ—मैं इन्द्र के वज्र से नहीं डरता और न महादेव के त्रिशूल ही से डरता हूं, न यमराज के दण्ड ही से डरता हूं, न अग्नि से और न चन्द्रमा से, न सूर्य्य से, इनमें से किसी से किंचित् मात्र भी नहीं डरता, मुझे डर है तो केवल इतना कि कहीं ब्राह्मणों के कुल का मुझ से अपमान न हो जाय। यही नहीं बल्कि देखिये रामचन्द्र ने कहा है—

विप्रप्रसादात् धरणीधरोऽहं, विप्रप्रसादात् कमलावरोऽहं ।
विप्रप्रसादात् अजिताजितोऽहं विप्रप्रसादात् मम राम नामः ॥

अर्थ—ब्राह्मणों ही के प्रसाद से मैं धरणीधर हुआ और ब्राह्मणों ही के प्रताप से धनुष तोड़ सीता को ब्याहा, विप्रों के ही प्रसाद से लङ्का फतेह की और ब्राह्मणों ही के प्रसाद से हमारा राम नाम है। तथा तुलसी दास ने भी कहा है—

कवच अभेद विप्र-पद-पूजा । यह सम विजय उपाय न दूजा ॥

परन्तु आज कल तो निमंत्रण आने पर यह दशा होती है, जैसा कि एक बार एक ब्राह्मण के घर पर निमंत्रण आया तो उस ब्राह्मण के बालक ने कहा कि—

ऊर्ध्वं गच्छन्ति डकारा अधो वायुर्न गच्छति ।
निमंत्रणमागतं द्वारे किं करोमि पितामह ॥

अर्थ—खट्टी डकारें ऊपर को आरही हैं, नीचे अपान वायु निकलती नहीं, निमंत्रण दूसरा दरवाजे पर आया, पिता जी क्या करूं? अब पिता का उत्तर सुनिये—

बालकं वचनं श्रुत्वा निमंत्रणं मन्यते ध्रुवम् ।
मृत्युजन्म पुनरेव परान्नंच दुर्लभम् ॥

—

अर्थ—बेटा सुनो, निमंत्रण को निश्चय मान लो, क्योंकि मर कर तो फिर भी जन्म मिल जायगा पर पराया अन्न संसार में दुर्लभ है।

२१—अतिथि-सत्कार

कुरुक्षेत्र में कपोती नाम का एक संन्यासी ब्राह्मण रहता था जो उंछ वृत्ति से अपने कुटुम्ब का पालन करता था। ब्राह्मण के परिवार में चार मनुष्य थे—ब्राह्मण, उसकी धर्मशीला स्त्री, पुत्र और पुत्रवधू। ब्राह्मणी तथा उसकी बहू आज कल की कर्कशा स्त्रियों के समान पतियों पर दाँत पीसनेवाली न थीं न वे यही जानती थीं कि पति के सिवा पैराट या जवंई सदार भी संसार में देवता हैं। पुत्रवधू पति की सेवा के सिवा सास ससुर के इशारे में चलती और उनको अपना पूज्य मानती तथा श्रद्धा से उनकी सेवा करती थी। ब्राह्मण का पुत्र भी बाप की खाल काढ़ने और मूछ उखाड़ने में उजड्ड न था वरन् पिता की आज्ञा का पालन करना, उनके गौरव के अनुकूल वर्तना ही अपना कर्तव्य जानता था। इस प्रकार धर्मतापूर्वक वर्ताव होने से दीनता होते हुए भी इस कुल को कुछ दीनता का दुःख न था। सच है, धर्म ऐसी ही वस्तु है कि जिसके धारण से निर्बल बलवान् हो जाता है निर्धन धनवानों की अपेक्षा अधिक सुख पाता है और भूखा अघानों के समान सुखी रहता है। ब्राह्मण और उसके परिवार के लोग भीख नहीं मांगते थे, न कहीं बुलाने से भी दान लेने जाते थे; खेत कट जाने पर जो उसमें अन्न झड़ पड़ता था उससे पेट पालते थे। व्रतादि वे छठे दिन करते थे, यदि इस समय आहार न मिले तो फिर दूसरे छठे दिन अन्न ग्रहण करते थे। व्रतकाल में इन लोगों का यही नियम था और इस

ने कहा कि—"कोई अपनी चीज़ दीजिये!" महाराज जनक ने कहा कि—"हमारे पास हमारी चीज़ और क्या है ?" महाराज अष्टावक्र ने कहा कि—"आप अपना मन हमें दे दीजिये तो हम आपको ईश्वर से मिला दें।" बस जहां महाराज जनक ने अपना मन ठहराया वहीं महाराज को ब्रह्मानन्द का अनुभव होने लगा और बड़ा ही आनन्द प्राप्त हुआ, क्योंकि कठोपनिषद् में कहा भी है

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानाऽस्ति किंचन ।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥

अर्थात्—शुद्ध मन से ही परमेश्वर प्राप्त हो सकता है ।

१७—क्या करें फ़ुरसत नहीं मिलती

एक लालाजी से एक महात्मा जी जब कभी यह कहते कि लालाजी कुछ सन्ध्या, गायत्री, होम, यज्ञ परमेश्वर का भजन किया करो तब तब लालाजी तुरन्त ही यह उत्तर दे देते थे "क्या करें जनाब, फ़ुरसत नहीं मिलती।" महात्मा ने सोचा कि यह इस तरह न मानेगा. अतः एक दिन लालाजी जब कि पाखाने जा रहे थे, महात्मा जी ने गांव में जाकर यह शोर कर दिया कि एक शैतान इस किस्म का (बस इस क़िस्म के वर्णन में महात्मा जी ने लाला की सब हुलिया वर्णन कर दी) आया है उसने कई समीप २ के गावों में कितने ही मनुष्य मार डाले और खा गया और वह शैतान अगर गांव में घुस जाता है तो फिर निकाले नहीं निकलता है इस लिये सब गांव के लोग तैय्यार हो जाओ। बस गांववाले कोई लाठी, कोई डण्डा, कोई ढेले ले ले तैय्यार हो गये और ज्यों ही लालाजी आये तो गांव के लोगोंने लालाजी को बेहद पीटा। लालाजी ने सब कुछ कहा कि मैं इसी

कृत जप्याग्निहोत्रास्तेतु हुत्वा चाग्निं यथाविधि ।
कुडवं कुडवं सर्व्वे व्यभजंत तपस्विनः ॥

अश्वमेध प० अ० ६० ।

अर्थ—जप और अग्निहोत्र करके ब्राह्मण भोजन करने के विचार में ही था कि इतने में कुरोज़ में मुद्रा की भांति द्वार पर कुछ आहट हुई । जान पड़ा कि कोई अतिथि अभ्यागत है। यदि और कोई होता तो ऐसे समय छुड़ जाना और किंवाड़ न खोलता, परन्तु कपोती इसके विरुद्ध प्रसन्न हुआ । उसने सहर्ष द्वार खोल दिया और अतिथि को बड़े आदर से कुटी में लिवा लाया । ब्राह्मण को अर्घपाद्य से अर्चित कर भोजन के लिए निवेदन किया । अतिथि के आने से छै दिन का भूखा सारा परिवार खाने से रुक गया । आर्य्य-धर्म-शास्त्र की यही मर्य्यादा है कि अभ्यागत को जिवाने के पीछे घर वाले भोजन करें । कपोती ने अपने भाग के सत्तू उस अतिथि के भोजनार्थ परोस दिये जिन्हें वह रखते ही चाट गया और उसका पेट न भरा । अतिथि की और इच्छा देख कपोती विचारने लगा कि अब कहां से दिया जाय जो यह तृप्त हो । कपोती को चिन्ताकुल देख उस की वीर पत्नी ब्राह्मणी ने कहा— "महाराज, क्यों चिन्ता करते हो ? मेरा भाग भी दे दीजिये ।" यह सुन कर ब्राह्मण चहुंक उठा । वह जानता था कि ब्राह्मणी छे दिन की भूखी है । कपोती कहने लगा कि—"भार्य्ये, एक तो तुम वृद्ध हो तिस पर आपत्काल में यथासमय अन्न न पाने से कृश हो रही हो । तुम्हारी आकृति पर श्रम और ग्लानि भासित होती है । मांस तुम्हारे शरीर पर नहीं रहा, केवल अस्थि चर्म अवशिष्ट है और तुम उठने बैठने में कंपित-कलेवर हो रही हो अतएव तुम्हारा भाग देते हुए मुझे ग्लानि होती है । पखेरू और दूसरे जानवरों के मादा भी बचाने और पालन करने

योग्य होते हैं, कारण कि सन्तानोत्पत्ति की भूमि नारी है। उसी से नरों का पालन होता और लोक परलोक सम्बन्धी कार्य्य चलते हैं।

नवेति कुर्वतो भर्त्ता रक्षणं यो नरः पुमान्।
अयशो महाव माप्नोति नरकांश्चैव गच्छति॥

अर्थ—जो पुरुष स्त्री की रक्षा करने में असमर्थ होता है वह बड़ा अपयश पाता है और नरकों में भेजा जाता है। यह सुन कर वृद्ध तपस्विनी ने उत्तर दिया—

इत्युक्त्वा सा ततः प्राह धर्मार्थोनौ समौद्विज।
स्वतु मस्य चतुर्भागं शृणुष्वेमं मर्मादमे॥
सत्य रतिश्च धर्मश्च स्वर्गश्च गुणनिर्जितः।
स्त्रीणां पतिसमाधानं कांक्षितं च द्विजर्षभ॥
ऋतुर्माता पिता बीज दैवतं परमं पतिः।
भर्तुः प्रसादान्नारीणां रति पुत्र फलं तथा॥
पालनाद्धि पतस्त्वं मे भर्त्तासि भरणाच्च मे।
पुत्रदानद्वारदास्त्वमात्सक्तेन मयरक्ष मे॥

अर्थ—हे द्विजश्रेष्ठ! मेरा और आपका धर्म में साथ है। स्त्री के व्रत धर्म पति के अधीन होते हैं। ऋतु माता पिता बीज परम देवता पति धर्म शास्त्र में कहा है। भक्ति ही के प्रसाद से स्त्री को सुख और पुत्र लाभ होता है। मेरा आप पालन करते हैं इस कारण पति, और भरण करने से भर्त्ता हैं, और पुत्रदान देने से वरदायी हैं। सो हमारा सबों का देना स्वीकार करें। अभ्यागत का गृहस्थ के घर से असंतुष्ट जाना शास्त्र-विरुद्ध है, अतएव मेरे जीवन मरण का विचार छोड़ अतिथि को तृप्त कीजिये।

वस्तुतः विदुषी ब्राह्मणी का यह उत्तर धर्मसहोदर था अब ब्राह्मण को कोई बात दोहराने योग्य प्रतीत नहीं हुई। सचमुच धर्म में स्त्री पुरुष का सङ्ग और साझा है, इसी कारण वह अर्धाङ्गिनी कहाती है। विवाह के समय होमाग्नि के निकट चार सलेमानसों में बैठ स्त्री-पुरुष यही प्रतिज्ञा करते हैं कि हम दोनों एक मन होकर रहेंगे, परस्पर एक दूसरे की प्रसन्नता से कार्य करेंगे और धर्म के कामों में समानता से भाग लेंगे। पति ने अपना आहार अतिथि को खिला दिया है, वह अब छै दिन तक अपने नियम के अनुसार भोजन नहीं कर सकता, पति भूख से व्याकुल रहे स्त्री पेट भर कर सुख की नींद सोवे, यह बात पतिव्रता ब्राह्मणी को किसी प्रकार स्वीकार न हुई। उसने अपना भाग अतिथि को खिला दिया। परन्तु इतने पर भी अतिथि की उदर-दरी न भरी, तब ब्राह्मण और ब्राह्मणी सोच में पड़े। माता पिता को सोच विचार में डूबा जान कर पितृभक्त आज्ञाकारी पुत्र भी अपना भाग देने लगा। उसने इस बात पर किञ्चित् ध्यान न दिया कि मेरा प्राण रहेगा वा पलायन कर जावेगा, कल माता से 'मा' कह कर पुकारने की शक्ति रहेगी या नहीं। पिता का प्रण रहना चाहिये। पिता ने जिस अतिथि को सादर बुलाया वह कुटी से भूखा जायगा, यह बड़ी ग्लानि और मानहानि की बात है। पिता का प्यारा पुत्र कहने लगा—

सक्तून् इमान् प्रगृह्य त्वं देहि द्विजाय सत्तम।
इत्येवं सुकृतं मन्ये तस्मादेतत् करोम्यहम्॥
भवान्हि परिपाल्यो मे सर्वदैव प्रयत्नतः।
साधूनां काङ्क्षितं यस्मात्पितुर्वृद्धस्य पालनम्॥
पुत्रार्थो विहितो ह्येष वार्द्धक्ये परिपालनम्।

श्रुतिरेषाहि त्रिषु लोकेषु शाश्वती ॥

अर्थ—इन सत्तुओं को भी जो मेरे भाग के हैं अतिथि को खिला दीजिये, इसको मैं परम सुकृत मानता हूं। आपने मुझे पाला और सदा रक्षा की है, यह शरीर आप ही का है वृद्ध पिता की आज्ञा का पालन करना शिष्ट-सम्मत है, पुत्र के होने का प्रयोजन यही है कि वह वृद्ध पितरों की सेवा करे, श्रुति निरन्तर तीनों लोक के लिये यही उपदेश करती है।

पुत्र की अमायिक भक्ति और ज्ञान भरे वचन सुन कर वृद्ध पिता की आँखें डबडबा आईं। वह सोचता है कि आज आहार न मिलने से पुत्र को आगामि पष्ठकाल तक १२ दिन का अन्तर पड़ेगा, इस बीच यदि चिरजीवि को कुछ अनिष्ट हुआ तो मैं पुत्रघ्न कहा कर किस प्रकार मुंह दिखाऊंगा और यह ब्राह्मणी किसका मुंह देख जीवन धारण करेगी? बुढ़ापे में एक मात्र अन्धों की यही लकड़ी है, पुत्रवधू की जवानी की नदी पार करने को यही नाव है और अपने वंश की भावी उन्नति का यही मार्ग है। पुत्र की अमङ्गल वार्ता जान उसकी वधू भी प्राण विसर्जन करेगी। संसार में मेरा अपयश होगा। मेरी आँख का तारा क्या मुझे छोड़ जायगा! मैं किस प्रकार प्राण रक्खूँगा? बूढ़े की आँखों के आगे अँधेरा छा गया। पुत्र-निधन वार्ता के स्मरण ने उसे फिर एकाएक चौंका दिया, मानों स्वप्न देख कर नींद खुली हो। बुड्ढे ने आँख उठा कर देखा तो पुत्र सत्तू लिये हाथ जोड़े खड़ा है। वह उसे आँख फाड़ फाड़ कर देखने लगा। पुत्र को अक्षत देख पिता को ढाढ़स आया और ज्ञान का तेज उसके हृदय पर फिर अपना प्रभाव करने लगा। तपस्वी को धीरज हुआ ज्ञानियों पर भी कभी अज्ञान आक्रमण करता है, परन्तु वे क्षण भर ही में

सचेत हो जाते है, क्योंकि उनका आत्मा बलवान होता है। यह आत्मिक उन्नति प्राचीन समयमें हमारे देश में बहुत थी। यदि ऐसा न होता तो राम कभी वन को न जाते एवं लक्ष्मण जी उस घोर विपत्ति में उनका साथ न देते, न हरिश्चन्द्र अपने मृत पुत्र को गोद में लिये प्यारी भार्य्या से कर मांगते। अस्तु पिता ने चैतन्य हो पुत्र को आशीर्वाद देते हुए कहा कि—"प्राण प्रिय दीर्घायु होकर सुपुत्रों को उत्पन्न करनेवाले हो। पुत्र से अन्य पुत्रों की उत्पत्ति होने पर पिता कृतकृत्य होता है किन्तु तेरे भूखे रहने से बलक्षय होगा और आगामि कुल वृद्धि रुक जावेगा। बालकों की भूख बलवती होती है। मैं बूढ़ा हूं। मुझे क्षुधा बहुत नहीं सताती। मैं चिरकाल से आहार पाने में उपेक्षा करता आया हूं इस कारण भूख प्यास रोकने में सहनशील हो गया हूं। तेरे रहते हुए मुझे मरने का भय और सोच नहीं।"

पाठक विचारिये तो सही, कितनी कठिन बात है कि पिता अपने पुत्र को, नहीं नहीं अपने हृत्पिण्ड को भूखा देखे और प्राणों से अधिक प्यारे का भाग सहसा किसी को दे दे! पशु पक्षी तक अपने बच्चों को चराते हैं क्या पुरुष क्या स्त्री सारा जगत् मोह-सरिता में गोते खा रहा है। पिता को धर्म-संकट में पड़ा देख पुत्र ने फिर कहा—

अपत्यगसमत पुंसस्त्राणात्पुत्र इति स्मृतः।
आत्मापुत्रस्मृतस्त्रस्मा त्राह्यात्मानिमह त्मना॥

अर्थ—हे पिता! मैं तेरी सन्तान हूं, पिता की रक्षा करने हीं से वह पुत्र कहाता हैं। आत्मा ही पुत्र कहा हैं और मैं तेरा आत्मा हूं इस कारण आत्मा ही से आत्मा का त्राण होना चाहिये।

यह धार्मिक वचन पिता के मनमें बैठगया। उसका आत्मा धर्म से जाग्रत था। दशरथ ने मोह ममता छोड़ यज्ञ की रक्षा

के लिये विश्वामित्र के साथ राम को कर दिया था तो इस तपस्वी कपोती ने भी प्राणोपम पुत्र का बारह दिन तक क्षुधा पीड़ित रहना स्वीकार किया किन्तु अतिथी को सन्तुष्ट करने से मुंह न मोड़ा। "हे सते हे सते ! पुत्र का भाग भी अभ्यागत को खिला दिया किन्तु अतिथी न जाने कब का भूखा था वह यों सत्तू पोंछ कर खा गया परन्तु उसकी भूख न गई।" कपोती लज्जित और विस्मित हुआ। अतिथी को तृप्त करना धर्म है जिसके लिये ब्राह्मण अपना और अपनी प्रिय भार्या का भाग दे चुका है प्राणप्रिय पुत्र की होनहार गति की कुछ भी चिन्ता न करके उसका भाग भी खिला दिया है। सारा परिवार किस प्रकार दिन काटेगा, इसका भी उसे कुछ सोच नहीं है। सोच है तो केवल इस बात का कि अतिथी भूखा न रहे। यही बात उसे व्याकुल कर रही है। धन्य तपस्वी का हृदय ! कपोती यही सोच रहा था कि उसकी साध्वी पुत्रवधू सम्मुख आकर उपस्थित हुई। लज्जा से उसकी दृष्टि नीची है, सत्तू की पोटरी हाथ में है, नम्रता से शरीर झुक रहा है, न उसको इस समय भूख है न आगे भूख लगने की चिन्ता है। पतिव्रता तपस्विनी देख चुकी है कि उसके सास ससुर ने अपना अपना भाग अतिथि को सानन्द खिला दिया है, पति-देव ने भी देह-मोह छोड़ अपना हिस्सा जिमा दिया है फिर यह साध्वी कब रह सकती है ? वह भी अपने पति की अनुगामिनी है सास ससुर की मर्यादा पर चलनेवाली है। पुत्र-वधु ने हाथ जोड़ कर कहा कि—"ये पाव सेर सत्तू मेरे पास हैं इन्हें भी अतिथी को खिला कर सन्तुष्ट कीजिये।" वृद्ध श्वसुर उसकी आकृति देख दया के मन्दिर में जाता है सहसा कुछ कहने को समर्थ नहीं होता जो नाना प्रकार की खाद्य वस्तुओं से लाड़ लड़ाने योग्य है, उसका आहार हरण कर दूसरे को देना कैसे कष्ट की बात है

अपनी यह बेटी का खिलौना भी अन्य को देते मनुष्य का मन नहीं पुसाता फिर भूखी का भोजन छीन कर अतिथि को दे देना कैसा नृशंस और कठोर व्यापार है, विशेषता स्त्री जाति का जो अपने आश्रय है। पुत्रवधु के कहने पर ब्राह्मण सम्मत न हुआ। उसने कहा कि—

आतातप विशीर्णांगीं त्वां विवर्णां निरीक्ष्यवे।
कर्षितां सु व्रताचारे क्षुधा विह्वल चेतसम्॥
कथं सक्तून गृह्णीयामि भूत्वा धर्मोऽपघातकः।
कल्याणि वृत्ते कल्याणि नैवत्वं वक्तुमर्हसि॥
षष्ठे काले व्रतवतीं शौचशीलतपोन्वितां।
कृच्छ्र वृत्ति निराहारां द्रक्ष्यामि त्वां कथं शुभे॥
बाला क्षुधार्ता नारी च रक्ष्यात्वं सततं मया।
उपवास परिश्रांता त्वं हि बांधवनन्दिनी॥

अर्थ—हे प्यारी वधू, धूप से कुम्हलाई हुई लज्जावंती वन कान्ति के समान मैं तुझको उदास देखता हूं। व्रत आचार करते करते तेरा भी तन क्षीण हो गया है। भूख से तेरा चित्त विह्वल लज्जित होता है। निराहार कृच्छ्र व्रत करने से तेरे हाड़ निकल आये हैं मांस के सूखने से हाथों की रगें खुल रही हैं। बाला, क्षुधार्त और नारी होने से तू निरन्तर दया-पात्री है तिस पर छे दिन के उपवास से परिश्रांत हो रही है मैं धर्म का घातक होकर किस प्रकार तेरे सत्तुओं को ग्रहण करूं तुझको आग्रह न करना चाहिये।

इसके उत्तर में पुत्रवधू ने कैसा धर्म-सम्मत वचन कहा है जो हमारी प्यारी बहनों के ध्यान देने योग्य हैं वे इस आदर्श

में अपना मुख देखें और विचार करें कि हमारे बीच धर्म का भाव कितना है ? हम कहां तक सास ससुर की आज्ञा मानती हैं और कितना पति के कहे पर चलती हैं ?

गुरोरपि गुरुस्त्वं वै यतो दैवत दैवम् ।
देवातिदेव: तस्मात्वं सक्तूनाद्त्स्व मे प्रभो ॥
देह: प्राणश्च धर्मश्च शुश्रूषार्थमिदं गुरो ।
तव विप्र प्रसादेन लोकान्प्राप्स्यामहे शुभान् ॥

अर्थ—वहू ने बड़ी नम्रता से उत्तर दिया कि हे महाराज ! आप मेरे गुरू के गुरु हैं (यह उनका संकेत पति की ओर था अर्थात् आप मेरे पति के पूज्य अथवा गुरु होने से गुरु के गुरु हैं) इसी प्रकार देवताओं के देवता हैं। हे गुरो देह और प्राण सब आपकी सेवा के लिये हैं धर्म का फल भी आपके निमित्त है आपकी प्रसन्नता ही से उत्तम लोकों की मुझे प्राप्ती है, इस कारण सत्तू अतिथी को खिला दीजिये ।

प्रेम, भक्ति एवं धर्म से भरे वहू के वचन सुन कर ससुर का हृदय उमड़ आया। उसकी आंखों से पवित्र प्रेमाश्रु चलने लगे और कण्ठावरोध हो गया वृद्ध ने अपने को बहुत सम्हाल कर गद्गद् कण्ठ से इतना ही कहा कि—"तू धर्म-वृत्ति और बड़ों की सेवा के लिये अमायिक भाव से स्थिर है तुझे प्राणों से धर्म अधिक प्रिय है इस कारण सत्तू स्वीकार करता हूं।" यह कह कर वधू के दिये सत्तू अतिथि को खिला दिये। उसने सन्तुष्ट होकर बहुत आशीर्वाद दिया। ब्राह्मण के परिवार की देवता और ऋषियों ने प्रशंसा की। धर्मज्ञ पुरुषों ने विमानारूढ़ होकर उस पर पुष्प वृष्टि की।

पाठक ! विचारिये, प्राचीन समय कैसा था ? धर्म को

प्राणों से भी अधिक चाहनेवाले लोग उपस्थित थे। उनकी प्रतिष्ठा और प्रशंसा भी शुद्ध भाव से लोग करते थे। पुष्पवृष्टि और साधुवाद से धर्मात्मा का मान! क्या अद्भुत समय था जब भारत-जननी की गोद में ऐसे पुरुष रत्न खेला करते थे। पुत्र धर्म के लिये प्राण देने को तत्पर हैं, मां खड़ी देख रही है उसका पेट नुचता है पर पति के आगे चूं नहीं करती। अब वह समय है कि बेटे को बाप सुधारना चाहता है तो माँ मुंह देती है, कहती है "मेरे को वज्रदण्डी ही रहने दो। नहीं पढ़ता तो अनपढ़ा ही भला है, गुरुजी मारिये नहीं।" जब विद्या वा साधारण चाल चलन की यह दशा है तो सच्चा धर्मात्मा बनना कितना कठिन है। भारत धार्मिक सुपुत्रों से वञ्चित हो गया। यहां वालों का जीवन मरण हो रहा है और मरना तो इनको आता ही नहीं है। देश वा धर्म के वास्ते पूर्वजों को प्राण देना आता था। ऐसा दृष्टान्त इस समय पृथ्वी के आतिथ्य-सत्कार में विरला ही कदाचित मिले। तीन सौ वरस हुये रूम का बादशाह ईरान जब अपनी प्रजा की जांच के लिये भेष बदल कर निकला था तो क्षुधार्त होने पर उसने बड़े २ महाजनों से भिक्षा के लिये कहा, परन्तु किसी ने उसकी दीन दशा पर दया न की। अन्त को वह एक गरीब किसान के घर गया और कहा कि मैं थक गया हूं और भूख के मारे अधमरा हो रहा हूं कृपा करके मुझे आज की रात यहीं ठहरने की आज्ञा दीजिये। फलतः किसान ने उसका आतिथ्य सत्कार किया जिस के बदले बादशाह ने जन्म भर उसके परिवार का पालन किया। यूनान के प्रसिद्ध विद्वान् सोलन ने लेडिया के बादशाह क्रोसस से एक लड़के की इस बात की बड़ी प्रशंसा की थी कि आरगोस निवासी दो सगे भाई बैल न मिलने पर आप ही अपनी माँ की गाड़ी मन्दिर तक खींच ले गये। यहाँ के इतिहास बतलाते

हैं कि भारत के सपूतों ने माता पिता के वचन और व्रत पालन के लिये जानें दे दीं। धन्य आर्य्यभूमि! और धन्य आर्य्यशिक्षा!!

२२—धार्मिक राज्य

एक मुसलमान बादशाह ने हिन्दुस्तान के एक दक्षिणी राज्य पर चढ़ाई की और राज्य के छोर पर पहुंच कर अपना एक दूत राजा के पास भेजा और यह सन्देशा कहला भेजा कि—"या तो तू अपना राज्य खाली करदे या मेरे साथ युद्ध करने को तैयार हो जा" राजा ने यह सन्देशा सुन दूत से कहला भेजा कि—"हम राज्य को अपने सुख के लिये नहीं करते हैं किन्तु प्रजा के सुख के लिये करते हैं और नितान्त धर्मपूर्वक हमारा राज्य कार्य्य होता है। यदि इस भाँति तुम्हारा बादशाह करना स्वीकार करे तो हम राज्य छोड़ने के लिये तैयार हैं हम व्यर्थ मनुष्यों का घात नहीं करना चाहते।" दूत ने यह सन्देश [illegible] जाकर बादशाह से कहा। बादशाह उस राजा की न्यायोक्त वार्ता सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसके मन में इस राजा से मिलने की अभिलाषा उत्पन्न हुई और वह स्वयं राजा की सभा में आकर उपस्थित हुआ। सभा लगी हुई थी और दो कृषकों का अभियोग प्रविष्ट था। अभियोग यह था कि एक कृषक ने दूसरे कृषक के हाथ अपनी कुछ भूमि बिक्रय की थी, कुछ काल के उपरान्त उस बिक्रय की हुई भूमि में एक बड़ा भारी कोष निकला; तब तो मोल लेनेवाला कृषक बेचनेवाले से कहने लगा कि आपकी भूमि में एक कोष निकला है सो वह अपना कोष आप चल कर ले लीजिये, क्योंकि हमने तो केवल भूमि मोल ली है न कि कोष। इस पर बिक्रय करने वाला कृषक कहता है कि यदि भूमि बेचने के पहले हमारी भूमि होते हुए कोष निकलता तो निःसन्देह हम लेता और

था, परन्तु जब हमने वह भूमि आपको बेंच दी तब वह कोष भी आपका ही है। राजा ने इन दोनों वादी प्रतिवादियों का यह निर्णय किया कि—"तुम दोनों में जिस किसी के लड़का और जिस किसी के लड़की हो परस्पर उसका व्याह कर यह सम्पूर्ण कोष उन लड़के लड़की को दे दो।" बादशाह इस न्याय को देख दंग हो गया। राजा ने बादशाह से पूछा कि—"कहिये, आपकी राय में यह न्याय कैसा हुआ?" बादशाह ने कहा—"यह बिलकुल वाहियात हुआ?" राजा ने कहा—"भला, आप इसे कैसा करते?" बादशाह ने कहा कि—"हम तो इन दोनों को कारागार में भेज सम्पूर्ण कोष अपने कोष में भेज देते।" यह सुन राजा ने पूछा—"भला आपके राज्य में पानी बरसता है, जाड़ा गर्मी आदि ऋतुयें ठीक ठीक समय पर होती हैं, अन्न आदि उत्पन्न होते हैं?" बादशाह ने कहा—"ये सब होता है।" राजा ने पूछा कि—"आपके राज्य में केवल मनुष्य ही रहते हैं या और कोई पशु, पक्षी आदि भी रहते हैं?" बादशाह ने कहा—"सब जीव रहते हैं?" तब राजा ने कहा कि—"उन्हीं पशु पक्षियों के भाग्य से चाहे आप के यहां वर्षा, जाड़ा, गर्मी, अन्न आदि भले ही होते हों; नहीं तो आप वा आपके सदृश आपकी प्रजा के भाग्य से तो वहां वर्षा, जाड़ा, गर्मी, अन्न आदि होने की मुझे आशा नहीं है।

२३--अहिंसा

जिस समय महारानी कुन्ती दुस्शासन के अत्याचार करने पर अपने पाँचों पुत्रों को ले राजा विराट के एक ग्राम में रही थी, उस समय वहां एक दानव इस प्रकार का लगा करता था जो सम्पूर्ण ग्राम के ग्राम नष्ट किये देता था। यह उपद्रव

देख ग्रामवालों ने यह नियम करलिया था कि हम में से एक नित्य आपके पास आ जाया करेगा, पर आप ऐसा उपद्रव न करें कि एक ही दिन में ग्राम का ग्राम नष्ट कर दें और ग्राम वालों ने अपनी अपनी बारी क्रमपूर्वक बाँध ली थी। एक दिन एक बुढ़िया ब्राह्मणी की, जिसके एक ही बेटा था, बारी आई और महारानी कुन्ती उस दिवस किसी प्रयोजनार्थ बुढ़िया के यहां गई। बुढ़िया को रोता देख महारानी कुन्ती ने उससे रोने का कारण पूछा। बुढ़िया ने सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। महारानी कुन्ती ने बुढ़िया को अत्यन्त दुखी देख कहा कि—"तेरे एक ही बेटा है पर मेरे पाँच हैं। आज मैं तेरे बेटे के बदले अपने बेटे को भेज दूंगी। तू दुःखी न हो।" पर बुढ़िया को विश्वास न आता था कि भला ऐसा कौन होगा कि जो अपने बच्चे को दूसरे के बच्चे के लिये मरवा डाले। बुढ़िया यह सोच ही रही थी कि इतने में महारानी कुन्ती ने अपने पाँचों पुत्रों को बुला यह वृत्तान्त कहा। पुत्रों में से प्रत्येक जाने को उद्यत था। महारानी कुन्ती ने भीम को आज्ञा दी। भीम गदा ले दो घंटे पहले से जा विराजे।

ग्रामवालों का यह भी नियम था कि उस दानव की पूजा के लिये बहुत से नर नारी घी, गुड़, बतासे, छोटी २ पूरियाँ गुलगुले आदि ले जाते थे और वह भी सब के सब जिस जगह दानव आता था पहले ही से जाकर एकत्र हो रहे थे। भीम वहीं पहुंचा और उन सबसे पूछा—'यहां सब क्यों बैठे हो?' लोगों ने उत्तर दिया कि—"हम लोग यह सब सामान ले दानव की पूजा करने आये हैं।" भीम ने कहा—"हम उसके खाने के लिए आये हैं सो तुम लोग क्यों व्यर्थ बैठे हो? ये सामान सब हमें क्यों न खिलादो? जब दानव हमें खायगा तो यह सामान भी

उस के पेट में पहुंच जायगा।" गाँववालों ने वैसा ही किया। भीमने सम्पूर्ण घी, गुड़, बताशे, पूड़ी, गुलगुले खाये और ज्योंही दानव आया तो उसका एक पैर इस हाथ में, एक पैर उस हाथ में पकड़ उसकी टाँगे फाड़ कर गदा उठा गर्जता हुआ माता के चरण कमलों को आकर प्रणाम कर कहा—"माता उसे तो मैं जन्म भर के लिये सैंत आया।" माताने आशीर्वाद दिया, परन्तु बुढ़िया के हृदय में यह शङ्का उत्पन्न हुई कि भीम मौत के भय से भग आया है, अतः दानव कोपित आता होगा और मेरे बच्चे को खा जायगा। महाराणी कुन्ती ने कहा—"बुढ़िया, तेरे ये क्या विचार हैं। यह सिंहनियों के बच्चे हैं। भला तुझे यह मान्य नहीं होता कि जो दूसरे के बच्चे के लिए अपना बच्चा भेजे उस पर कभी आँच आ सकती है?" बुढ़िया आश्चर्य चकित रह गई।

आज कल बकरा, भैंड़ा, सुअर, मुर्गा आदि के बच्चे मरवा कर लोग अपने बच्चों का कल्याण चाहते हैं। हाय री भारत की अविद्या! कहाँ महाराणी कुन्ती सरीखी मातायें भीम सरीखे पुत्र और कहां आज घर घर हत्यारे पैदा हो भारत में खून खच्चर कर रहे हैं!! इन मूढ़ों को यह नहीं सूझता कि जब एक अँगुली में दर्द होता है तो चाहे कितने ही उपाय करो दूसरी अंगुली में तब्दील नहीं हो सकता, तो दूसरे के बच्चे कटाने से हमारा बच्चा कैसे अच्छा हो जायगा? अच्छा तो दरकिनार हाँ मर अवश्य जायगा। क्योंकि कहा है—

जो और का चेतै बुरा, उसका भी होता है बुरा।
जो और के मारे छुरी, उसके भी लगता है छुरा॥

२४-अहिंसा

यूनान के बादशाह के यहां यह नियम था कि यदि कोई मनुष्य भारी अपराध करता था तो किसी सिंह को पिंजड़े में बन्द कर कई दिन भूखा रख उस भूखे सिंह के सामने उस पुरुष को ला सिंह पर छोड़ सिंह से खिला दिया जाता था। एक मनुष्य ने बादशाह के यहां एक बड़ा भारी अपराध किया और वहां से भग खड़ा हुआ और भाग कर वह एक बड़े भयङ्कर वन में जा छिपा। उस वन में एक सिंह जिसके पैर में एक बड़ा विकराल काँटा लग जाने के कारण उसका पैर पक गया था और वह बेचारा अत्यन्त ही दुखित था पैर उठाये मुंह मलीन किये खड़ा था। इस अपराधी ने चुपके चुपके पीछे से जा शेर के पैर का काँटा निकाल दिया। शेर को इतना सुख हुआ कि जैसे कोई जान निकलते हुए जान डाल दे। शेर ने आँख उठा कर उस पुरुष की ओर देखा और वह उसी के पीछे पीछे वन में फिरने लगा। एक दिन वह अपराधी उस वन से पकड़ आया। बादशाह ने कहा—"एक शेर जङ्गल से पकड़ लाओ।" दैवगति, वही शेर पकड़ आया और उसे कई दिवस भूखा रख उस अपराधी को शेर के सामने ला शेर उस पर छोड़ा गया। शेर चिग्घाड़ता हुआ उस अपराधी पर टूटा। पर पास जाकर जब अपराधी को पहिचाना तो शेर उसके चरणों पर लोटने लगा। धन्य हो ऋषि पातञ्जलि, आपने क्या ही सच कहा है—

अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैर त्यागः।

२५-मांस-भक्षण

एक चौबे जी महाराज एक मुसलमान तहसीलदार साहब के यहां मिलने के लिए गये। तहसीलदार साहब बहुत खुश हुए-

लाक और हँसमुख थे और मज़हबी तहक़ीक़ात में भी उनकी बड़ी रुचि थी। आपने चौबेजी से वार्तालाप करते हुए यह प्रश्न किया कि—"चौबेजी, आप अपने को देवता और हमें म्लेच्छ क्यों कहते हो?" यह सुन चौबेजी महाराज बोले कि—"जमना मैया की जै बनी रहे, यजमान तुम मिट्टी खाते हो इस लिए म्लेच्छ कहलाते हो।" तब तो तहसीलदार साहब ने हँस कर पूछा कि—"चौबेजी, मिट्टी किसको कहते हैं?" चौबेजी ने कहा—"जै हो जमना मैया की, यजमान मिट्टी गोश्त को कहते हैं।" तहसीलदार साहब ने उलट कर जवाब दिया कि—"चौबेजी, गोश्त तो तुम भी खाते हो क्योंकि शाक भाजी और अन्न वग़ैरह में तुम भी जीव मानते हो।" इस पर चौबेजी ने कहा कि—"यजमान की जै बनी रहे, हम जो अन्नादि खाते हैं वह शुद्ध जल से उत्पन्न होता है और तुम जो मांस खाते हो वह मूत्र से पैदा होता है। बस हममें और आप में इतना ही भेद है, जितना मूत्र और जल में। इसी लिए, हम देवता और आप म्लेच्छ हैं।"

२६—हिम्मत और धूर्ती

एक बार एक सियार ने किसी को कहते हुए यह शब्द सुन लिया कि—"हिम्मत मर्दां मदद खुदा।" उसने इसे अपना आदर्श बना लिया और हर बात में वह अपनी स्त्री सियारिन से कहा किया करता था कि—"हिम्मत मर्दां मदद खुदा।" कुछ दिनों के बाद उसकी स्त्री सियारिन गर्भिणी हुई। उसने अपने पति सियार से कहा कि—"अब मुझे कहीं ऐसे स्थान में ले चलो जहां मैं अपने बच्चों को अच्छी तरह से उत्पन्न करूं और मुझे सुख मिले।" सियार ने सियारिन को ले जाकर एक

सिंह की सथरी में जहां सिंह ने अपने आराम के लिए फूस पास विछा कर रक्खा था, ठहराया और कहा—"तू यहां अपने बच्चे उत्पन्न कर।" शेर कई दिन तक न आया। इतने में सियारिन ने बच्चे उत्पन्न किये। एक दिन सियार और सियारिन अपने बच्चों के बैठे ही थे कि इतने में सिंह डहकता हुआ आया। सियार ने शेर को आते देख अपनी स्त्री सियारिन से कहा कि—"अपने बच्चे शीघ्र उठा कर चल, जल्दी भग चलें।" सियारिन ने कहा कि—"आज वह 'हिम्मत मर्दां मदद खुदा' कहां गया?" सियार को बड़ी शर्म मालूम हुई और वह अपने आगे के दोनों पैर ऊपर को उठा खड़ा हो गया। शेर इसे देख हैरान था कि यह कौन है! यद्यपि मैं रात दिन जंगल ही में रहता और जंगल का राजा हूं पर ऐसा जन्तु मैंने आज तक नहीं देखा कि इतने में सियार अपनी स्त्री सियारिन से बोला कि—"अरी बनकूकरी?" सियारिन ने उत्तर दिया—"कहो, सब जग के बैरी!" यह शब्द सुन सिंह के होश हवास उड़ गये और वह सोचने लगा कि सब जग में तो मैं भी हूं अरे यह कोई बड़ा बलवान् जन्तु है। ऐसा समझ सिंह भग खड़ा हुआ। सियार के सन्मुख से सिंह भगते देख जंगल भर के जीवों को आश्चर्य हुआ कि आज गज़ब हो गया कि सियारों के सन्मुख से सिंह भगने लगे। एक बंदर जो यह चरित्र देख रहा था, वनराज शेर के सन्मुख जा हाथ जोड़ बोला कि—"महाराज यह सियार है, जिसके सामने से आप भगे जाते हैं।" शेर ने कहा—"तू बिलकुल झूठ कह रहा है क्या सियार हमने देखे नहीं? सियार ऐसा नहीं होता।" बन्दर ने कहा—"महाराज, वह ऊपर को पैर उठाये खड़ा था। आप चलिये, वह अभी भग जायगा। बन्दर के बहुत कुछ समझाने पर शेर ने बन्दर से कहा-"अच्छा तू आगे चल तो चलूं।" बन्दर तो यह निश्चय जानता ही था

कि वहां सियार है वह निर्भय आगे चला। सियार ने जाना कि यह वन्दर जान का घातक हुआ, लेकिन अपने उस वाक्य को याद कर कि-'हिम्मत मर्दां मदद खुदा' फिर खड़ा हो गया। जब वन्दर और शेर दोनों कुछ समीप पहुंचे तब फिर सियार ने कहा- -"अरी वनकूकरी !" सियारिन ने कहा-' कहो सब जग के वैरी !' सियार ने कहा—' तेरे बच्चे क्यों रोते हैं ?" सियारिन ने कहा—"मेरे बच्चे शेर खाने को मांगते हैं।" वनराज शेर यह सुन कर फिर भग खड़ा हुआ। वन्दर यह दशा देख हैरान था कि जब शेर इस सियार के सन्मुख से भागता है तो हम लोगों का कैसे गुज़ारा होगा, अतः वन्दर फिर शेर के पीछे पड़ा और हाथ जोड़ कर बोला कि-"महाराज, आप व्यर्थ भाग उठते हो। वह निश्चय सियार है, आपके चलने से ही भग जायगा।" सिंह ने कहा कि- 'सियार के बच्चे कहीं सिंह खाने को मांगते हैं?" वन्दर ने कहा— महाराज, यही तो गीदड़ भवकी है।"अतः शेर को वन्दर ने जब बहुत समझाया तो शेर ने कहा—"अब की वार हम तब चलेंगे जब मेरी पूंछ से तू अपनी पूंछ बांध और तू आगे चल। नहीं तू जात का वन्दर, बड़ा चालाक, तेरा क्या ठीक। मुझे वहां मौत के मुखमें झोंक भग खड़ा हो" वन्दर को कुछ भय तो था ही नहीं उसने वैसा ही किया और दोनों शेर की सथरी की ओर चले। जब सियार ने इन दोनों को इस भांति आते देखा तो कहा-"अब कि प्राण गये अब नहीं बच सकता।"परन्तु इसे अपनी कहावत फिर याद आई कि-"हिम्मत मर्दां मदद खुदा।" अतः वह फिर उसीभांति खड़ा हो गया और सियारिन से बोला-' अरी वनकूकरी !" सियारिन ने कहा—"कहो,सब जग के वैरी!" सियार ने कहा "तेरे वच्चे क्यों रोते हैं ?" सियारिन ने कहा-"मेरे वच्चे शेर खाने को मांगते हैं।" सियार ने कहा—"तो तू गुस्सा क्यों

होती है ?" सियारिन ने कहा—"इस लिये कि बन्दर को भेजा था कि दो शेर ले आ. सो प्रथम तो वह आया ही बड़ी देर में है दूसरे दो के बदले एक ही पूंछ में बांध कर लाया है।" शेर इतना सुनते ही बन्दर की पूंछ तक उखाड़ के भग खड़ा हुआ सच है, हिम्मत मर्दां मदद खुदा।

बहुत से मनुष्य आपत्ति आने पर कुएं में गिर पड़ते, ज़हर खा लेते, कोई आग लगने पर कोने में घुस पड़ते, कोई निकल कर रास्ता भूल प्राण दे देते, कितने ही शेर और भालू का नाम सुन काठ के खिलौने से खड़े रह जाते और उन्हें आकर वे खा भी जाते हैं, कितने ही घबराये पथिकों के समूह दो चार डाकुओं से लूट लिये जाते हैं, पर एक धीर पुरुष सिंह के छक्के छुड़ा देता है। किसी ने ठीक कहा है—

त्याज्यं न धैर्यं विधुरेऽपि काले, धैर्यात्कदाचित् स्थितिमाप्नुयात्सः।
यथा समुद्रेऽपि च पोतभंगो, सांयात्रिको वाञ्छति तर्तुमेव॥

अर्थ—आपत्ति का समय आने पर भी धैर्य्य नहीं छोड़ना चाहिये, क्योंकि कदाचित् धैर्य्य से स्थिति प्राप्त हो जाय जैसे कि समुद्र में जहाज़ डूबने का समय आ जाने पर भी उद्योग करने पर बच जाता है।

२७—क्षमा

एक रामनाथ नामक साधु ब्राह्मण अत्यन्त सदाचारी पुत्र पौत्रों से युक्त और बड़ा ही धनाढ्य किसी ग्राम में रहता था। उसके घर के पास जो दो चार पड़ोसी रहते थे वे सब के सभी महान् दुष्प्रकृति के थे और उस के धन ऐश्वर्य तथा प्रतिष्ठा को देख कुढ़ा करते थे और सदैव इसी चिन्ता में निमग्न रहते थे कि किसी न किसी भांति रामनाथ को क्लेश

पहुंचावें और कभी कभी वे अपनी आशा को पूरी भी कर लिया करते थे। विशेष कहां तक लिखा जाय विचारे रामनाथ की वही दशा थी जैसी कि लंका के मध्य विभीषण ने हनुमान से अपनी दशा कही थी—

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दशनन-बिच जीभ बिचारी॥

इसी भांति साधु रामनाथ रहा करते थे और वे दुष्ट इन्हें सदैव कटु वाक्य और गालि प्रदान तथा ऐसे ऐसे अड़ङ्गा लगाये रहते थे कि रामनाथ बोलें और वे इनकी पूरी पूरी खबर लें। परन्तु साधु रामनाथ को जब दुष्ट लोग गालि प्रदान करते तो वे उसके उत्तर में कहा करते थे कि—

ददतु ददतु गालिर्गालिवन्तो भवन्तो,
वयमपि तदभावाद् गालिदानेप्यशक्ताः।
जगति विदित मेतद् दीयते विद्यते तत्,
नहि शशक विषाणं कोपि कस्मै ददाति॥

अर्थ—देव देव गाली आप गालिवन्त हैं। कोई धनवन्त होता है, कोई बलवन्त होता है, आप गालिवन्त हैं। पर मेरे पास तो गालियों का अभाव है, कहां से दूं; और संसार में यह बात विदित है कि जो वस्तु जिस के पास होती है वही मनुष्य दूसरे को दे सकता है, न होने से कैसे दे? खरगोश अपने सींग किसी को क्यों नहीं देता। भाषा में भी कहा है—

जाके ढिंग बहु गाली होइहैं, सोई गाली देहै।
गालीवालो आप कहैहै, हमरो का घटि जैहै॥

परन्तु वे इस वाक्य के अनुसार—

मधुना सिंचयेन्निम्बं निम्बः किं मधुरायते।
जातिस्वभाव दोषोऽयं कटुकत्वं न मुंचति॥

अर्थ—जाको जैसी टेव छुटे नहिं जीव से ।
नीम न मीठा होय सिंचे गुड़ घीव से ॥

उद्योग कर रिश्वत भी दिलवा दी और कई बार लोगों से मिलजुल कर चोरी भी करा दी परन्तु आप जानते हैं कि क्षमारहित पुरुषों का स्वभाव उस पानी भरे कटोरे के समान होता है जिसमें कुछ डालते ही उसका पानी गिरने लगता है; किन्तु क्षमावान् पुरुषों का स्वभाव समुद्र के समान गम्भीर होता है कि चाहे उसमें पहाड़ के पहाड़ आ पड़ें तो भी वह घटता बढ़ता नहीं अथवा जैसे गजराज के पीछे चाहे कितने ही कुत्ते भोंका करें तो भी वह विचलित नहीं होता ।

अन्ततोगत्वा उन दुष्टों के दुष्ट कर्मों के अनुसार उनकी यह दशा हुई कि उनको दरिद्रता ने आकर ऐसा घेरा कि वे सबके सभी दाना दाना को दुखी होगये और भूखों मरने लगे । यह दशा देख साधु रामनाथ को दया आई वे (उन महात्मा की भांति जिनको कि एक नदी-तट पर स्नान करते समय जल में एकाएक बिच्छू दृष्टि पड़ा और वे दया परवश उसे हाथ से पकड़ जल से बाहर करना चाहते थे कि बिच्छू अपने स्वभावानुसार उनके हाथ में डंक मार हाथ से पुनः नदी में जा गिरा और वे बारम्बार उसको जल से बाहर निकालते और वह डंक मार मार जल में जा पड़ता, इस चरित्र को देख एक ब्राह्मण ने उनसे कहा कि—"जाने दीजिये महाराज! ये दुष्ट जीव है।" जिसके उत्तर में महात्मा जी ने ब्राह्मण से कहा था कि—"यदि यह अपने स्वभानुसार डंक मारना नहीं छोड़ता तो हम अपने स्वभानुसार इसका परित्राण करना क्यों छोड़ दें!") उन्हें भोजन देने लगे और कुछ धन की सहायता कर उन सब को उद्यम में लगा दिया । परन्तु इन दुष्टों ने अपनी

दुष्ट प्रकृति अब भी न छोड़ी। एक दिवस साधु रामनाथ का एक बारह वर्ष का पुत्र खेलते खेलते एक वन में जो ग्राम के समीप ही था पहुंचा। इन दुष्ट पड़ोसियों ने उसे मार उसके संपूर्ण आभूषण उतार लिये। इसका पता साधु रामनाथ को पूर्णरूप से मिल गया। किन्तु जब ये दुष्ट रामनाथ जी की शरण आये और उन्होंने कहा कि हम कभी अब ऐसा न करेंगे, हमने जो कुछ किया बहुत ही बुरा किया, अब आप क्षमा करें तो इस कवि वाक्य के अनुसार—

कोहि तुला मधि रोहित शुचिना। दुग्धेन सहज मधुरेण।
तृप्तं विकृतं मथितं तथापि यत्स्नेह मुद्गिरति॥

अर्थात्—सर्वथा मधुर रस के ग्रहण करने वाले महोज्ज्वल दूध की बराबरी कौन कर सकता है? कोई नहीं, क्योंकि उसे चाहे कोई कितना ही तपावे, चाहे कितना ही विक्षत करें और कितना ही मथे तिस पर भी प्रहारों को सहता हुआ प्रहार-कर्त्ताओं के लिये वह स्नेह चिकनाई घी ही देता है अर्थात् शत्रुओं पर भी वह स्नेह करता है साधु रामनाथ ने उन सब पर दया की।

उन संपूर्ण दुष्टों ने सारी आयु साधु रामनाथ पर चोटें कीं, परन्तु इस कवि वाक्य के अनुसार—

अतृणो पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति।
क्षमाखड्गं करे यस्य किं करिष्यति दुर्जनाः॥

वे दुर्जन उनका कुछ न कर सके।

महात्मा बुद्ध को एक पुरुष ने एक दिन आकर बहुत सी गालियां सुनाईं। जब महात्मा बुद्ध उस दिन गालियों को सुन न बोले तो दूसरे दिन उसने आकर दूनी गालियां सुनाईं और जब दूसरे दिन भी महात्मा न बोले तो तीसरे दिन तिगुनी

और जब उस दिन भी महात्मा जी न बोले तो चौथे दिन चौगुनी गालियाँ सुनाई और जब महात्मा जी फिर भी न बोले तो पांचवें दिन वह पुरुष आकर महात्मा के पास चुपके से खड़ा हो गया। तब महात्मा बुद्ध ने उससे कहा कि—"बेटा यदि कुछ और भी तेरी इस पेटरूपी थैली में हो तो उसे भी दे दे।" तब उसने कहा कि—"अब तो जो कुछ था वह सब मैंने सुना दिया पर इतनी गाली सुनाने पर भी आपने कोई जवाब नहीं दिया।" महात्मा ने कहा कि—"जवाब तो मैं पीछे दूंगा पर इससे पहले तुम मेरे एक सवाल का जवाब दे दो।" यह कह कर महात्मा ने कहा कि—"कोई किसी के पास यदि किसी वस्तु को भेंट दे जाय और वह उसे स्वीकार न करे तो उसका मालिक कौन होता है?" उसने कहा कि—"वही, जिसकी वह वस्तु है अथवा जो उसे लाया है।"

२८—हम

एक बार महात्मा जनक के पास एक ब्राह्मण ने आकर कहा कि—"महाराज, यह पापी चञ्चल मन हम को अपने जाल में निशिदिन नचाया करता है हम बहुत बहुत ज़ोर लगाते हैं पर यह पापी हमको नहीं छोड़ता।" महात्मा जनक ने यह सुनते ही एक वृक्ष को पकड़ लिया और बोले कि—"अगर यह वृक्ष हमें छोड़ दे तो हम आपके प्रश्न का उत्तर दे दें।" ब्राह्मण राजा जनक की यह दशा देख हैरान हो गया कि यही राजा जनक है जिसकी ब्रह्मविद्या में प्रशंसा है? एक वृक्ष को पकड़े हुए कह रहा है कि यदि यह छोड़ दे तो हम तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दें। ऐसा समझ वे बोले कि—"महाराज, जड़ वृक्ष आपको क्या पकड़ सकता है? आप ही स्वयमेव पकड़े हुए हैं। आप

छोड़ दें तो वह आप ही छूट जाय।" महात्मा जनक ने कहा- 'तुम्हें दृढ़ विश्वास है कि छूट जायगा?" ब्राह्मण ने कहा— "यह तो बिल्कुल प्रत्यक्ष ही है कि आप छोड़ दें तो छूट जाय। महात्मा जनक ने कहा—"बस, इसी भांति मन जड़ है, वह विचारा जीवात्मा को क्या नचा सकता है? जैसे हम वृक्ष को पकड़े थे उसी भांति आप मन को पकड़े हुए हैं। यदि मन को छोड़ दें और इसके फन्दों में न आयें तो मन कुछ नहीं कर सकता—यानी इस जड़ मन को चाहे आप सुमार्ग में चलायें चाहे कुमार्ग में। यह आपके आधीन है। यह तो सब कहने की बातें हैं कि मन बड़ा चञ्चल है, कुमार्ग में जाता है। बिना जीव के मन में संकल्प नहीं हो सकते।"

२१-एक महात्मा

एक महात्मा एक ऐसे सेवक की चिन्ता में थे जो बिना वेतन लिये ही उनका काम करे। यह बात प्रसिद्ध है कि 'जिन खोजा तिन पाइयां' महात्मा को सेवक मिल गया, पर सेवक ने महात्मा जी से यह प्रतिज्ञा करा ली कि "आप हमको सदैव काम बतलाते रहें, यदि आप ने किसी समय काम न बताया तो हम आपको बिना पीटे न छोड़ेंगे।" महात्मा ने प्रतिज्ञा करली। सेवक ने कहा कि 'महात्मा जी काम बतलाइये' महात्मा जी ने कहा कि—"शौच के लिये लोटे में पानी ले आ सेवक ले आया। महात्मा ने कहा—हमें कुल्ला, दन्त धावन, स्नान करा" उसने वह भी कर दिये। महात्मा ने कहा— 'यह लंगोटी फींच डाल। उसने लंगोटी भी धो डाली। लंगोटी धो सेवक ने कहा—"महात्मा जी और।" महात्माजी ने कहा—"अब तो इस समय कोई काम दृष्टि नहीं पड़ता।"

महात्मा के यह शब्द कहते ही सेवक ने सोंटा उठा थमा चौकड़ी मचानी आरम्भ की। महात्माजी रोते हुए पूजा पाठ छोड़ भग खड़े हुए। सेवक ने सोंटा ले उनका पीछा किया कुछ दूर-चल महात्मा को एक और महात्मा मिले। इन्होंने भगते हुए ही शीघ्र २ दूसरे महात्मा को सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया। महात्मा ने कहा-"बस इसी लिये आप भगे फिरते हैं? जिस समय आपके यहां कोई काम न रहे. इससे कह दिया कीजिये कि एक लम्बा बांस ले आ। जब ले आवे तब कहना इसे गाड़ अब गाड़ चुके तब कहना कि जब तक हम दूसरा काम न बतलावें तब तक इस पर चढ़ा उतरा कर। महात्मा ने ऐसा ही किया। स्थान पर आ आपने सब काम करवा कर एक लम्बा बांस मँगवा कर कहा-"जब तक हम दूसरा काम न बतलावें इसी पर चढ़ा उतरा कर।" बस, सेवक ज्योंही दो चार बार चढ़ा उतरा कि थक कर शिथिल हो बोला—"महात्मा जी अब तो चढ़ा उतरा नहीं जाता।"

इसका दृष्टान्त यह है कि जीवात्मारूपी महात्मा को एक अवैतनिक सेवक की आवश्यकता होने पर इसे मनरूपी वेदाम का भृत्य मिला। परन्तु इस मन ने जीवात्मा से यह प्रतिज्ञा करा ली थी कि हमको सदैव काम बताते रहना अर्थात् सदैव काम में लगाये रखना, नहीं हम पीटेंगे अर्थात मन जब काम से रहित हो ठाली होगा उस समय कुमार्ग में जायगा और अपने साथ जीवात्मा को ले दुर्दशा करायेगा। इस प्रकार मन ठाली होने पर जीव को कुमार्गों में लिये हुये खेद रहा था और जीवात्मारूप महात्मा व्याकुल था कि इतने में दूसरे महात्मा ऋषि ने उपदेश किया कि—

प्रच्छर्दन विधारणाभ्यां वा प्राणस्य।

तुम स्वाँस प्रस्वाँस रूप बांस गाड़ जब यह मन ठाली हो चंचलता करे तो इस पर चढ़ाओ उतारो। बस, तीन चार बार प्राणायाम करने से मन शिथिल हो गया और इसका चंचलता छूट गया।

३०-स्तेय

अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्।

एक बालक नित्य पाठशाला जाया करता था। एक दिवस पाठशाला से वह किसी विद्यार्थी की पुस्तक चुरा लाया। लड़के की माता ने पुस्तक विक्रय कर उसे आम खाने को दिये। इसी भाँति करते करते कुछ दिवस में वह चोरों का शिरोमणि हो गया। एक दिन वह चोरी करते समय राजा के यहाँ पकड़ा गया और उसको राजा के यहाँ से सूली के दण्ड की आज्ञा हुई। सूली पर चढ़ते समय कितने ही पुरुष उस बालक के अवलोकनार्थ आये और बालक की माता भी सब पुरुषों के साथ बालक को देखने आई। बालक ने अपनी माता से कुछ वार्ता करने की आज्ञा मांगी और माता के कान में वार्ता करने के समय उसके नाक कान दोनों ही काट लिये तब तो माता बहुत ही दुखी हुई। सम्पूर्ण पुरुष यह दशा देख बालक को धिक्कारने लगे। तब बालक ने कहा कि-"आपलोग धिक्कारते हैं परन्तु यदि मुझे यह चोरी न सिखाती तो आज सूली का समय न आता।"

बस, आपलोग समझ लें कि चोरी इतनी बुरी चीज़ है, इसी के त्याग को स्तेय कहते हैं।

३१-शौच

सर्वेषामेव शौचानां अर्थ शौचं परं स्मृतम्।
योऽर्थे शुचिः स शुचिः नमृद्वारि शुचिः शुचिः॥

एक गाँव में दो सगे भाई प्रथक् प्रथक् रहा करते थे। उनमें से एक भाई तो बाह्य शुद्धि अर्थात् शौच, दन्तधावन, स्नान आदि और दीन होने पर भी दूसरे तीसरे दिन अपने वस्त्र धो लिया करता था एवं जहां जिस स्थान में वह बैठता भी उसे अत्यन्त स्वच्छ रखता था और भीतर का भी कपटी न था जिससे कि उसकी बुद्धि भी अत्यन्त तीव्र, बड़े से बड़े गम्भीर विषयों को सहज ही में समझने को समर्थ थी और इसका मान भी बड़े पुरुषों में था, जहां यह जा कर बैठता सभी प्रसन्न रहते। और दूसरा भाई यद्यपि बड़ा धनवान् था परन्तु अत्यन्त ही मलिन था, दन्तधावन स्नानादि का तो यह महीनों नाम ही न जानता, मुंह में दुर्गन्ध आती, शरीर तथा पैर मैल से पट गये थे और फटे टूटे वस्त्र अति मैले जिनमें मक्खियां भिनक रही थीं पहिरे हुए. पेट भी कपट की खानि, सदैव 'मनस्यन्यत् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यत् दुरात्मनः' के अनुसार ही इसकी वार्ता भी रहती थी, यानी कहते कुछ, जाते कहीं, इस से इनको न तो कोई बात ही मानता था और जिसके पास ये जाकर बैठते वह इनसे अतीव घृणा करता था और बुद्धि में भी यह बुद्धू थे, इस कारण भंग, तम्बाकू आदि नशे तो आपके एक मात्र भूषण थे। इनके रहने का स्थान भी बड़ा ही भ्रष्ट रहता था, इस कारण कभी इन पर कूरे में दण्ड कभी गवर्मेन्ट में दण्ड, कभी खुद इनको मैला और वृद्ध वैद्य लोगों ने मनमानी घूस ले ले तबाह कर दिया। कुछ इनकी रहन सहन से इनकी अप्रतिष्ठा के कारण भी इनके सब व्यवहार बन्द होगये, अन्त में यहांतक हुआ कि इन बेचारे को एक एक दिन के लाले पड़ गये। इस लोक में तो यह दशा हुई परलोक का ईश्वर जाने। परन्तु उक्त दूसरे भाई की सम्पूर्ण पुरुष प्रतिष्ठा करते तथा इसकी बात भी मानते थे और बुद्धि के लिए तो

में लिख ही चुका हूं कि विलक्षण थी, यह अपनी किसी न किसी युक्ति से एक राजा के पास पहुंच गया। राजा इसके ऊपर अति प्रसन्न हुआ और वहुत ही चाहने लगा। और थोड़े ही काल में राजा ने उसे अपना मंत्री नियत किया। पुनः योगादि साधन करने से जब इसकी आत्मा में बुद्धि का प्रकाश हुआ तो राजा की नौकरी छोड़ एकान्त वन में जाकर ध्यान करने लगा। यह सब वसकी पवित्रता का कारण है।

३२-इन्द्रिय-निग्रह

एक मियां किसी गांव में सकुटुम्ब रहा करते थे और मियां जी झारा फूं की अथवा नाउतों का काम किया करते थे। एक वार बर्सात में मियां जी की तिदरी कई दिन से टपक रही थी। मियां की वीवी ने कहा कि-'मियां, ज़रा इस सूराख़ को यन्द कर दीजिये।' मियां जी ने कहा कि-'वन्द कर देंगे, अभी क्या भरभर है?' इतने में मियां जी को कहीं से झारने का बुलावा आया और मियां एक वकरकसाव की सी छुरी ले चल दिये और मियां जी की वीवी भी चुपके से पीछे २ इस लिए चलती हुई कि देखूं मुआ कैसे झारता है। मियां जी वहां जाकर छुरी से भूमि खोदने लगे और पढ़ते जाते थे कि 'जल वांधौं उलहारि वांधौं, वांधौं जल की काई, जखे मीरा सैयद वांधूं हनूमान की दोहाई'-तथा-'आकाश वांधूं, पाताल वांधूं दे तड़ाक छू।' इतने में वीवी ने पीछे से एक चपत दे तड़ाक की और कहा-"मुआं, यहां आकाश पाताल वांधता है, घर में ज़रा सा सूराख़ जो तिदरी में टपक रहा था सो तो तेरे वांधे न वंधा तव तू आकाश पाताल क्या वांधेगा?"

इसका दार्ष्टान्त यों है कि जब इस जीवात्मारूप मियां से इन्द्रियरूपी सूराख़ शरीर रूपी तिदरी के न वांधे वंधे तो कौन

आर्य्य-समाज का प्रचार करेगा? कौन सनातनधर्म का प्रचार करेगा? कौन देश भर में वेद प्रचार करेगा? कौन स्वराज्य प्राप्त करेगा? किस से आशा की जाय?

३२—वीं

किसी एक गांव में दो सगे भाई रहते थे। उसमें से बड़ा बेचारा साधारण उर्दू वा थोड़ी सी अंगरेज़ी वा साधारणतः मातृभाषा जानता था और छोटा भाई पूर्ण संस्कृतज्ञ था परन्तु बुद्धि में पूरा बुद्धू था। बड़े भाई के गौने के दिन समीप आ गये थे और उस को एक अभियोग होने के कारण न्यायालय में जाना था, अतः बड़ा भाई अपनी ससुराल नहीं जा सकता था, इस कारण उसने अपने छोटे भाई से कहा कि 'तुम अमुक तिथि पर जाकर अपनी भावज को विदा करा लाना क्यों कि मुझे उसी तिथि पर अमुक अभियोग में न्यायालय में जाना है, परन्तु वहां जाकर ठीक तौर से बात चीत करना अर्थात् हां के स्थान में हां और नहीं के स्थान में नहीं।' इन्होंने कहा कि—'मैं इतना मूर्ख हूं क्या कि मुझे हां नहीं का भी ज्ञान नहीं?" बड़े ने कहा—"तुम्हें ज्ञान तो है परन्तु मैं बड़ा हूं इस लिए समझाना मेरा धर्म था, इससे समझा दिया।" परन्तु छोटे हां नहीं को सिलसिलेवार लिख यानी प्रथम हां पीछे नाहीं, भावज को विदा कराने चले। ये ज्योंही उस गांव के धुर पर पहुंचे तो इनके भाई की ससुराल के लोग मिले और इनसे पूछा कि—"कहो, तुम्हारे गांव में कुशल है?" कहा—'हां।' पूछा—'तुम्हारे भाईजी तो अच्छे हैं?" कहा—"नाहीं।" पूछा—'क्या कुछ बीमार हैं?" कहा—"हां।" पूछा कि—'कुछ औषधि होती है?" कहा—"नाहीं।" पुनः कहा—"क्या बहुत बीमार हैं?"

कहा—हां।" यह सुन घबड़ा कर पूछा कि—"बचने की उम्मेद है या नहीं?" कहा—"नाहीं।" कहा कि—"क्या इतने सख्त बीमार हैं?" कहा—"हां।" पुनः पूछा कि—"मौजूद हैं या नहीं?" कहा—"नाहीं।" इतना सुन सबके सब बड़े ज़ोर ज़ोर रोने लगे और सबका रोना सुन ये भी रोने लगे। अब तो सब को और भी निश्चय हो गया कि इन के भाई नहीं रहे। प्रातःकाल इन्हों ने कहा कि—"क्या भावज को विदा नहीं करोगे?" उन्होंने कहा कि—"दो चार दिन और चूरी बिछुवे पहने है फिर तो हम भेज ही देंगे।" ससुराल वालों का यह उत्तर सुन यह वापिस आये। जब घर में इनके बड़े भाई आये और पूछा कि—"भावज को विदा नहीं करा लाये?" तब इन्हों ने कहा कि—"भावज तो रांड होगई, उस कैसे लिवा लाते?" भाई ने कहा—"हैं हैं, यह क्या कहता है? हम बैठे ही हैं और वह रांड हो गई।" इसने उत्तर दिया कि—"क्या तुम कहां के नाहर हो? तुम बने रहे बुआ रांड हो गई। तुम बने रहे, मौसी रांड होगई। तुम बने रहे, बहन रांड होगई। तुम बने रहे, चाची रांड हो गई। भावज के लिए तुम रांड होने से कैसे रोक सकते?" तब तो भाई ने कहा—"बताओ वहां क्या क्या बातें हुई थीं?" तब इसने सम्पूर्ण वृत्तान्त सच्चा सच्चा कह सुनाया। बड़े भाई ने अपनी ससुराल जा स्त्री को लाकर दी। सच है, बुद्धि तेरी बड़ी महिमा है। देखिये—

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम्।

वने सिंहो मदोन्मत्तः शशकेन निपातितः॥

अर्थ—एक बार एक खरहे से सिंह ने गुस्सा हो कहा—"इतनी देर तू कहां रहा?" खरहे ने कहा—"महाराज, एक दूसरा सिंह कहता था मैं इस वन का राजा हूं, तू कहां जाता

है ?" उसने कहा—"चल, दिखला।" खरहे ने कुआ बतला दिया और कहा—"इसमें है।" सिंह ज्यों ही झांका कि उस को परछाहीं भी मालूम हुई और उड़ीकने पर आवाज़ भी आई, अतः कुए में कूद पड़ा। कहा है कि—

समुत्पन्नेषु कार्य्येषु बुद्धिर्यस्य न हीयते।
स एव दुर्गं तरति जलस्थो वानरो यथा॥

अर्थ—एक बार एक बन्दर एक नदी में पड़ गया। उस की टांग एक मगर ने पकड़ ली। दूसरे ने कहा—"क्यों हमने कहा था।" उसने कहा—"क्या हुआ, साले ने लकड़ी पकड़ी है और समझता है कि बन्दर की टांग पकड़े हूं।" ऐसा सुन मगर ने टांग छोड़ दी बन्दर नदी के पार आया।

३४–विद्या

एक दीन काश्तकार का लड़का नित्य पाठशाला में पढ़ने जाया करता था, परन्तु वह बहुत ही दीन था इस कारण वह अपने पढ़ने का सामान इकट्ठा नहीं कर सकता था, यहां तक कि लेखनी, मसीपात्र और काग़ज़ भी नहीं लेसकता था और भोजनों के लिए भी उसे पेट भर, अन्न नहीं मिलता था जिससे वह बहुत ही कृश होरहा था किन्तु पढ़ने का उसे इतना व्यसन था कि सामानों के न होते हुए भी वह बड़े चाव के साथ पढ़ता था और अपनी कक्षा के लड़कों में बड़ा ही बुद्धिमान और होनहार प्रतीत होता था। इसकी यह दशा देख अध्यापकों के चित्त में दया आई और इन्होंने आपस में सम्मति करके चन्दा बांध लड़के के भोजन का सामान इकट्ठा करा दिया। बालक अपने सहपाठियों से बड़ा ही मेल जोल रखता था, इससे कोई कोई

सहपाठी लेखनी, मसीपात्र, कोई पुस्तकें भी दे दिया करते थे। पाठशाला के सिवा वह अपने घर पर भी पढ़ा करता था परन्तु कभी कभी घर में दीनता के कारण तेल का प्रवन्ध न हो सकने से यह वन में जा खद्योतों (जुगनू) को पकड़ अपनी टोपी में रख उनके प्रकाश से और कभी कभी चाँदनी में चन्द्रमा के प्रकाश से पढ़ा करता था। इस प्रकार वड़े वड़े कष्ट उठा उसने विद्या प्राप्त की और विद्या में ऐसा निपुण निकला कि जिसके कारण सरकार से वा पाठशाला के निरीक्षकों से कई वार अनेक प्रकार के वड़े वड़े प्रशंसनीय प्रशंसापत्र तथा पारितोषिक भी प्राप्त किये। अब तो इसकी विद्या की चर्चा चारों ओर धूम धाम के साथ विस्तृत हुई। यहां तक कि बड़े बड़े राजाओं के भी कर्णगत हुई। तब तो इसे एक वड़े राजा ने बुला कर इसको योग्यतानुसार अपने यहां मन्त्री पद पर नियत किया। धन्य है महारानी सरस्वती! तेरी अपार महिमा है। तूने कितने ही कंगालों को राजा और कितने ही मूर्खों को महात्मा योगिराज ऋषिमुनि तपस्वी तथा देवता बना दिया और मुक्ति तक प्राप्त कराई। किसी कविने कहा है—

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्न गुप्तंधनम्।
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्यागुरूणांगुरुः॥
विद्या बन्धु जनो विदेशगमने विद्या परं दैवतम्।
विद्या राजसुपूजितः न च धनं विद्याविहीनः पशुः॥

३५—छोटों की बात का तिरस्कार न करो

कभी अभिमान में आकर छोटों की बात का तिरस्कार न करना चाहिये क्योंकि कभी कभी छोटों के ख्याल में यह बात आ जाती है जो बड़ों को स्वप्न में भी नहीं सूझती।

लण्डन के महात्मा न्यूटन से ऐसा कोई शिक्षित व्यक्ति न होगा जो परिचित न हो। आपको बिल्ली पालने का बड़ा शौक था अतः आपने छोटी बड़ी दो बिल्लियां पाल रक्खी थीं जो दिन भर तो इधर उधर घूमा करती थीं और रात में महात्मा न्यूटन की चारपाई के नीचे आकर सो रहती थीं। इस कारण महात्मा न्यूटन जब रात में अपने कमरे में सोया करते थे तो कमरे के किवाड़ों की जंजीर न बन्द करके साधारण ही किवाड़े भेड़ लिया करते थे कि जिसमें बिल्लियां किवाड़े खोल कर चली आवें और बिल्लियां भी जब घूम कर बाहर से आतीं तो किवाड़े खोल अन्दर तो चली आती थीं पर किवाड़ों को वे बन्द नहीं कर सकती थीं कि जिससे वे सारी रात जड़ाया करती थीं। यह देख महात्मा न्यूटन ने सोचा कि कोई ऐसा इन्तिज़ाम कर देना चाहिये कि जिसमें बिल्लियां जड़ाया न करें। इसके लिये उन्होंने यह विचारा कि अगर हम अपने कमरे के दोनों किवाड़ों में दो छेद यानी छोटी बिल्ली के लिये छोटा और बड़ी के लिए बड़ा करा दें और कमरे के किवाड़ों की जंजीर सोने के समय बन्द कर लिया करें तो बिल्लियां ठण्ड से बच जायें। बस यह विचार बढ़ई को बुलवा कहा कि—'ऐ बढ़ई! तुम सुनते हो देखो यह जो दो बिल्लियां मैंने पाल रक्खी हैं सो रात में मैं तो योंहीं साधारण किवाड़े भेड़ कर सो जाता हूं और बिल्लियाँ जब घूम कर बाहर से आती हैं तो किवाड़े तो खोल लेती हैं पर बंद नहीं कर सकतीं जिससे वे जड़ाया करती हैं। सो तुम इस हमारे कमरे के दोनों किवाड़ों में दो छेद कर दो यानी छोटी बिल्ली के लिए छोटा और बड़ी बिल्ली के लिए बड़ा ताकि मैं आराम से किवाड़े बन्द कर सो जाया करूं।" यह सुन बढ़ई ने कहा कि—"हुजूर उसके लिए दो छेदों की दोनों किवाड़ों में करने की क्या

ज़रूरत है, एक ही बड़ा छेद एक किवाड़ में करने से दोनों निकल जाया करेंगी।' बढ़ई ने बहुत कुछ समझाया पर न्यूटन ने न माना। तब तो बढ़ई ने छेद करना शुरू किया और प्रथम एक किवाड़ में बड़ा छेद करके किवाड़े भेड़ दिये और उस एक ही छिद्र से दोनों बिल्लियें निकल गईं। यह देख महात्मा न्यूटन उछल पड़े और बड़े ही प्रसन्न हुये और बढ़ई को बहुत कुछ पारितोषिक दिया। ठीक है—

बलादपि गृहीतव्यं युक्तमुक्तं मनीषिभिः।
रवेर् विषयं किन्न प्रदीपस्य प्रकाशकम्॥

३६--सत्य

एक राजा की एक अत्यन्त रूपवती रानी स्नान किये हुये महल की छत पर केश सुखा रही थी कि इतने में कौवे ने उसके शिर पर हग दिया। रानी को यह देख बड़ा ही क्रोध आया, और वह तुरन्त जा कर कोपभवन में लेट रही। महाराज को यह रानी बहुत ही प्यारी थी, इस से महल में आते ही रानी को न देख उन्होंने दासी से पूछा—"आज रानी जी कहां हैं?' दासी ने कहा—"महाराज, रानीजी आज कोपभवन में हैं।" बस—"कोपभवन सुन सकुचे राऊ। भय बस आगे परत न पाऊ।" परन्तु जैसे तैसे राजा ने वहां तक पहुंच रानी से कहा—"कहो प्यारी! क्या हुआ, किसने तुम्हारे साथ अनुचित व्यवहार किया, किसे काल ने आकर घेरा है?" रानी ने कहा—"महाराज आज मैं महलों की छत पर स्नान किये हुये केश सुखा रही थी कि एक दुष्ट कौवे ने मेरे सिर पर हग दिया, सो जब तक आप उस कौवे को न मरवा डालेंगे, मैं अन्न जल ग्रहण न करूँगी।" महाराज ने कहा—"अरे रानी, तू कैसी है, पक्षियों में क्या बोध है कि यह रानी है या साधारण

स्त्री है। उसने उड़ते हुए साधारणतः ही हगा होगा और वह तेरे सिर पर पड़ गया होगा। इससे तुझे हठ नहीं करना चाहिये।" पर रानी ने एक न सुनी और बहुत कुछ हठ किया। तब राजा ने कहा कि—"तुम उठ कर अन्न जल करो हम कल प्रातःकाल सब कौवों को पकड़वा उनमें से उस अपराधी कौवे को मरवा डालेंगे।" रानी यह सुनते ही मुस्करा कर बड़े नाज़ नखरे के साथ आँखें मटकाती हुई उठी। राजा देख फूल गया। जब दूसरे दिन प्रातःकाल आया तो राजा ने अपने भृत्यों को आज्ञा दी कि—"जाओ रे हमारे राज्य के सब कौवों को पकड़ लाओ।" भृत्यों ने ऐसा ही किया। जब भृत्यों ने आकर यह कहा कि—'महाराज सब कौवे आ गये।" तब राजा ने इन कौवों से कहा—'कहो भाई कौवो, सब कौवे आगये ?' तब तो सब कौवों ने जाँच पड़ताल कर कहा—'महाराज, एक कौवा नहीं आया है, बाकी सब आ गये।" राजा ने भृत्यों से कहा—"क्यों, भाई जो कौवा नहीं आया, उसे भी शीघ्र ही लाओ।" भृत्यों ने कहा—"महाराज हम उसे कई बेर बुला आये हैं, आता ही होगा।" और कौवों ने आपस में सम्मति की कि भाई किस कौवे ने ऐसा भारी अपराध किया जिसके कारण आज बिरादरी भर को कष्ट मिल रहा है ? अन्त में यह ठहरी कि हो न हो वही कौवा अपराधी है जो अब तक नहीं आया है, शायद वही अपराधी है। ऐसा समझ राजा उस पर अत्यन्त ही क्रोधित थे कि इतने में वह कौवा आ गया। कौवे के आते ही महाराज का उससे यह प्रश्न हुआ कि—"क्यों भाई कौवे, ये कौवे सब अभी आ गये थे, तुमने इतनी देर कहां की ?" कौवे ने कहा—"महाराज, अपराध क्षमा हो, मेरे पास एक न्याय आ गया था, उसे चुकाने लगा, इससे देर हो गई।" राजा ने कहा—"क्या न्याय था ?" कौवे ने कहा—'

"महाराज, एक स्त्री अपने पति से यह कहती थी कि मैं मर्द और तू मेरी स्त्री। और मर्द कहता था मैं मर्द और तू मेरी स्त्री है। मर्द और स्त्री दोनों हमारे पास आये और मर्द ने मुझ से यह प्रश्न किया कि भाई कौवा, यह मेरी स्त्री मुझ से कहती है कि तू मेरी स्त्री और मैं मर्द हूं, सो कभी मर्द भी स्त्री हो सकता है ? तब मैंने कहा हाँ हो सकता है जो मर्द कामवश हो स्त्री के अनुचित कहे में आ जाय और उसके कहने में चले. वह स्त्री है।" राजा ने यह सुन सब कौवों से कहा-"अरे जाओरे कौवों, तुम सब भग जाओ।" राजा की आज्ञा पा सब कौवे चले गये जब रानी ने यह वृत्तान्त सुना तो तुरन्त ही कोपभवन में जा विराजीं। जब फिर राजा महल में भोजन करने गया तो रानी को न देख दासी से पूछा। दासी ने कहा—"महाराज, रानी जी कोपभवन में हैं।" राजा ने वहां जा बहुत कुछ समझाया पर रानी ने कहा-"कौवे! की चले हमारो नहीं। हम चाहें यहीं मर जायँ पर जब तक आप उस कौवे को न मरवा डालेंगे तब तक अन्न जल ग्रहण न करूंगी।" राजा ने रानी का विशेष हठ देख कहा-"हम फिर सब कौवों को बुला उसे मरवा डालेंगे। तुम उठ कर अन्न जल करो।" रानी पुनः प्रसन्न हो उठ खड़ी हुई। दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही राजा ने पूर्ववत् सब कौवे पकड़ मँगवाये, परन्तु वह कौवा फिर भी नहीं आया। तब राजा ने कहा कि-'निश्चय वही कौवा अपराधी है, आते ही उस कौवे को बिना वध कराये न छोड़ेंगे।" कौवा ज्यों ही आया राजा ने कहा—"क्यों रे कौवे, तूने इतना विलम्ब क्यों किया ?" कौवे ने कहा—"महाराज, अपराध क्षमा हो एक न्याय आ गया था, उसके चुकाने में इतना विलम्ब हो गया। दो पुरुषों में विवाद था, एक एक से कहता था कि तेरा मुंह नहीं है, पाखाने का स्थान है। दूसरे ने कहा-"मुंह

कहीं पाखाने का स्थान हो सकता है? पहले ने कहा—हो सकता है। उन दोनों ने मुझ से आकर पूछा कि क्या कभी मुह भी पाखाने का स्थान हो सकता है। जो कहकर पलट जाय या झूँठ बोले वह मुह पाखाने का स्थान है। किसी कवि ने भी कहा है कि—

हस्तिदन्तसमानं हि निसृतं महतां वचः।
कूर्मग्रीवेव नीचानां पुनरायाति याति च॥

अर्थ—महत् पुरुषों के वाक्य हाथी के दांतों के समान होते हैं, यानी निकले सो निकले, पर नीचों के वाक्य कछुओं की गर्दन के समान कभी बाहर और कभी भीतर। किसी भाषा कवि ने भी कहा है—

बातहिं से दशरथ मरे अरु बातहिं राम फिरे वन जाई।
बातहिं से हरिचन्द सहे दुख, बातहिं राज्य दियो मुनि राई॥
रे मन, बात विचारि सदा कहु, बात की गात में राखु सचाई।
बात ठिकान नहीं जिनकी, तिन बाप ठिकान न जानहु भाई॥

२७—अक्रोध

एक पुरुष अत्यन्त ही रूपवान् और शरीर से भी बलवान्, पढ़ा लिखा विद्वान्, अपने घर का धनवान् और माता पिता भाई बन्धुओं आदि से भरा पुरा था, परन्तु इसमें केवल दोष था तो इतना ही कि इसके स्वभाव में बड़ा भारी क्रोध था और वह यहाँ तक कि जिस समय इसे क्रोध आता था तो रुद्र रूप हो अपने आपे से बाहर हो जाता था। यद्यपि इसके माता पिता भाई सब ने समझाया कि भैय्या, यह अच्छी बात नहीं, क्रोध करना बड़ी बुरी बात है, परन्तु इसने अपना स्वभाव न छोड़ा। कुछ तो इसका स्वभाव भी था और कुछ धन, बल, भाई, बन्धुओं

तथा विद्या आदि के कारण अपने घमंड के आगे किसी को कुछ समझता ही न था। अन्त में यह अपने विद्या के प्रताप से थानेदार हो गया। आप बड़े तेज़ तर्रार थाने दार थे। जहां जाते थे सम्पूर्ण प्रजा इनके शासन और अनुचित ज़ुल्मों से थर थर काँपती थी और कानिष्टबिल तथा चौकीदारों के लिए तो आप काल ही थे, यानी थोड़ासा भी अपराध यदि किसी से कुछ हो जाय या अपराध न भी हो केवल इनकी वार्ता के विरुद्ध कोई कुछ कह दे कि थानेदार साहब हंटर ले उसके चूतरों की खाल काट दिया करते थे। गाली तो आपके मुख का भूषण थीं, यानी विना गाली बात नहीं करते थे। एक दिन एक सेवक से इन्होंने गोश्त मँगवाया और कहा इसे ज़रा ज़्यादा मसाला तथा घी डाल बहुत अच्छी तरह से बनाना, परन्तु सेवक से हुज़ूर की तबियत के अनुसार न बना, अतः थानेदार साहब ने गालियों के तो पुल बाँध दिये और पीटने में भी उधार न रक्खा। परन्तु किसी कवि ने कहा है कि—

रोहते शायकैर्विद्धं वनं परशुनाहतम् ।
वाचादुरुक्तं बीभत्सं नापिरोहति वाक्क्षतम् ॥

अर्थ—बाण का घाव पूरित हो जाता है, कुल्हाड़े से काटा हुआ वृक्ष फिर हरित हो जाता है परन्तु कठोरवाणी का भेदा हुआ घाव पूरित नहीं होता। बस, इस कविवाक्य के अनुसार सेवक के हृदय में थानेदार साहब के वाक्यों ने घाव कर दिये थे, अतः जब रात में थानेदार साहब सोये तो उस सेवक ने थानेदार साहब की किर्च जो पास ही रक्खी थी मियान से निकाल हजारों किर्चें उनके मुंह पर मारीं यानी उनके मुंह को चावल चावल अलग कर दिया। थोड़े काल के बाद जब थाने के अन्य लोगों ने जाना तो वे इस सेवक को क़ैद कर ले गये और इस

पर अभियोग चला। सेवक ने न्यायालय में साफ़ साफ़ कह दिया कि हुजूर हम को इसने जिस मुख से गाली दी उस मुख को हमने काट दिया तथा जिन हाथों से मारा वे हाथ काटे। किसी कवि ने क्या ही सत्य कहा है—

क्रोधो हि शत्रुः प्रथमो नराणां देहस्थितो देहविनाशनाय।
यथा स्थितः काष्ठगतो हि वह्निः स एव वह्निर्दहते च काष्ठम्॥

अर्थ—मनुष्य के शरीर में छिपा हुआ क्रोध इस प्रकार देह के नाश का हेतु स्थित है जैसे काष्ठ के भीतर छिपी हुई आग जो प्रज्वलित होने पर उसी को नष्ट कर देती है, इसी भांति क्रोध प्रज्वलित होने पर क्रोधकर्ता को ले मरता है। दूसरे, संसार में ऐसा कोई पुत्र चाण्डाल न होगा जो अपनी माता ही को खाजाय, पर यह चाण्डाल क्रोध जिस हृदयभूमि रूपी माता से उत्पन्न होता है प्रथम उसे ही खाता है, दूसरे को पीछे। पुनः एक कवि का वाक्य है—

अन्धी करोमि भुवनं बधिरीकरोमि धीरं सचेतनमचेतनतां नयामि।
कृत्यं न पश्यति न येन हितं शृणोति धीमानधीतमपि न प्रतिसंदधाति॥

३८—असतकर्म अवश्य भोगने पड़ेंगे

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि॥

एक राजा एक हाथी पर सवार बड़ी धूम धाम के साथ चला जाता था। परन्तु हाथी बहुत ही दुष्ट था, जिस समय किसी प्रयोजनार्थ राजा हाथी से उतरा कि हाथी बिगड़ गया और राजा के ऊपर सूँड़ प्रहार करने को दौड़ा। राजा हाथी की यह दशा देख भग खड़ा हुआ और हाथी ने भी राजा का पीछा

किया। यहां तक कि राजा को एक ऐसे अन्धे कुएं में ले जा कर डाला कि जिसके एक किनारे पर पीपल का एक वृक्ष था और वृक्ष की जड़ें कुयें के भीतर फोड़ २ निकल रहीं थी जो आधे कुएं तक फैली थीं। राजा के कुयें में गिरते ही उसका पैर पीपल की जड़ों में हिलग गया। अब राजा का सिर नीचे और पैर ऊपर को थे। राजा की दृष्टि जब नीचे को पड़ी तो वह क्या देखता है कि कुएं में बड़े २ विकराल काले २ सर्प विसखापरें, कछुये ऊपर को मुंह बा रहे हैं जिन्हें देख राजा कांप गया कि यदि जड़ से मेरा पैर कदाचित छूट गया और मैं कुएं में गिरा तो मुझे यह दुष्ट जीव उसी समय भक्षण कर जायेंगे। अब ऊपर की ओर उसने दृष्टि डाली तो देखा कि दो चूहे, एक काला और दूसरा सफेद जिस जड़ में उसका पैर हिलग रहा है उसे खुतर रहे हैं। राजाने विचारा कि मैं यदि जड़ पकड़ कर किसी प्रकार ऊपर निकल जाऊँ तो मतवाला हाथी ठोकर लगाने को ऊपर ही खड़ा है और नीचे सर्पादि जन्तु हैं और जड़ का यह हाल है। निदान राजा घोर विपत्ति में फंसा। परन्तु उस पीपल के वृक्ष में ऊपर शहद की मक्खियों ने एक छत्ता लगा रक्खा था जिससे एक एक बूंद शहद धीरे धीरे टपकता था और वह शहद कभी कभी इन राजा साहब के मुख में जा गिरता था जिसको कि वह ऐसी आपत्ति में होते हुये भी सारी आपत्तियों को भूल शहद चाटने लगता और यहां तक उस बूंद के चाटने में आसक्त हो जाता था कि उसे इन आपत्तियों का किञ्चित मात्र भी ध्यान नहीं रहता कि इस जड़ के टूटते ही मेरी क्या दशा होगी।

मित्रो, दृष्टान्त तो यह हुआ पर इसका दार्ष्टान्त यों है कि यह जीवात्मारूपी राजा कर्मरूपी हाथी पर सवार है। चाहे

वह इसे सुमार्ग से ले जाय चाहे कुमार्ग से। परन्तु जिस समय इस कर्मरूप हाथी से यह उतरता है उस समय कर्मरूप हाथी इस पर प्रहार करने दौड़ता और इसे खेदकर माता के गर्भाशय रूपी अन्धे कुयें में ले जाकर डालता है। उस कुयें में आयुरूपी वृक्ष की जड़ में इसका पैर हिलग रहता है और जब यह उस जड़ में उलटा लटकता है (गर्भाशय में प्रत्येक पुरुष का सिर नीचे और पैर ऊपर होते हैं) और कुयें में नीचे संसार को देखता है तो इस में बड़े बड़े भयंकर सर्प, विसखापरे, कछुये यानी काम क्रोध लोभ मोह अहँकार ईर्षा द्वेष तृष्णा आदि सर्प, कछुये मुंह फाड़े ऊपर को ताक रहे हैं कि यह ऊपर से गिरे और हम इसको अपना भक्ष्य बनावें। यह देख जीवरूप राजा अत्यन्त व्याकुल होता है और जब यह ऊपर की ओर दृष्टि डालता है तो इसकी आयुरूप जड़ को दो काले सफेद चूहे, यानी सफेद चूहा दिन और काला चूहा रात, इसकी आयुरूपी जड़ जिसमें इसका पैर हिलगा है काट रहे हैं और जब यह विचारता है कि यदि इस कुयें से मैं किसी प्रकार जड़ वह पकड़ कर निकल जाऊँ तो कर्मरूपी हाथी इसके ठोकर लगाने को ऊपर खड़ा है इस दशा में जो ममाखीरूप विषय का शहद (रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श) है उसका आस्वादन करने में यह ऐसा निमग्न हो जाता है कि सारी आपत्तियों को भूल जाता है। इसे यह भी स्मरण नहीं रहता कि आयुरूपी जड़ अभी कटने वाली है और अन्त में मैं गिर के इन सर्प कछुओं की खूराक बनूंगा। इस लिये हम क्यों न ऐसा कर्म करें कि जिस से हाथी खेद कर हमें गर्भाशयरूप कुएँ में न डाल पाये अर्थात् हम लोग ऐसे सत् कर्म करें जिससे गर्भाशयों रूप अन्धे कुओं में हमें न आना पड़े और हम मोक्ष प्राप्त करें।

३६--ब्रह्मचर्य्य

एक माली बड़ी शीघ्रता के साथ दौड़ा जा रहा था। एक आदमी ने पूछा—"भाई, कहां इतनी शीघ्रता से दौड़े जा रहे हो?" माली ने कहा—"मुझे आज कई गाड़ी फूल तोड़ने हैं।" उस मनुष्य ने पूछा—"कई गाड़ी फूल तोड़ कर क्या करोगे?" इसने कहा—"इनका रस खीचेंगे।" उसने पूछा—"रस खींच कर क्या करोगे?" इसने कहा—"फिर रस का रस खींचेंगे।" उसने पूछा—"फिर क्या करोगे?" कहा—"फिर कई बार रस खींच कर इतर बनावेंगे।" उसने पूछा कि—"कई गाड़ियों में कितना इतर बनेगा?" इसने कहा—"एक शीशी।" उसने कहा—"फिर इस इतर को क्या करोगे?" माली ने कहा—"उसे किसी नरद्बीन की नाली में फेंक देंगे।" उसने कहा—"भला तुझ सरीखा भी कहीं मूर्ख मिलेगा कि इतनी शीघ्रता से दौड़ा जा रहा है, किसी से बात तक करता नहीं, फिर इतना सब कुछ परिश्रम कर इतर निकाल नरद्बीन में फेंकेगा।

मित्रों दृष्टान्त तो यह हुआ पर इसका दार्ष्टान्त यह है कि जीवात्मारूपी माली दिन रात बड़ी शीघ्रता से दौड़ रहा है, परन्तु इससे जब कोई महात्मा कहता है कि—"कहां जाते हो, सुनो।" तो यह कहता है—"फ़ुरसत नहीं।" क्योंकि कई गाड़ी फूल यानी नाना प्रकार के अन्नादिक पदार्थ धन प्राप्त करता है, जिस के लिए किसी कवि ने कहा है—

नृत्यन्ति गायन्ति रुदन्ति चै रोहन्ति वंशं च गुणे चलन्ति।
तमाश्रमः पिण्ड महो लिहन्ति सर्वे कुकर्मा विरति चरन्ति॥
पतिव्रतं सत्कुलजा जहाति स्वब्रह्मचर्य्यं च पुमान् कुलीनः।
यस्य प्रभा प्रेतरणुमात्रलेशात् द्रव्यं सदा तच्छरणं ममास्तु॥

वृत्तान्त पत्राणि परः शतानि सु भाञ्जलैर्लेख शतैर्युतानि ।
सहान्यानि सदार्थयंति धना न चान्यत्र न के भजंति ॥
गतापराधानपि दण्डय त्र कृतापराधानपि न त्यजंति ।
य ःभ्रान्तचित्ताः किनराजकीयाः चित्त मतस्य प्रगतिर्धनीया ॥
उपानत्प्रहारैरहोताडित मुःमुर्निर्भर्त्सिताः कारागेहे निरुद्धाः ।
यदर्थं व्यथास्तस्कराः सं सहन्ते धनायाद्य तस्मै नमस्ते नमस्ते

बस केवल एक पेट के भरने के लिए धन के लिए लोग क्या २ नहीं करते । तब तो इन से महात्मा पूछता है, धन कमा कर क्या करोगे? अन्नादिक नाना प्रकार के पदार्थ खरीदेंगे । उन पदार्थों को लेके क्या करोगे? रस बनावेंगे । उस रस का क्या करोगे? रक्त बनावेंगे । रक्त बना के क्या करोगे? मांस बनावेंगे । मांस बना के क्या करोगे? मज्जा बनावेंगे । मज्जा बना के क्या करोगे? हड्डी बनावेंगे । हड्डी बना के क्या करोगे? सार बनावेंगे । सार बना के क्या करोगे? वीर्य बनावेंगे क्यों कि शुश्रुत में लिखा भी है—

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान् मेदः प्रजायते ।
मेदसोस्ति ततो मज्जा मज्जा शुक्रस्य संभवः ॥

अर्थ—रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेदा, मेदा से मज्जा, मज्जा से हड्डी, हड्डी से सार, सार से वीर्य बनता है । तब तो महात्मा ने कहा—गाड़ियों अन्नादिक पदार्थों में कितना वीर्य बनता है? इसने कहा—बहुत ही थोड़ा । फिर उसे क्या करोगे? कहा—रण्डियों की नरद्वीनरूपी मोरियों में फेंक देंगे ।

अब आप लोग सोचें कि जिस अन्न के प्राप्त करने में कितने पाप तथा कितने कष्ट सहे, फिर उससे वीर्य्य बनाने में कितने कष्ट सहे, पुनः उसे इस प्रकार व्यर्थ फेंकना कितना अनुचित है?

४०—बिना परीक्षा के व्याह

पर हथ बनिज सँदेसे खेती । बिन वर देखे व्याहे बेटी ॥

एक सेठजी ने अपनी कन्या के जिसकी अवस्था आठ वर्ष की थी, विवाह के लिए नाई को भेजा । नाई कुछ दूर चल कर दूसरे गाँव में पहुँचा । वहां एक लालाजी ने नाई को कुछ दे दिया दही बूरा खिला व्याह निश्चय कर लौटा दिया । जब नाई लौट कर आया तो लालाजी ने कहा कि—"कहो नाऊ ठाकुर, विवाह कर आये ?" कहा—"हाँ लालाजी, व्याह ठीक हो गया ।" लालाजी ने कहा कि—"वर की अवस्था क्या है ?" नाऊठाकुर ने उत्तर दिया—"लालाजी, बीस बीस बीस ।" लालाजी ने कहा—"और धन बल ?" नाऊठाकुर ने कहा—"लालाजी, धन तो इतना अंधाधुन्ध है कि कहीं कोई गिर जाता, कहीं कोई गिर जाता, पर वह कुछ देखते ही नहीं ।" लालाजी ने पूछा—"और इज्जत भलमन्सी कैसी है ?" नाऊ ठाकुर ने कहा—"लालाजी, चार आदमी हर समय साथ चलते हैं, इज्जत मरजाद को क्या कहना ।" लालाजी ने कहा—"और वर का स्वभाव कैसा है ?" नाऊठाकुर ने कहा—"लाला जी, चाहे कोई शिकायत लावे, सुनते ही नहीं । बड़ा सीधा स्वभाव है ।" लालाजी के सब सन्देह दूर हो गए और व्याह ठीक हो गया और भी जो मध्य की बातें थीं सब नाऊठाकुर कर करा आये । जब व्याह का दिन आया और लड़का भाँवरों में गया तो बरातवालों में से एक ने उसे गोद में उठा पाटे पर बिठाल दिया । तब तो लोगों ने वर को देख कहा—"नाऊठाकुर, यह लड़का कैसा ? तुम तो कहते थे कि बीस वर्ष का है ?" नाऊठाकुर ने कहा—"लालाजी, आप न समझें तो मैं क्या करूँ, हमने नहीं कहा था कि—"बीस बीस बीस ?" पुनः लालाजी ने कहा—"यह तो अन्धा भी है ।" नाई

ने कहा—'सरकार हमने तो यह भी कहा था कि उनके यहां से चाहे कोई कुछ ले जाय, देखते ही नहीं।" जब पण्डित ने वर से कहा—"जल ले आचमन कीजिये।" वर ने सुना ही नहीं। तब लाला जी ने कहा कि- 'यह तो बहिरा भी है।" नाई ने कहा—"लालाजी, हमने तो कहा था कि उनसे चाहे कोई शिकायत करे, सुनते ही नहीं, स्वभाव के बड़े सीधे हैं।' पुनः पण्डित ने कहा—"आप उस पाटे पर जाइये।" तब चार आदमियों ने उठा कर बिठाया। तब तो लालाजी ने कहा—"यह तो लँगड़ा भी है।" नाई ने कहा—"लालाजी, क्या हमने नहीं कहा था कि चार आदमियों के साथ चलते हैं, वह ऐसे इज़्ज़त दार हैं।"

४१—जैसा करना वैसा भरना

एक वैश्य की बहू बहुत ही कर्कशा दुष्ट प्रकृतिवाली थी। निशदिन न कुछ काम न काज, केवल अपनी सास से लड़ने का उसका काम था और यहां तक अपनी सास के साथ अत्याचार करती थी कि अपने उतारन फटे पुराने वस्त्र उसके पहिनने को और एक टूटी सी खाट उसके लेटने को दे रक्खी थी और खाने को भोजन जो सब से बुरा अनाज सड़ा घुना चूनी भूसी होती थी उसकी रोटियाँ और दाल मिट्टी के कूंड़ों में दिया करती थी। परन्तु इस बहू के भी एक लड़का था। जब यह लड़का सयाना हुआ और इसका ब्याह हुआ और उसकी स्त्री घर आई तो भी वह अपनी सास के साथ तो दुष्ट व्यवहार करती थी, पर अपनी बहू को बड़े प्यार से रखती थी। परन्तु छोटी बहू अपनी सास के व्यवहार जो वह अपनी सास से करती थी नित्य देखा करती थी। यह बड़ी बहू अपनी छोटी बहू के आने पर अपनी बुढ़िया सास को इसी के हाथ कूंड़ों में

भोजन भेजती थी और वह छोटी बहू अपनी सास की सास यानी अजियासास को भोजन खिला कूंड़े को दीवार से ओड़का देती थी। इस प्रकार करते करते बहुत कूंड़े जमा हो गये। एक दिन इस छोटी बहू की सास यानी बड़ी बहू ने कूंड़े देखे तो वे बहुत से जमा हो गये थे, तब तो वह अपनी पतोहू छोटी बहू से बोली—' बहू, यह कूंड़े क्यों इकट्ठा करती जाती है? तमाम जगह घेर रक्खी है, इन्हें फोड़ती क्यों नहीं जाती।" उसने उत्तर दिया कि—"सासजी, फिर तुम्हें आगे मैं काहे में भोजन दिया करूंगी? कहां से इतने कूंड़े लाऊंगी?" यह सुन कर बड़ी बहू ने अपना दुष्ट व्यवहार छोड़ दिया। सच है, किसी कवि ने कहा है—

> चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम्।
> प्रसादयति यो लोकं तं लोकोऽनुप्रसीदति॥

४२—मूर्ख

> बुद्धैचव विद्या सफला फलप्रदा अबुद्धि विद्या विफलाऽफलप्रदा।
> यथाति मूढ़ाश्चतुरोऽपिमंगना, गताः पदेशं स्वधनाः पुरावपि॥

अर्थ—बुद्धि ही से विद्या सुफल होती है और बुद्धि से रहित विद्या व्यर्थ होती है। यथा—

एक ज्योतिषी, एक वैद्य, एक नैयायिक, और एक वैयाकरणी ये चारों द्रव्य प्राप्ति की आशा से विदेश को निकले। ये चारों मनुष्य यद्यपि पण्डित थे तथापि बुद्धि से शून्य थे। चलते चलते जब वे बहुत दूर निकल कर एक राजा के राज्य में पहुंचे तो ग्राम के बाहर बैठ आपस में सम्मति की कि मुहूर्तपूर्वक ग्राम में चलना चाहिये, अतः सबों ने कहा कि—"महाराज ज्योतिषी जी कोई ऐसा मुहूर्त निकालिये कि जिसमें

चलते ही सिद्धि प्राप्त हो।" ज्योतिषी जी महाराज ने मीन मेष वृष मिथुन कर कहा कि-"रात में दो बजे ऐसा मुहूर्त है कि चलते ही कार्य्य सिद्ध होगा।" जब दो बजे रात को चलना है तो कुछ भोजनादि का प्रबन्ध करना चाहिये, अतः यह सम्मति हुई कि भोजन के लिए वैद्यजी को भेजना उचित है, क्योंकि वे सम्पूर्ण पदार्थों के गुण दोष जानते हैं, इससे ये उत्तम पथ्य रूप भोजन लायेंगे और यह भी सम्मति हुई कि साथ में नैयायिक जी को जाना चाहिये क्योंकि यदि यह साथ होंगे तो तर्क वितर्क हो भोजन ठीक आयेगा। ऐसा सोच इन दोनों महाशयों को भोजन लेने के लिए भेजा। अब तो वैद्य जी सोचने लगे कि अमुक पदार्थ ले चलें तो वह कफवर्द्धक है और अमुक ले चलें तो वातवर्द्धक है और अमुक ले चलें तो वह पित्त वर्द्धक है। यह सोचते ही थे कि वैद्य जी को याद आया कि 'सर्वरोगहरो निम्बः' इस लिए नैयायिक जी से कहा-'नीम के पत्ते सर्वरोग नाशक हैं, चलिये, उन्हें तोड़ें।' निदान दो गट्ठे नीम के पत्ते तोड़े गये वैद्य जी ने कहा-"जब तक मैं इन्हें बांध रहा हूं तब तक आप हाट से घृत लेते आइये।" नैयायिक जी घृत लेने गये। हाट से घृत लेकर मार्ग में चले आते थे कि अनायास ही इनके मन में शङ्का उत्पन्न हुई कि—"घृताधारं पात्रं यदिवा पात्राधारं घृतं।" अर्थात् घृत के आधार पात्र है या पात्र के आधार घृत है। पुनः सोचा कि—'प्रत्यक्षस्य किं प्रमाणं?" यह विचार कर पात्र औंधा कर दिया। सम्पूर्ण घृत भूमि पर गिर पड़ा। कोरा पात्र ले वैद्य के पास आये। वैद्य ने पूछा—'घृत ले आये?" तब उन्होंने सम्पूर्ण वृत्तान्त वैद्य जी को कह सुनाया। दोनों नीम के पत्तों के गट्ठे सिर पर रक्खे हुए पूर्व स्थान पर आ विराजे। अब तीन तो अपना अपना काम कर चुके, रहे व्याकरणी जी, उनसे कहा गया कि—"अब आप इसे पकाइये।" व्याकरणी जी कुम्हार के

यहां से दो नांदे लेकर और उनमें नीम के पत्ते भर चार चार घड़ा उनमें जल डाल कर उबालने लगे। जब नीम के पत्ते "बुड़ बुड़ बुड़ बुड़" चुरने लगे, तब तो व्याकरणी जी ने कहा- "अशुद्धं न वक्तव्यं, अशुद्धं न वक्तव्यं।" परन्तु जड़ नाद था जल क्या सुनता; कैसे चुप होता, जब वह बड़ बड़ बड़ होता ही गया तो व्याकरणी जी ने क्रोध में आ पात्र भूमि में दे मारा और कहा—"अशुद्धं किं वक्तव्यं?" अतः चारों तमाम दिन भूखे रहे। रात को दो बजे राजा के शहरपनाह का फाटक बन्द हो गया। दूत पहरा देने लगे। उस समय इनका मुहूर्त आया। जब यह चारों शहर को चले तो वहां फाटक के किवाड़े बन्द पाकर बोले कि—"फाटक की खिड़की अवश्य तोड़ना चाहिये, क्योंकि इस साअत में प्रवेश करने से बड़ी सिद्धि प्राप्त होगी।" अतः चारों ने ज्योंही फाटक की खिड़की को तोड़ा त्योंही राजदूत उन चारों को पकड़ ले गये और राजा के यहां से छै छै मास का कठिन कारागार हुआ। यह सिद्धि प्राप्त हुई। कहिये, इनको विद्या पढ़ाने से क्या फल प्राप्त हुआ किसी भाषा कवि ने ठीक कहा है—

> ए रे गन्धी सुघर नर, अतर सुंघावत काहि।
> कर फुलेल को आचमन, मीठो कहत सराहि॥

तब गन्धी ने कहा—

> नहि गंगा नहि गोमती, नहीं राम संचार।
> तू कित फूली केतकी, गीधी गांव गंवार॥

४३-मूर्खों के समाज में विद्वानों की दुर्गति

एक पण्डितजी पच्चीस वर्ष काशीजी में पढ़ आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण कर आ रहे थे। वे एक मूर्खों के गांव में से आ निकले।

उस ग्राम के वासी इनकी ढोली धोती चन्दन तिलक देख बोले-
"क्या आप पण्डित हैं!" उन्होंने कहा—"हां पण्डित हूं।" कहा—"आप कहाँ से आ रहे हो?" पण्डितजी ने कहा—"काशीजी से।" पूछा—"आप कहाँ तक पढे हैं?" पण्डितजी ने कहा—"मैं आचार्य्य परीक्षा उत्तीर्ण कर आया हूं।" ग्रामवासियों ने कहा- 'आप हमारे पण्डित लठा पांड़ेजी से शास्त्रार्थ करेंगे?' पण्डितजी ने कहा-'हां करूंगा, आप उनको बुलाइये।' ग्रामवासियों ने कहा-'भाई इस प्रकार नहीं, पहले यह प्रतिज्ञा हो जाय कि यदि आप जीतें तो हमारे पण्डित लठा पांड़े के सम्पूर्ण पोथी पत्रा ले लीजिये और यदि हमारे पण्डित लठा पांड़े जीत जायँ तो आपके सम्पूर्ण पोथी पत्रा ले लें।' पण्डितजी ने कहा—'ऐसा ही सही, आप लठा पांड़ेजी को ले आइये।' ग्रामवासी लठा पांड़ेजी को इस श्लोक की भांति—

वड़ा धोता वड़ा पोथा पण्डिता पगड़ा वड़ा।
अक्षरं नैव जानाति पोड़संखाय नमोनमः॥

एक बड़ी भारी धोती काशी के पण्डितजी से चार अंगुल नीची पहिरा कर तथा बहुत कुछ चंदन तिलक चौथिहे मटके की तरह रंग पण्डित के सामने लाये। काशी के पण्डितजी ने कहा—'पण्डितजी, नमस्कार।' तब तो लठा पांड़ेजी ने कहा "नमस्कार, फमस्कार, ठमस्कार, गमस्कार।" काशी जी के पण्डित जी यह सुन चुप हो गये कि यथार्थ में मैं इस मूर्ख से नहीं जीत सकता। लठा पांड़ेजी ने कहा—'अच्छा आप बड़े पण्डित हो तो बताओ इसका क्या अर्थ है—

"खख्ख खैय्या मय्या"

पर पण्डित जी चुप के चुप ही रहे। गांववालों ने पंडितजी को चुप देख सब पुस्तकें छीन लीं। तब तो पण्डितजी चुपके

से सोचते विचारते हुए चल दिये। जब घर पहुंचे तो इनका भाई जो मूर्खता में लठापांडे का बाप था, हल जोत कर आया और अपने भाई से मिल कर पूछा कि—"भाई जी आप उदासीन क्यों हैं!" भाई ने सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। यह सुनते ही वह लठा पांडे से नीची धोती, टीका पाटा, तिलक छाप लगा एक बोरे में पक्की ईंटें भरा एक आदमी के सिर पर रखवा अपने से एक हाथ ऊंचा लट्ठ ले लठा पांडे के गाँव जा विराजा परन्तु वहां यह दशा थी कि—

घर की गाय गलैंदा खाय। बार बार महुआ तर जाय॥

अतः ग्रामवासियों ने आकर इनसे पूछा—"क्या आप पण्डित हैं" इन्होंने कहा—"हां।" पूछा—"कहां पढ़े हो?" कहा—"नदिया शान्ती में।" कहा—"हमारे पण्डित लठा पांडे से शास्त्रार्थ करोगे?" कहा—"हां हां, और विद्या किस लिए पढ़ी है?" तब गाँववालों ने कहा कि—"शास्त्रार्थ के प्रथम यह प्रतिज्ञा हो जाय कि यदि आप जीतें तो हमारे पण्डित लठा पांडे की सब आप पोथी पत्रा ले लें और यदि लठा पाँड़े जीतेंगे तो वह सब आपकी पुस्तकें ले लेंगे।" इन्होंने कहा—हमें स्वीकार है, आप लठा पांड़े को लाइये।" तब ग्रामवासी लठा पाँड़े का पूर्ववत भेष बना लिवा लाये। आते ही लठा पांड़े ने कहा-"नमस्कार, फमस्कार, ठमस्कार, गमस्कार।" इसने कहा—'नमस्कार, फमस्कार, ठमस्कार, गमस्कार, चमस्कार।' बस प्रणाम होने के पश्चात् ही लठा पांड़े ने कहा—"खख्खा खैया।" इसने कहा—"क्या मूर्ख है, पहिले ही खख्खा खैया? पहिले जोतै जोतैया, बवै बवैया, सिंचै सिंचैया, गोड़ै गोड़ैया कटै कटैया, मड़ै मड़ैया, उड़ै उड़ैया, पिसै पिसैया, पवै पवैया, तब पीछे को खख्ख खैया।" बस, यह सुनते गांववालोंने कहा—

'लठा पांडे हार गये।" अब तो इस ने लठा पांडे के सब पोथी पत्रा ले गांव के लोगों से यह कहा कि—"आज के दिन जो पण्डित हारा हो, यदि उस के मूछ का एक बाल अपने घर ले जाय तो घरों में जितना लोहा हो सोना हो जाय।" तब तो गांव के सब लोगों ने दौड़ दौड़ पण्डित जी की सम्पूर्ण मूछें उखाड़ लीं। अब तो पण्डित जी का मुंह बिलकुल फूल गया। एक अहीर की स्त्री ने यह खबर पीछे से सुनी और वह पण्डित जी के यहां दौड़ी गई और पण्डित जी से कहा कि—"पण्डित, आपने सब को अपनी मूछ के बाल बांटे हैं, अतः हम को भी एक बाल दो।" यह सुन पण्डित बेचारे का तो वहां मुंह फूला हुआ था अतः पण्डित ने कुछ कटु वाक्य उस स्त्री को कहे। जब उस स्त्री का पति आया तो उसने अपने पति से यह सब वृत्तान्त कहा। वह गंवार जाकर पण्डित से बोला कि—"क्यों पण्डित, आज तक तू ने हमारी ही रोटी खाई और हमें एक बाल भी न दिया?" और क्रोधित हो उसने पण्डित की चोटी उखाड़ ली।

३३—मूर्खों के समाज में पण्डितों की दशा

एक बार एक अहीरों के ग्राम में पशुओं की बीमारी हो गई। सम्पूर्ण पशु बाँ बाँ चिल्ला चिल्ला जब मरने लगे तो अहीरों ने यत्र तत्र जा उनकी दवा पूछी। लोगों ने इनसे कहा कि—"कण्डों के बड़े बड़े अहरा सुलगा, छै करछुले गरम करो, जब करछुले खूब लाल हो जांय तब जो पशु बीमार हो उसके उन अहरों से करछुले निकाल दो चूतड़ों पर और दो पीठ पर और दो गर्दन पर दागने से पशु न मरेगा।" अहीर ऐसा ही करते रहे। इस के कुछ दिन पीछे एक सनाढ्य पण्डित ब्राह्मण बड़े सदाचारी सीधे सादे घूमते घामते अन-

यास उसी अहीरों के गांव में पहुंचे और रात को एक चौधरी साहब के मकान पर सो रहे। प्रातः काल चार बजे पण्डितजी ने उठ सामवेद सस्वर पाठ करना प्रारम्भ किया, परन्तु अहीरों को पण्डितजी को चिल्लाते देख ख्याल हुआ कि अरे राम राम, यह ब्राह्मण भी विचारा मरा जान पड़ता है वही पशुओं वाली बीमारी इसे भी हो गई। ऐसा समझ अहीरों ने अपने बच्चों से कहा—'अरे जल्दी से थोड़े कण्डे और छै करछुले ले आओ।' बच्चों ने ला अपने पिताओं को कण्डे करछुले दे दिये। अहीरों ने अहरा लगा करछुले आग में धर दिये। पर सामवेदी जी को इस कृत्य का कुछ परिणाम ज्ञान न था, अतः वे बेचारे अपने उसी आनन्द से वेदपाठ कर रहे थे। जब करछुले लाल हो गये तो उन लोगों ने पण्डित जी को एक रस्सी से बांधा। परन्तु जब अहीर बांधने लगे तो पण्डित जी ने कहा कि— "यह तुम लोग क्या करते हो?" कहा—"आपकी दवाई करते हैं।" कहा—'क्या हम बीमार हैं?' कहा—बीमार नहीं तो चिल्लाते क्यों?' पण्डितजी ने कहा—'यह तो हम वेद पाठ करते हैं!" कहा—इसी भांति तो पशू वेदपाठ करते थे, पर वे सब मर गये।" पण्डितजी ने कहा—"हम नहीं मरेंगे, हमें छोड़ दो।" तब तो सब अहीरों ने कहा—"यह तो बीमारी के मारे अंड बंड बकता है, अरे भाई तुम जल्दी दागो नहीं तो बेचारा ब्राह्मण मर जायगा।" अतः अहीरों ने दो लाल तपे हुए करछुले पण्डित जी के चूतड़ों में दो पीठ पर और दो गर्दन पर लगा कर सब बोले कि पण्डितजी, अब तो शुद्ध हो?" पण्डित बेचारे तड़फड़ा रहे थे। यह सुन कर उन्होंने एक अंगुली से माथा ठोंका कि हमारी तक़दीर जो ऐसे गांव में आ पड़े। परन्तु उन मूर्ख अहीरों ने समझा कि पण्डित जी कहते हैं कि माथे पर भी। उन्होंने कहा—'ओरे लाओ २

कण्डे करछुला" और झटपट उन्हों ने करछुले तपा कर दो२ पण्डित जी के मस्तक में लगा दिये और फिर पूछा कि 'पंडित अब शुद्ध हो?" पण्डित जी ने सोचा कि अब बोले तो ये मूर्ख दो और लगावेंगे। ऐसा समझ पण्डित बिचारे चुप रह गये। तब अहीरों ने कहा—"अब शुद्ध होगया।"

कोलाहले काककुलस्य जाते विराजते कोकिलकूजितं किम्।
परस्परं संवदतां खलानां मौनं विधेयं सततं सुधीभिः॥

एक भाषा कवि ने भी क्या ही अच्छा कहा है—

जाइयो तहां जहां संग न कुसंग होय कायर के संग शूर भागे पर भागे है। फूलन की बासना सुबास भरे बासन पै कामिनी के संग काम जागे पर जागे है॥ घर बसे घर पै बसो घर वैराग कहां काम क्रोध लोभ मोह पागे पर पागे है। काजर की कोटरी में लाखहू सयानो जाय काजर की एक रेख लागे पर लागे है॥

४५--मूर्ख उलटा ही समझता है

एक वृद्ध पण्डित अपने पुत्र को पढ़ाते थे कि—

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः॥

पिता—पढ़ो बेटा पढ़ो, मातृवत् परदारेषु।
पुत्र—तो इसका क्या अर्थ हुआ?
पिता—पराई स्त्री को माता के समान जानना चाहिये।
पुत्र—तब तो पिता जी मेरी स्त्री भी आपकी माता होगी।
पिता—छिः छिः छिः क्या ऐसा कहना चाहिये! पढ़ो-परद्रव्येषु लोष्ठवत्।

पुत्र—इसका क्या अर्थ हुआ ?

पिता—पराई वस्तु को मिट्टी के ढेले के समान जानना चाहिये

पुत्र—तो अब दुष्ट हलवाई को मिठाई के दाम नहीं दूंगा, क्योंकि बरफ़ी पेड़े आदि मिट्टी के ढेले के समान वस्तु के दाम ही क्या ?

पिता—धिक मूर्ख ! अधिक समझ के पढ़ आगे भावार्थ में स्पष्ट हो जायगा। आगे को पढ़— 'आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः ।"

पुत्र—इसका क्या अर्थ है ?

पिता—जो अपने समान सब को देखता है, वह पण्डित है।

पुत्र—तब तो अच्छी बात है, पर को अपने ही समान समझेंगे, पराई वस्तु और पराई स्त्री भी अपनी ही समझना चाहिये।

पिता—अरे जा मूर्ख के मूर्ख! इसी बुद्धि पर धर्मशास्त्र पढ़ना स्वीकार किया है। इससे तो खोनचा रखना सीख लेता तो घर का पालन तो होता ?

पुत्र—हट दे मूर्ख पाजी।

पिता ने थप्पड़ मारा और पुत्र लड़कों में खेलने भग गया।

एक नवयुवा स्त्री गंगाजी को घड़ा लेकर जल भरने जाती थी। इतने में वह धर्मशास्त्र-शिक्षित बालक आया और उससे बोला कि—"अम्मा, अरी अम्मा !"

स्त्री बोली—क्यों बेटा, आ (मन ही मन) इस लड़के की कैसी प्यारी बोली है !

बालक—क्यों री अम्मा, चीज़ खाने को एक पैसा तो दे ?

स्त्री—बेटा, मैं तो आप दुखिया हूं, पैसा कहां से लाऊं, घर घर पानी भर कर पेट पालती हूं।

बालक—अरी रांड़, पैसा क्यों नही देती ? भला चाहती है तो जल्दी दे, नहीं तो पीटता हूं।

स्त्री—यह कैसा बालक है जो गालियें देता है।

बालक—नहीं देती हरामज़ादी? (लात मारी और घड़ा फोड़ डाला।)

इतने में गङ्गा स्नान से लौट कर उस बालक का पिता घर को आता था, सो यह चरित्र देख कर बोला—"क्यों रे बदमाश पुत्र!" पुत्र बोला—'यह मेरी माँ है, जो माँ के साथ किया करता हूं, सोई इसके साथ करता हूं, क्योंकि आपने सवेरे पढ़ाया ही था कि—"मातृवत्परदारेषु।" और स्त्री की तरफ़ देख कर बोला—"क्योंरी अम्मा, मेरे पिता को देख कर घूंघट नहीं काढ़ती? क्या तू मेरी माँ है, तो मेरे बाप की भी माँ है?"

आदमी आदमी में अन्तर। कोई हीरा कोई कंकर॥

४६-विषयाशक्ति से प्रेमसक्ति

एक राजा को गाना सुनने का बड़ा ही शौक था। जो कोई उसके पास जाता या जिसे वह सुनता कि अमुक मनुष्य गाना गाता है तो उसे बुला कर गाना सुनता था। एक बार एक चमार को बुला के कहा—"अरे भुन्नैया, कुछ गाना तो सुना?" चमार बोला—"अरे सरकार, मैं गावबु बावबु का जानौ, मैं और जो सरकार का हुकुम होय सो खिजिमिति बजाय लांवौं। सरकार मोंहिका नाईं गाय आवति है।" राजा ने कहा—'अबे गा, थोड़ा ही गाना।" चमार ने कहा—"महाराज मैं नाईं जानत हौं।" राजा ने कहा—"अबे साले कहना नहीं मानता? गा, गा।" चमार ने कहा—"गरीबपरवर, मैं नाईं जानत हौं।" राजा ने कहा—"अबे साले गायेगा या पिटेगा?" चमार गाता है—मोय मारि २ ससुर गवावति है। मोय मारि २ ससुर गवावति है

इतने में उस चमार की स्त्री पहुंची और वह भी गाकर अपने पति को समझाने लगी कि—

मनमां है चाँदि पिटावन को। मनमां है चाँदि पिटावन को॥

यह सुन चमार ने उत्तर दिया कि—

अरे ससुरा तो समझत नाहीं, तुइ ससुरी समझावति है।
मोय मारि मारि ससुर गवावति है॥

राजा गाना सुन बड़े प्रसन्न हुए और दोनों को इनाम दे कर विदा किया।

४७-जिन्हें भौंकना सिखाओ वही काटने दौड़ते हैं

एक गड़रिया किसी भारी अपराध में फँस गया था जिस में जज साहब उसे फांसी देनेवाले थे। गड़ेरिये ने व्याकुल हो एक वकील साहब के पास जा अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया। वकील साहब ने कहा—"अगर हम तुझे फांसी से बचा देंगे तो एक लाख रुपया लेंगे।" गड़ेरिये ने कहा—"आप जो चाहें वह ले लें पर मेरी जान बचाइये। जान के आगे एक लाख क्या चीज़ है। आप एक ही लाख ले लें, पर अब की बार बचा दीजिये।" वकील साहब ने कहा—"जब जब जज साहब तुझ से सवाल करें तब तब सिवाय 'में में में' के और कुछ न कहना।" अतः दूसरे दिन जब गड़ेरिये का अभियोग प्रविष्ट हुआ और जज साहब ने कहा—"क्यों रे गड़ेरिये, तूने अमुक अपराध किया?" गड़ेरिये ने जवाब दिया 'में'। जज साहब ने कहा—"अबे में करता है, या जो हम पूछते हैं, वह बतलाता है। बोल तूने अपराध किया?" गड़ेरिये ने फिर भी कहा—'में'। जज साहब ने कहा—"वकील

साहब, क्या यह पागल है ?" वकील साहब ने कहा—"हुजूर बिलकुल पागल मालूम देता है ।' जज साहब ने गड़ेरिये से कहा—'अरे क्या तू पागल है ?' गड़ेरिये ने फिर कहा—'में' । जज साहब ने कहा—'निकालो इसको यह पागल है ।' गड़ेरिया प्रसन्न हो कचेहरी से निकल आया और वकील साहब ने भी प्रसन्न हो कचेहरी से निकल गड़ेरिये से कहा कि- लीजिये, अब तो तुम्हारी जान बच गई । अब मेहनताना दीजिये ।' गड़ेरिये ने कहा—'में' । वकील साहब ने कहा—'अरे भाई, हम से भी में में, अरे ऐसा क्यों करते हो ?' गड़ेरिये ने फिर कहा 'में' पुनः वकील साहब ने बहुत कुछ कहा तो गड़ेरिये ने उत्तर दिया—'वकील साहब, क्या आप पागल हुए हैं ? भला जिस 'में' ने मुझे फांसी से बचाया क्या वह मुझे एक लाख रुपये से न बचायेगी ? इस लिए जाइये, आप अपना काम कीजिये, मेहनताने का ख्याल छोड़ दीजिये ।'

उपाध्याये नटे धूर्त्ते कुट्टिन्याञ्च वहुश्रुते ।
एषु माया न कर्त्तव्या म यातैरेव निर्मिता ॥

४८—सत्य वचन महाराज

एक पण्डित जी सब को कथा सुनाया करते थे, परन्तु लोग जो कुछ पण्डित जी कहा करते थे हर बात में 'सत्य वचन महाराज' कह दिया करते थे । एक दिन पण्डित जी ने सोचा कि ये सब-'सत्य बचन महाराज' ही कह दिया करते हैं या कुछ संभव असंभव का भी ख़याल करते हैं ? यह सोच पण्डित जी बोले—'जो है सो एक समय के बीच में एक पर्वत में छिद्र होने से सहस्रों मक्खियां निकलती भई ।' लोगों ने कहा—'सत्य वचन महाराज ।' पण्डित जी पुनः बोले कि—"यह मक्खी जो हैं सो वहां से निकल करिके एक वैश्य की

दूकान पर एक एक गुड़ की भेली पर बैठ जाती भईं ।' लोगों ने कहा—'सत्य वचन महाराज ।' पण्डित जी पुनः बोले कि— 'वह मक्खियां एक २ गुड़ की भेली को जिस २ पर बैठ रहीं थीं ले ले कर उड़ जाती भईं, श्री गोविन्दाय नमोनमः' लोगों ने कहा—'सत्यवचन महाराज!' बस पण्डित जी ने यह सुन कर समझ लिया कि ये सब बुद्धि से शून्य निरे बुद्ध हैं।

वचस्त्रैव वक्तव्यं यत्रोक्तं सफलं भवेत् ।
स्थायी भवति चात्यन्तं रागः शुक्लपटे यथा ॥

४६--असंभव का संभव कर दिखाना

एक बुड्ढे काश्तकार ने जो अपने घर का अकेला ही था और घर में उसके एक घोड़ा और कुछ असबाव था अपना असबाब कोठरी में बन्द करके तीर्थ-यात्रा करने का विचार किया और अपना घोड़ा एक वैश्य को सौंप कर तीर्थ-यात्रा को चला गया। यहां वैश्य ने काश्तकार का घोड़ा बेंच रुपया अण्टी में किया। जब पांच छै मास के बाद, काश्तकार लौटा तो उसने सेठजी के पास जाके कहा—"सेठजी हमारा घोड़ा कहां है? लाइये।" सेठजी ने कहा—"आपका घोड़ा मर गया काश्तकार चुप रह गया। परन्तु कुछ काल के बाद काश्तकार को पता लगा कि उसका घोड़ा मरा नहीं बल्कि साहूकारने बेंच लिया है, अतः काश्तकार ने पुनः सेठ से कहा—"दिखाओ, हमारा घोड़ा कहां पड़ा है?" सेठ जी काश्तकार को ले कर वन में गये, वहां एक बैल मरा पड़ा था, उसे दिखला कर बोले—"देखिये, आप का घोड़ा यह पड़ा है।" इसने कहा कि— 'घोड़े के सींग नहीं होते, इस के तो सींग हैं । घोड़े के दांत तो दोनों ओर होते हैं, पर इसके तो एक ही ओर हैं।" सेठ जी ने कहा कि "यही तो इसे बीमारी हो गई कि घोड़े से बैल हो गया।"

असंभवं हेममृगस्य जन्म तथापि रामो लुलुभे मृगाय।
प्रायः समापन्न विपत्तिकाले धियोऽपि पुंसां मलिनीभवन्ति॥

५०—बाप दादे से चली आती है

एक साहूकार का लड़का खेलते खेलते एक कुएँ में गिर पड़ा। साहूकार लड़के के कुएँ में गिरने की खबर पाकर अपने घर से एक रस्सा लेकर दौड़ा और कुएँ में रस्सा लटका कर बेटे से कहा—'बेटा, इस रस्से को अपनी कमर में मज़बूत बांध दे।' बेटे ने रस्सा बांध दिया और बाप ने उसे कुएँ से खींच लिया। कुछ दिन के पश्चात् एक मनुष्य एक वृक्ष पर चढ़ गया परन्तु चढ़ने को तो चढ़ गया पर उतरना उसे कठिन हो गया। अतः उसने हल्ला मचा लोगों को बुला कहा—'भाइयो मैं इस वृक्ष पर चढ़ने को तो चढ़ गया हूं पर उतरते नहीं बनता, इससे आप लोग कृपा करके कोई ऐसी युक्ति सोचें कि मुझे कष्ट न हो और वृक्ष से उतर आऊं।' लोगों ने अपनी अपनी युक्तियां बतलाईं परन्तु वह युक्तियां उस मनुष्य के जो कि वृक्ष पर चढ़ा था समझ में न आईं, लेकिन वह साहूकार का लड़का जिसके बाप ने उसे रस्सा बांध कुएं से निकाला था वहां पहुंच गया और उसने कहा कि—'एक लम्बा सन का रस्सा घर से मंगवाइये मैं इसको अभी बिना परिश्रम के उतारे लेता हूं। लोगों ने इसे रस्सा मंगवा दिया। इस साहूकार के लड़के ने रस्सा हाथ में ले ऊपर को फेंक उस पुरुष से कहा—'इसे पकड़ कर तुम अपनी कमर में बांधो।' वृक्षस्थ पुरुष ने रस्से को कमर में बांध लिया। अब तो साहूकार का बेटा दोनों हाथों से उस रस्से को पकड़ नीचे को खींचने लगा। वृक्षस्थ पुरुष ने कहा—'यह क्या करते हो, मैं गिरा।' और उसने दोनों हाथों से

ऊपर वृक्ष की डाली पकड़ ली । और "महाराज मैं गिरा, महाराज मैं गिरा" कह कर वह चिल्लाने लगा, परन्तु साहूकार के बेटे ने कहा कि—"आप निश्चय रखिये गिरोगे नहीं रस्से में बांध कर खींचना तो हमारे बाप दादे से चला आता है।" ऐसा कह वृक्ष से खींच लिया और वृक्षस्थ पुरुष नीचे गिरते ही मर गया । लोगों ने कहा—"आप तो कहते थे कि यह तो बाप दादे से चली आती है, यह क्या हुआ ? यह क्यों मर गया ?" कहा— 'अब कलयुग लग गया है ।"

यस्यास्ति सर्वत्र गतिः स कस्मात् स्वदेशरागेण हि याति नाशम् ।
तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणाः क्षारं जलं कापुरुषाः पिबन्ति ॥

५१—कलियुग

एक वैद्य जी बड़े ही योग्य और अपने ग्राम के चारों ओर प्रसिद्ध थे । वैद्यजी के एक पुत्र अत्यन्त ही रूपवान् और बड़ा ही चंचल था । वैद्यजी ने अपने पुत्र के पढ़ाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया परन्तु उसने एक अक्षर भी न सीखा । कुछ काल के पश्चात् वैद्यराज का देवलोक हो गया, जिससे कि सारा व्यापार बन्द हो गया । अब तो वैद्यराज के पुत्र सोचने लगे कि इस प्रकार बैठे बैठे कैसे काम चलेगा, दादाजी वाला भोला अर्थात् औषधियों की पोटरी मौजूद ही है और गद्दी भी दादा जी वाली मौजूद और हाथ हमारे मौजूद फिर वैधक क्यों बन्द कर दी जाय ? यह विचार लोगों को औषधी देने लगे, परन्तु फल उल्टा होने लगा जहां वैद्यराज के समय में लोग औषधि से अच्छे हुआ करते थे, वहां इनकी औषधि से मरने लगे और यह होना ही था । तब तो लोगों ने वैद्यराज के पुत्र से कहा—"महाराज, आपके पिता के समय में तो लोग अच्छे

हो जाते थे, पर जब से आप औषधि करने लगे तब से जिस को आप औषधि करते हैं वही मर जाता है, यह क्या बात है वैद्यराज के पुत्र ने उत्तर दिया कि— 'भाई, झोला वही, गद्दी वही लेकिन अब कलियुग है इस लिये लोग अधिक मरते हैं क्योंकि 'न काल योगितो व्यापिनो नित्यस्य सर्वसम्बन्धात् । परन्तु याद रहे कि काल सुख दुख का कारण है यदि काल कारण है तो उस काल में सब की एक दशा होनी चाहिये पर यह नहीं होती इससे निश्चय है कि काल सुख दुख का कारण नहीं

कलियुग नहीं करयुग है ये करके तजरुबा देखलो ।
क्या खूब सौदा हो रहा, इस हाथ दो उस हाथ लो ॥

५२—गुरु-सेवा

एक मौलवी साहब एक सेठ के लड़के को पढ़ाया करते थे । मौलवी साहब बच्चे से कहा करते थे-' अबे तू कभी कुछ लाता नहीं।" बच्चा उत्तर देता था कि—"मौलवी साहब, लाऊंगा।" एक दिन उस सेठ के लड़के के यहां खीर बनाई गई और अचानक एक कुत्ते ने आकर वह खीर जुठार डाली, अतः जब सेठ जी का लड़का मौलवी साहब के यहां से पढ़ कर आया तो उस लड़के की माता सेठानी जी ने कहा- 'आज चाहो तो अपने मौलवी साहब को खीर दे आओ।" बच्चे ने कहा—"लाओ बहुत ही अच्छा है, मौलवी साहब को खीर दे आवें।" माता ने एक कूँड़े में खीर परोस कर दे दी। बच्चा खीर लेकर मौलवी साहब के यहां पहुंचा। मौलवी साहब खीर देख कर बहुत ही प्रसन्न हो गये और खाने के समय बोले कि— "बच्चा, क्या तुम्हारी माँ मेरे ऊपर आशिक हो गई जो ऐसी बढ़िया खीर भेजी?" बच्चा बोला कि "नहीं, यह बात नहीं, बल्कि आज हमारे यहां यह खीर पकी थी परन्तु मेरी माँ कुछ

काम करने लगी इतने में कुत्ते ने आकर इस खीर को जुठार दिया, इसलिए मां ने कहा कि आज यह खीर मौलवी साहब को दे आओ।" यह सुन कर मौलवी साहब ने क्रोध में आ बच्चे का खीर वाला कूंडा इतने ज़ोर से फेंका कि कूंडा फूट गया, तो बच्चा ज़ोर ज़ोर से रोने लगा। तब तो मौलवी साहब ने कहा—"अबे क्यों रोता है?" बच्चे ने कहा-"मेरी मां मारेगी।" मौलवी साहब ने कहा—" बच्चे हम तुझे कूंड़ा मंगवा देंगे।" बच्चे ने कहा—"आप क्या मंगवा देंगे, हमारा भाई इसी में रोज़ पाख़ाने जाया करता था।" यह सुन मौलवी साहब बहुत शरमा गये।

गुरुसुश्रूषया त्वेवं धर्पेणां न तु मूर्ख कथाः।

५३-टेढ़ी खीर

विना जाने हितकारी वस्तु को छोड़ देना।

अहित हित विचार शून्य बुद्धेश्रुति समयैर्बहुभिस्तिरस्कृत य।
उदर भरण मात्र केवलेच्छोः पुरुष पशाश्च पशश्च को विशेषः॥

एक स्थान में एक अन्धा बैठा हुआ था। लोग उसके सामने खीर की बहुत कुछ प्रशंसा किया करते थे। अन्धे ने कहा— "भाई खीर कैसी हुआ करती है?" लोगों ने उत्तर दिया कि— "सफ़ेद सफ़ेद।" अन्धे ने कहा—"सफ़ेद सफ़ेद कैसी?" लोगों ने कहा—"जैसे बगुला।" पुनः अन्धे ने कहा-"बगुला कैसा होता है?" लोगों ने जिस प्रकार बगुले की टेढ़ी गर्दन होती है वैसा ही हाथ कर दिया। पुनः अन्धे ने कहा—"देखें कैसी खीर होती है।" जब अन्धे ने उसको टटोला तो कहा—"यह तो टेढ़ी खीर है, यह हम कैसे खा सकेंगे? यह तो गले में हिलगेगी।"

५४—शेखचिल्ली

कर्णिकाकहित हों अर्थ मनोरथ शक्तिहित हो ।

एक शेखचिल्ली साहब एक स्टेशन पर रहा करते थे। एक दिन एक मियांजी रेल से एक राब की गगरी लेकर उतरे और शेखचिल्ली से कहा—"अबे, इस घड़े को शहर ले चलेगा ?" शेखचिल्ली ने कहा—'हां हुजूर।' मियां ने कहा—'दो पैसे मिलेंगे।' शेखचिल्ली ने कहा—'दोई देना।' मियां ने शेखचिल्ली के सिर पर घड़ा रखवा आगे आगे आप और पीछे पीछे शेखचिल्ली चले। अब शेखचिल्ली की मन्सूबेबाज़ी देखिये। शेखचिल्ली सोचता है कि इस घड़े को शहर में रखवाई मुझे दो पैसे मिलेंगे, उन दो पैसों की एक मुर्गी लूंगा और जब मुर्गी के अण्डे बच्चे होंगे तो उन्हें बेच कर एक बकरी लूंगा और जब बकरी के अण्डे बच्चे होंगे तो उन्हें बेच कर एक गौ लूंगा और जब गौ के अण्डे बच्चे होंगे तो उन्हें बेच कर एक भैंस लूंगा और जब भैंस के अण्डे बच्चे होंगे तो उन्हें बेच कर ब्याह करूंगा, फिर मेरे भी बाल बच्चे होंगे और वे बच्चे जब मुझ से कहेंगे कि दादा हमको फलां चीज़ ले दो तो हम कहेंगे—'धा बरखोद।' इस शब्द के ज़ोर से कहने में सिर से घड़ा गिर गया और गिर कर फूट गया। यह देख मियांजी बोले—'अबे तूने यह क्या किया, घड़ा क्यों फोड़ दिया?' शेखचिल्ली कहता है—'अजी मियां, आपको तो घड़े की पड़ी है, यहां तो कुनबा किया धरा गया।'

५५—मूर्खता की छड़ी

एक बार एक राजा साहब के यहां एक महात्मा जी पहुंचे। राजा साहब ने उन की बड़ी सेवा की और जब महात्माजी चलने लगे तो राजा साहब ने महात्माजी को एक छड़ी देकर कहा—

'महाराज, आप भ्रमण किया करते हैं, दुनियां में जो सब से अधिक मूर्ख आपको मिले, उसे ही यह मेरी छड़ी दे देना।' महात्माजी छड़ी लेकर चले गये। बहुत काल के पश्चात् जब राजा के मरण का समय आया तो उक्त महात्माजी राजा साहब के यहां फिर आये और राजा साहब से पूछा कि-'राजा साहब यह राज्य पाट क्या आपके साथ जायगा?' राजा ने कहा—'नहीं।' महात्मा ने कहा—'यह महल अटारी आपके साथ जायेंगी?' राजा ने कहा—'नहीं।' महात्मा ने कहा—'धन सम्पत्ति, मणिक मोती आपके साथ जायेंगे?' राजा ने कहा-'नहीं।' महात्मा ने कहा-'यह फौज फाटा हाथी घोड़े क्या आपके साथ जायेंगे।' राजा ने कहा—'नहीं।' महात्मा ने कहा—'यह स्त्री भाई बन्धु क्या आपके साथ जायेंगे?' राजा ने कहा—'नहीं।' महात्मा ने कहा—'यह तेरा शरीर तेरे साथ जायगा?' राजा ने कहा-'नहीं।' महात्मा ने कहा- फिर तेरे साथ भी कोई जानेवाला है? क्या किसी साथी को तूने संसार से लिया है?' राजा ने कहा-'नहीं।' तब तो महात्माजी ने कहा-कि-'राजा साहब, यह अपनी छड़ी लीजिये, आप से अधिक मूर्ख और हमें नहीं मिल सकता।' किसी कवि का वाक्य है—

बनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे नारी गृहे द्वारजनः श्मशाने।
देहश्चितायां परलोक मार्गे धर्मानुगो गच्छति जीव एकः॥

५६-ईश्वर विश्वासी पाप न करेगा

एक गुरु के पास दो मनुष्य चेला होने को आये। गुरु जी ने कहा—"हम तुम दोनों को एक एक खिलौना देते हैं, सो तुम खिलौने को लेकर ऐसी जगह से जहां कोई न हो तोड़ लाओ। तब हम तमको अपना चेला बना लेवेंगे।" दोनों अपना

अपना खिलौना लेकर चले। एक चेले ने तो गुरुजी के मकान के पीछे जा चारों तरफ़ चमक कर देखा कि अब कोई नहीं है और खिलौना तोड़ कर लाकर रख दिया और दूसरे ने खिलौने को लेकर सारा संसार ऊंची से ऊंची पहाड़ की चोटियाँ और गहरी से गहरी समुद्र की सतह और एकान्त से एकान्त अँधेरी कोठरियां तथा बड़े बड़े भयानक वन गोंद डाले परन्तु उसे कहीं ऐसा स्थान न मिला जहां खिलौना तोड़ता अतः दूसरे ने खिलौना वैसा ही लाकर रख दिया। गुरु ने दोनों से प्रश्न किया कि—"क्योंजी, आपको कहां ऐसा स्थान मिला जहां से खिलौना तोड़ लाये?" पहिले ने कहा—"गुरुजी मैं तो आपके मकान के पीछे गया, वहां कोई न था बस मैंने खिलौना तोड़ आपके आगे लाकर रख दिया।" दूसरे से कहा—"क्यों भाई, तुम्हें कोई ऐसा स्थान नहीं मिला जहां से खिलौना तोड़ लाते? तुमने क्यों लाकर वैसा ही रख दिया" इस दूसरे ने उत्तर दिया कि—"महाराज, मैंने ऊंचे से ऊंचे पहाड़ों की चोटी गहरी से गहरी समुद्र की सतह, अंधेरी से अंधेरी एकान्त कोठरियें और बड़े बड़े भयानक जँगल घूमे परन्तु मुझे कहीं ऐसा स्थान न मिला जहां दूसरा न होता। महाराज—

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥

एकोऽहमस्मीत्यात्मानं यत्त्वं कल्याण मन्यसे।
नित्यं हृदिवमस्त्येष पुण्य पापेक्षितः मुनिः॥

इस लिये नहीं तोड़ा।" महात्मा ने इसे ही अपना चेला बनाया और दूसरे से कहा—"तू अभी इस योग्य नहीं।"

—

५७-व्यर्थ विवाद

एक ससुर दामाद दोनों किसी खेत में हल चला रहे थे। ससुर ने कहा—'अमुक ग्राम यहां से ४ कोस है।' दामाद ने कहा—'तीन कोस है'।' ससुर ने कहा—'नहीं, चार कोस।' दामाद ने कहा—'नहीं, तीन कोस।' बस दोनों में युद्धकांड प्रारम्भ हो गया। युद्ध हो ही रहा था कि इतने में उसकी लड़की जो अपने दामाद से लड़ रहा था आई और बोली—'पिताजी, क्या है?' बाप बोला—'बेटी, अमुक ग्राम यहां से चार कोस है और यह कहता है तीन ही कोस है, एक कोस हमारा मुफ़्त ही में लिये जाता है।' बेटी ने कहा—'पिताजी, आपने तो हमें हमारे ब्याह में बड़ी बड़ी चीजें दीं, अब क्या एक कोस भी न दोगे?' पिता बोला—'इस तरह एक कोस क्या चाहे चारों ले ले, पर यह तो मुफ़्त में ही लिये जाता था।'

५८—व्यर्थ विवाद

एक बार दो काश्तकार अफ़ीमचियों ने सलाह की कि यारो इस साल हम तुम दोनों साझे साझे ईख बोवेंगे। दोनों ने कहा—'बहुत अच्छा।' उसमें से एक बोला कि—'यार हम तो एक ईख उसमें से नित्य चूसा करेंगे।' दूसरे ने कहा—'यार हम दो नित्य चूसा करेंगे।' पहिले ने कहा—'हम तीन चूसेंगे।' दूसरे ने कहा-तो हम चार चूसेंगे।' पहिले ने कहा-'तो हम पांच रोज़ चूसेंगे।' उसने कहा-'हम ६ रोज़।' उस ने कहा-'साले, हम ५ रोज़ चूसेंगे, तू ६ क्यों चूसेगा?' उस ने कहा- साले, तूने क्यों कहा कि हम ५ रोज़ चूसेंगे?' इस प्रकार दोनों में खूब ही घोर युद्ध, खून खच्चर हुआ। अब अदालत में मुक़द्मा गया तो मैजिस्ट्रेट ने कहा-'तुम दोनों ने

हमारी ज़मीन में ईख बोकर खूब ही चूसीं, इस लिए बीस बीस रुपये लगान के दोनों दाखिल करो-

शतं दद्यान्न विवदेत विज्ञस्य संमतम्।
विना हेतुमहिदुन्द्रीर्मातिमूर्खस्य लक्षणम्॥

५६—मनुष्य पंच कैसे बन सकता है?

एक महानन्द नामक पुरुष कुछ थोड़ा ही पढ़ा लिखा और इतना दीन था कि उसके निज का मकान भी न था और एक शिवाले की कोठरी में किसी राज्य में जैपुर की ओर से रहा करता था। एक दिन उसके ग्राम में दो मनुष्यों में कुछ झगड़ा होरहा था। महानंद बीच में कुछ बोल उठा। तब तो उन दोनों झगड़ालुओं ने महानंद से कहा कि-'तू कहां का पंच है जो बीच में बोलता है?' यह सुन कर महानन्द ने सोचा कि पंच कोई बड़ी अच्छी चीज़ है बस यहीं से उस के हृदय में पञ्च बनने का ख़याल हुआ और यहां तक कि पञ्च बनने के लिए उसने खाना पीना सोना सब कुछ छोड़ दिया और उदासीन वृत्ति से वह निशि दिन पञ्च बनने के उपाय सोचा करता था। महानंद की स्त्री ने इसकी यह दशा देख कहा कि—'स्वामिन्, आप भोजन न करने, जल न पीने वा न सोने या दिन रात शोक में रहने से थोड़े ही पंच बन जायेंगे, इस लिए आप अच्छी तरह भोजन कीजिये और प्रसन्न रहते हुए आपको जो उपाय मैं बताऊँ वह कीजिये, तब आप पञ्च बनेंगे।' महानंद तो इस चाह में था ही इस लिए कहा—'प्रिये, बतलाइये वह क्या उपाय है?' स्त्री ने कहा—'आप अपने निज के कामों अर्थात् भोजन वस्त्र के उद्योग के इतर जितना समय आपको मिले, उस समय में आप बिना किसी अपने स्वार्थ के केवल पर-

स्वार्थ और संसार के उपकार के लिए सब का हित किया कीजिये और वह बचा हुआ समय ग्राम के लोगों के कामों में व्यय कीजिये। बस, कुछ दिनों में आप पशु बन जायगे।' महानंद ने यह व्रत धारण कर लिया। भोजन वस्त्र के उद्योग के इतर जितना समय बचता, उस में महानंद गाँव में जिस किसी के यहां लड़का लड़की का विवाह होता जाकर, बिना कहे उसके काम करता। जो कुछ कमाने में द्रव्य बचता भूखों को दिया करता। किसी को बीमार सुनता तो उस के पास जा बैठता। उसके काम करता। कोई मर जाय तो उस के साथ जाता, आदि आदि परहित किया करता था। एक दिन ऐसा समय आया कि उसी ग्राम में एक खत्रानी का बेटा, जो अपने घर की करोड़पती थी और उसके एक ही बेटा था, बहुत ही बीमार होगया। इस खत्रानी के पुत्र के पास जितने पुरोहितादि रहते थे उन सब की यही नियत थी अगर यह खत्रानी का पुत्र मर जाय तो द्रव्य सब हमी लोगों को मिले। यह समाचार किसी प्रकार खत्रानी को सूचित हो गया। उस ने एक बुढ़िया से यह सब वृत्तान्त कहा। बुढ़िया ने कहा—'इस ग्राम में एक महानंद नामक पुरुष रहता है जो बड़ा ही परोपकारी है, यदि उसे ख़बर होजाय तो वह आपके लड़के के पास रहेगा और बड़ी अच्छी प्रकार औषधि आदि का प्रबन्ध करेगा।' खत्रानी ने उसी बुढ़िया के द्वारा महानंद को ख़बर करा दी। महानंद आकर जब हर प्रकार से उस खत्रानी के पुत्र की औषधि आदि की सेवा करने लगा। तब खत्रानी ने पूर्व पुरोहितादि सब को निकाल बाहर किया। कुछ दिन के बाद खत्रानी का पुत्र अच्छा हो गया तब तो उस के हृदय में यह ख्याल पैदा हुआ कि इसने हमारे पुत्र की बहुत कुछ सेवा की है, अतः इसे कुछ देना चाहिये। यह सोच वह १० हज़ार रुपया महानन्द को देती रही, परन्तु महानन्द ने उसके बहुत

कुछ प्रार्थना करने पर भी न लिया। अब उसके पुत्र के हृदय में यह भाव उत्पन्न हुआ कि यदि महानन्द रुपया नहीं लेता तो इस के उपकार का कुछ प्रत्युपकार करना चाहिये। यह इस उद्योग ही में था कि उस को मालूम हुआ कि महानन्द के हृदय में पञ्च बनने का ख़याल है। बस वह खत्रानी के करोड़पती पुत्र ने अपने मन में यह ठहरा लिया कि मैं उसे पंच बनाऊँगा। खत्रानी का पुत्र राजा की सभा का मेम्बर था। अतएव अब जितने भी मामले इस खत्री के पुत्र के यहां आते, सब में महानन्द को मध्यस्थ किया करता, इस प्रकार महानन्द की तमाम बस्ती में शोहरत हो गई। अब की बार जब राज्य में पंचों का चुनाव हुआ तो महानन्द का नाम आया, परन्तु कुछ लोगों ने महानन्द के पंच बनने में विरोध किया, इस कारण वह पंच न बन सका। तब लोगों ने महानन्दजी से कहा कि 'अब आप पंच बनने का उद्योग छोड़ दें, देखो आया अवाया नाम जब आप नहीं चुने गये तो अब आप पंच नहीं बन सकते।' महानन्द ने कहा-'जहां हमें कोई पूछता ही न था वहां हमारा नाम तो आया और इस साल यदि नाम आया तो आगे पंच भी बन जाऊँगा।' महानन्द उसी भांति अपने काम करता रहा। अगले वर्ष लोगों ने उसको पंच चुन लिया। परन्तु कुछ लोगों ने राजा के पास जाकर शिकायत पर शिकायत की कि 'महाराज, पंच की बड़ी ज़िम्मेदारी है, और लोगों ने एक महानन्द को, जिसके घर बार कुछ नहीं और जो महा कंगाल न कुछ पढ़ा न लिखा, पंच चुना है।' राजा यह सुन कर हैरान हुआ कि जब उसमें कोई बात नहीं फिर लोगों ने उसे पंच क्यों चुना? अतः राजा ने ग्राम के लोगों को बुलाकर पूछा कि 'जब महानन्द में न विद्या है, न धन है, न बल है फिर आप लोगों ने उसे पंच क्यों चुना है?' लोगों ने राजा को उत्तर दिया कि—'विद्या तो हम तब देखते

जब हमें उस से पढ़ना होता और बल हम तब देखते जब हमें उस से युद्ध करना होता और धन हम तब देखते तब हमें उस से क़र्ज़ा लेना होता, हमें तो ऐसा पंच चाहिये जिससे प्रजा का हित हो. अन्याय या जब्र किसी पर न हो, सो ये गुण महानन्द के बराबर ग्राम भर में किसी में नहीं।" राजा साहब को महानन्द के गुण सुन के बड़ा ही प्रेम हुआ। राजा ने महानन्द को बुला बड़ी बड़ी सेवा की और १० मौज़े जागीर काट दिया। पर महानन्द जी जैसे पहले अपनी टूटी फूटी झोपड़ी में रहते थे और ५) रु० माहवारी में आपना निर्वाह करते थे उसी प्रकार करते रहे और जागीरवाले १० गावों में जो मुनाफ़ा होता, उसे यह कह कर कि यह जागीर मुझे प्रजाहित करने से मिली है, अतः यह मेरी नहीं, किन्तु प्रजा-हित की है, प्रजा हित के कामों में लगा देते। महानन्द का ऐसा बर्ताव देख अगले वर्ष में सब लोगों तथा राजा ने महानंद जी को पंच क्या बल्कि सरपंच नियत किया।

पंचभिः सह गन्तव्यं स्थातव्यं पंचभिः सह।
पंचभिः सह वक्तव्यं न विरोधः पंचभिः सह॥

६०–स्वार्थ और परसंताप

एक वैश्य जिनका नाम लाला स्वार्थीमल था, फ़साद नामक ग्राम में रहा करते थे। लाला स्वार्थीमल 'यथा नाम तथा गुणाः' ही थे। इनकी एक कपड़े की दूकान बीच बाजार में थी। इनका सदैव यही ख़्याल रहा करता था कि यदि किसी का भला हो तो मेरा नाम हो और मेरा कपड़ा बिके। इनका काम यह था कि प्रातःकाल से जाकर दूकान पर विराज जाते और हाथ में एक माला ले 'राधेश्याम राधेश्याम' जपा करते

थे। जब देखते कि ग्राहक लोग जा रहे हैं तो बड़े उच्च स्वर से 'राधेश्याम' का महामंत्र उच्चारण करते जिससे साधारण ही ग्राहकों की दृष्टि लाला स्वार्थीमल की ओर जाती थी। जिस समय ग्राहकों की दृष्टि इनकी ओर पड़ती तो ये हाथ उठा अँगुलियों के संकेत से ग्राहकों को बुला लिया करते थे। जब ग्राहक पास आते तो ये पूछा करते कि—'कहां चले?' तो वे उत्तर देते-'कपड़ा लेने।' तब स्वार्थीमल कहते कि—'लीजिये, यह तो आपके घर की दूकान है और बाजारभर में तुम्हें ऐसा सस्ता कपड़ा नहीं मिल सकता।' इस प्रकार ये ग्राहकों को मूड़ते और जो ग्राहक दूसरी दूकानों से कपड़ा लेकर इनकी दूकान के सामने से निकला करते तो भी यह अपने महामंत्र 'राधेश्याम' को उच्च स्वर से उच्चारण करते। जब उनकी दृष्टि इनकी ओर पड़ती तो संकेत से ग्राहकों को बुला पूछते थे-' यह कपड़ा कितने गज़ लाये?' जब ग्राहक उत्तर देते कि इतने गज़। तब लाला स्वार्थीमल बुरा मुह बना बिचकाते थे। तब ग्राहक प्रश्न करते कि—'लालाजी, क्या है?' तो स्वार्थीमल उत्तर देते कि—'भाई, तुम्हारी रुचि कि तुम यह कपड़ा चार आने गज़ ले आये। हमारे यहां से आप यह ≈)॥ में ले जाइये।' कपड़ा चाहे चार ही आने गज़ का हो, पर लाला स्वार्थीमल की यह युक्ति थी कि एक आध बार घाटा खाकर भी ग्राहक अपना बना लिया करते थे। इस प्रकार लाला स्वार्थीमल बड़े धनाढ्य हो गये। पर आप लोगों को याद रहे कि धर्मशास्त्र में लिखा है—

> अन्यायोपार्जितं द्रव्यं दश वर्षाणि तिष्ठति।
> प्राप्तेतु षोडशे वर्षे समूलं च विनश्यति॥

अधर्म से जोड़ा हुआ धन कभी ठहरता नहीं। पापों की पूंजी कभी किसी को नहीं पचती है। अतः लाला स्वार्थीमल

के यहां कुछ तो चोरी हुई, कुछ राजाने डांड़ लिया, कुछ पुलिस ने हाथ साफ़ किये, रहा रहाया अग्नि ने स्वाहा कर दिया। अन्त में यह दशा हुई कि लाला स्वार्थीमल दो दो पैसे की मज़दूरी करने लगे। परन्तु लाला स्वार्थीमलजी "राधाकृष्ण के उपासक तो थे ही, एक बार राधाकृष्णजी प्रसन्न हो कर बोले कि—'लाला स्वार्थीमल, मांगो तुम, जो कुछ तुम्हारी इच्छा हो।' लाला स्वार्थीमल मांगने वाले तो यह थे कि—"महाराज, हम पड़ोसियों से सदैव दूने रहें।" पर माँग बैठे यह कि-"हम से पड़ोसी सदैव दूने रहें।" राधाकृष्ण ने स्वार्थीमलजी को एक घन्टा दे कर कहा कि—"जब तुम्हें जिस चीज़ की आवश्यकता पड़े यह घन्टा आपको संपूर्ण पदार्थ देगा और जितनी चीज़ तुम्हें देगा उससे दूनी पड़ोसियों को।" जब लाला स्वार्थीमल घन्टा ले रास्ते में आये तो ख्याल हुआ—"हाय! हम राधेश्याम से क्या माँग आये कि पड़ोसी हमसे सदैव दूने रहें. खैर जो कुछ हुआ। लेकिन जब हम घन्टा ही न बजायेंगे तो पड़ोसी कैसे दूने होंगे। चाहे हम जो दो दो पैसे की मज़दूरी करते थे वही करते रहें, पर पड़ोसी कैसे दूने हो जांय?" यह विचार घन्टा बांध के कोठरी में बन्द कर दिया और अपनी स्त्री से कहा कि—"देख, हम तो परदेश नौकरी के लिये जाते हैं पर तू कभी इस घंटे को न खोलना। जब लाला स्वार्थीमल परदेश चले गये और लालाजी के यहां एक दिन खाने को कुछ न रहा, स्त्री को इस भांति दो व्रत हुये तो उसने सोचा कि और तो मेरे यहां कुछ है ही नहीं हो न हो आज जो यह घंटा पड़ा हुआ है इसे ही बेंच लावें तो दो चार आने पैसे मिल जायेंगे जिससे एक आध दिन का निर्वाह होगा, फिर देखा जायगा। इस ख्याल को लेकर स्त्री ने घंटा खोला तो घंटा बज गया, बस घंटे के बजते ही चार

आने इसे मिल गये और आठ २ आना पड़ोसियों को मिले। इस प्रकार जब स्त्री को दो चार दिन पैसे मिलते रहे तो उस ने समझ लिया कि यह घंटे ही में गुण है, अतः स्त्री पाँचवें दिन घंटा ले बैठी और बोली कि 'घंटेश्वर आज हम को दस ग्राम मिल जांय।" दस इसे मिले। इसने कहा-"या घंटेश्वर, हमारा तिखण्डा मकान बन जाय।" इसका तिखण्डा और पड़ोसियों के सतखण्डे बन गये। इसने कहा-"या घन्टेश्वर हमारे यहां इतनी फौज हो जाय।" जितनी इसके यहां हुई उस से दूनी पड़ोसियों के यहां होगई। इसने कहा-"या घन्टेश्वर हमारे दर्वाज़े इतने इतने घोड़े हाथी हो जायें।" जितने इसके यहां हुये उसके दूने पड़ोसियों के यहां हुये। अब स्त्री ने सोचा कि जब घर में इतना ऐश्वर्य्य है तो मेरा पति क्यों दो दो पैसे की मज़दूरी करे। अतः पति को पत्र लिखा कि-'स्वामिन आप के घर में सब कुछ मौजूद है आप नौकरी छोड़ कर चले आइये। लाला स्वार्थीमल को पत्री पहुंचते ही यह ख्याल हुआ कि जान पड़ता है कि इसने घन्टा बजा दिया। नहीं तो इतना ऐश्वर्य्य इतने दिन में कहां से आ गया? क्योंकि अपने घर की दशा लाला साहब भली भांति जानते थे परन्तु सोचा कि चलकर देखें क्या है। जब घर आये तो देखा कि हमारा तिखण्डा मकान बना है और पड़ोसियों का सतखण्डा, यह देख पत्थर में अपना सिर दे मारा और कहा-"हा! हमारे देखते २ पड़ोसी दूने।" इस भांति अपने दस ग्राम और पड़ोसियों के बीस बीस देख कर फिर सिर पटकने लगे। इसी भांति हाथी घोड़ा फौज़ आदि पदार्थ पड़ोसियों के दूने देख स्वार्थीमल सिर पीटते रहे और स्त्री का बड़ा फज़ीता किया, कि "तूने घंटा क्यों बजाया?" अन्त में अब लाला स्वार्थीमल इस विचार में पड़े कि इन पड़ोसियों का सत्यानाश किस प्रकार हो।

सोचते सोचते कुछ लाला स्वार्थीमल की समझ में आ गया और लाला स्वार्थीमल घंटा लेकर बैठे और बोले कि—'या घंटेश्वर, हमारी एक आँख फूट जाय।' एक इनकी फूटी, पड़ोसियों की दोनों गईं। इन्होंने कहा—'या घंटेश्वर, हमारा एक कान बहरा हो जाय।' इनका एक कान बहरा हुआ, पड़ोसियों के दोनों। इन्होंने कहा—'या घंटेश्वर, हमारी एक टाँग टूट जाय।' एक टूटी इनकी, दोनों गईं पड़ोसियों की। इन्होंने कहा—'या घंटेश्वर, एक कुआं तो हमारे दरवाज़े खुद जाय।' एक खुदा इनके दरवाज़े, दो दो पड़ोसियों के दरवाज़े खुद गये। अब ज्योंही प्रातःकाल हुआ तो लाला स्वार्थीमल एक काठ की टांग तथा पत्थर की आंख लगवा कर चले कि पड़ोसियों की दशा तो देख आवें, कैसे साले आनन्द कर रहे थे। पड़ोसी बिचारे अन्धे, बहरे, लंगड़े घसिटते हुए जो दरवाज़े से पाख़ाने आदि को निकलते तो कुओं में जा ढुम्म ढुम्म गिरते थे। यह देख स्वार्थीमल की छाती ठंढी हुई। सच है, किसी जगह का वृत्तान्त है कि—

कस्त्वं भद्र' खले स्वरोऽस्मि कि घोरे वने स्थीयते।
शार्दूलादिभिरेव हिंस्रपशुभिः खाद्योऽहमित्याशया॥
कस्मात् कष्टमिदं त्वया व्यवसितं मद्देह मांसाशिनः।
इत्युत्पन्न विकल्प जल्प मुखरैः तेघ्नन्त सर्वान् इति॥

६१—ख़ुदग़र्ज़ी से सर्वनाश

आप लोग भली भांति जानते हैं कि परमेश्वर ने सारे ब्रह्मांड का नक़शा यह शरीर बना रक्खा है। अगर हम शरीर में एक अंग भी ख़ुदग़र्ज़ी करे तो शरीर भर का नाश हो जाय।

कल्पना कीजिये कि किसी हलवाई की दूकान पर बहुत ही उत्तम लड्डू बने रक्खे हैं और आंखों ने देखा कि वह लड्डू बने रक्खे हैं। अब अगर आंखें कहें कि—'हूं, लड्डू तो हमने देखा है, काहे को किसी को बतायें', तो आंखें चल सकती नहीं, लड्डू कैसे पायें। दूसरे यदि पैर सहायता भी दे दें तो आंखें लड्डुओं को खा नहीं सकतीं न उठा सकतीं और अगर आंखें उठायें भी तो आँखें फूट जांय, अतः आंखों ने ऐसा जान पैरों को ख़बर दी। पैर लड्डुओं की ख़बर पा किं दूरं पञ्च योजनम् के अनुसार फौरन ही पहुँच गये। पर अब अगर पैर कहें कि—'हूं, लड्डुओं की ख़बर तो हमने पाई, हम काहे को किसी को बतायें।' तो पैर उठा कर यदि हलवाई की दुकान से लड्डू उठाया जाय तो सिर के बल तड़ से पृथ्वी में गिर पड़ें। दूसरे, पैर से चाहे आप लड्डू को मसल डालें पर पैर लड्डू खा नहीं सकते, अतः पैरों ने हाथों को सूचना दी। हाथों ने लड्डुओं की ख़बर पा चट ही गप्पा जमाया। अब अगर हाथ कहें कि—'हूं, हमने लड्डू पाया, हम काहे को किसी को दें।' तो जब तक जिस हाथ में लड्डू रहेगा, हाथ कुछ कर नहीं सकता। दूसरे, हाथ लड्डू को तोड़ फोड़ चाहें फेंक भले ही दें पर खा नहीं सकता, अतः हाथों ने ऐसा जान मुंह को ख़बर दी। मुंह ने लड्डुओं की सूचना पा चट ही नीचे को चल कर गपक लिया। अब अगर मुंह कहे कि—'हूं, हमने लड्डू पाया, हम काहे को किसी को दें।' तो बोलती मारी जावे। अब यदि कोई पूछे कि आपका नाम क्या है, तो मुंह सिवा गल-गलाने के शब्द नहीं निकाल सकता। दूसरे मुंह सिवा दांतों से लड्डू को चूर कर देने के खा नहीं सकता, अतः ऐसा सोच मुँह ने लड्डू पेट को दिया। परन्तु यदि पेट कहे कि—'हूं, हमने लड्डू पाया हम काहे को किसी को दें।' तो पेट फूले

और मनुष्य दें होजाय। नतीजा यह निकला कि यदि आंखें खुदग़र्ज़ी करतीं तो आंखें फूट जातीं, पैर खुदग़र्ज़ी करते तो पैर टूट जाते, हाथ खुदग़र्ज़ी करते तो मुंह मारा जाता, पेट खुदग़र्ज़ी करता तो मनुष्य ही नाश हो जाता। परन्तु किसी अङ्ग ने खुदग़र्ज़ी न कर पेट को लड्डू दिया। पेट ने—

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते।
मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्जाच्छुक्रस्य संभवः॥

इस प्रकार लड्डू को गला मल मूत्र का हिस्सा अलग कर रस, रस से रक्त रक्त से मांस, मांस से मज्जा, मज्जा से हड्डी, हड्डी से सार, सार से वीर्य बना सोचा कि सब से पहले काम किसने किया था? पता लगा आंखों ने। इस लिये सब से उत्तम हिस्सा वीर्य आँखों को दिया। इसी भांति सब को बांट दिया।

इसी भांति संसार में यदि कोई क़ौम खुदग़र्ज़ी करे तो संसार का नाश होजाय और इससे यह भी निकला कि परमेश्वर ने क़ुदरत में सब को एक दूसरे के परोपकार ही के लिए बनाया है। जहां परोपकार नहीं और खुदग़र्ज़ी है, वहां नाश है। स्वार्थी स्वतन्त्रिक कामों को बिगाड़ देते हैं, यथा—

तृणं चाहं वरं मन्ये नरादनुपकारिणः।
घासो भूत्वा पशून्पाति भीरून्पाति रणांगणे॥

दीमक अपने आपके लिए अपने काम में चतुर होता है, परन्तु फलोत्पादक वा सामान्य वाटिका को वह हानि ही पहुंचाता है।

६२--अपनी अपनी उड़ाना

एक चिड़िया एक वृक्ष पर कुछ बोल रही थी और वृक्ष के समीप एक मेला लगा हुआ था जिस में सभी क़ौम के लोग

उपस्थित थे। लोगों ने पूछा—"भाई बोलो, यह चिड़िया क्या कह रही है?' उसमें प्रथम मुसलमान लोग बोले कि-'चिड़िया बोल रही है कि—'सुभान तेरी कुदरत।' और हिन्दुओं ने कहा कि—'यह नहीं, बल्कि चिड़िया बोलती है कि—'राम लक्ष्मण दशरथ।' और बनियों ने कहा—'वाह जनाब, यह क्या कहते हो, चिड़िया बोल रही है—'हल्दी मिरचा ढक रख।' यह सुन कसरती लोग बोले कि—'वाह, यह आपने खूब ही कही, चिड़िया यह नहीं बोलती, बल्कि चिड़िया बोलती है कि-'दण्ड मुग्दर कसरत।' इसके बाद तंबोलियों ने कहा कि-'चिड़िया यह नहीं बोलती, बल्कि चिड़िया बोल रही है कि-'पान पत्ता अदरख।' पुनः सूत कातने वाली बुढ़ियों ने कहा कि—'चिड़िया बोलती है- चरखा पोनी चमरख।' पुनः माली बोले कि— चिड़िया यह नहीं बोलती, बल्कि बोलती है—'नींबू नारंगी कमरख।'

मारग सोइ जा कहँ जो भावा। पण्डित सोइ जो गाल बजावा॥

९३--अंधर सोटा

एक बार एक पुरुष ने बहुत से स्थानों के अन्धों का निमंत्रण किया और घर में केवल एक आदमी के लायक़ भोजन बनवाया। सहस्रों अन्धे एकत्र हुए परन्तु उसने सम्पूर्ण अन्धों को पैर धुला २ बिठला दिया और जब परोसने खड़ा हुआ तो उस ने अन्धों से कहा-'क्यों भाइयों, हम बार २ क्यों हैरान हों कि एक बार पूड़ी परसें, दूसरी दफ़े शाक लावें. तीसरी दफ़े दही लावें, इस प्रकार बहुत देर होगी इस से तो अगर आप लोगों की सम्मति हो तो एक ही बार में सब परोसते जांय।' अन्धों ने कहा—'बड़ी अच्छी बात है।' उसने घर में जो सब सामान

एक आदमी के लिये बना था, एक अन्धे के आगे पूड़ियां शाक दही आदि सब परोस दिया। अन्धे ने टटोल लिया और संतोष कर बैठ गया कि सामान आगया। उस परोसने वाले पुरुष ने जब अन्धा अपने हाथ उठा कर बैठ गया तो उस के सामने से वह सम्पूर्ण सामान उठा उठा दूसरे के आगे परसा। उसने भी टटोला और यह जाना कि मेरे आगे भी सब सामान आ गया और वह भी संतोष कर हाथ ऊपर को उठा बैठ गया। उस परोसने वाले पुरुष ने फिर वह सामान दूसरे अन्धे के सामने से उठा तीसरे के आगे परोसा। इस प्रकार सब को परोस गया और सबों ने यह निश्चय कर लिया कि हमारे आगे भोजन आ गया। अब परोसनेवाले पुरुष ने कहा— अब आप लोग भोजन कीजिये।' अन्धों ने जब अपने अपने आगे भोजन न देखा तो आपस में ही एक दूसरे पर दोषारोपण करने लगे। एक दूसरे को कहता था कि तूने मेरा भोजन क्यों उठा लिया? इस प्रकार खूब ही परस्पर में सोंटा चला। परन्तु यह झगड़ा जब पञ्चों में पहुंचा तो अन्धों ने कहा—'परोसने-वाले ने परोसा है इसका कुछ अपराध नहीं।'

इसका दार्ष्टान्त यह है कि इसी प्रकार अक़ल के अन्धों को झूंठे भोजन रूप अधिकार और लालच दे दे लोग लड़ाया करते हैं पर अन्धों को नहीं सूझता।

अविद्यायामंतरे वर्त्तमानः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः।
जघन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः॥

६५--वर्तमान समय का पांडित्य

एक बार दो पण्डित १८ वर्ष काशीजी में पढ़ कर अपने घर जा रहे थे। जब वे बहुत दूर निकल आये तो एक स्थान

में मार्ग भूल गये। अब तो इन्हें बड़ा ही विस्मय हुआ। चारों ओर देखने लगे कि कोई मनुष्य हो तो मार्ग पूछें, पर कोई मनुष्य दृष्टि न आया तो इन्होंने सोचा कि देखें ऐसे अवसर के लिए हमारे शास्त्रों में क्या लिखा है। इन्हें याद आया कि—'महाजनों येन गतस्स पन्थाः' जिससे महाजन लोग जायें वही पन्थ है। इतने में चार मनुष्य एक मुर्दा लिये हुए निकले। इन्होंने उनसे पूछा—"भाई, आप कौन लोग हैं?' उन्हों ने कहा—'महाजन।' बस पण्डित लोग उन्हीं के पीछे पीछे हो लिये और जाकर श्मशान भूमि में जहाँ वे मुर्दा ले गये थे पहुंचे। वहां पहुंच कर सोचने लगे कि अब हम लोगों का क्या कर्त्तव्य है? देखें ऐसे अवसर के लिए हमारे शास्त्रों में क्या लिखा है? उन्हें याद आया कि—'राजद्वारे श्मशाने च यो तिष्ठति स बान्धवः' राजा के दरवाज़े और श्मशान भूमि में जो स्थित हो वह भाई है। इधर उधर देखा तो वहां एक गदहा चर रहा था, उसे दोनों पण्डितों ने पकड़ा और कहा कि यह अपना भाई है। फिर सोचने लगे कि अब देखें शास्त्रों में क्या लेख है और हमारा क्या कर्त्तव्य है तो याद आया कि-'इष्टं धर्मेण योजयेत्' भाई को धर्म में लगा देना चाहिये। फिर सोचने लगे कि धर्म क्या है? तो उन्हें ख़याल आया कि—'धर्मस्य त्वरिता गतिः' धर्म की ऊंट की सी चाल होती है। दैवयोग से एक ऊँट भी वहीं चुग रहा था। बस, इन दोनों ने ऊंट के गले में गधे को बांध दिया। अब इधर तो गधा पैर फड़फड़ा रहा था और 'हैंकौं हैंकौं' कर रहा था, उधर ऊंट अपनी गर्दन हिला हिला कर बलबला रहा था और ये दोनों पण्डित यह अपूर्व दृश्य अलग खड़े देख रहे थे। अन्य लोगों ने इन दोनों से पूछा—"यह क्या आपने किया है?' ये बोले- भाई को धरम में लगाया है, अब आप हमारा पाण्डित्य देखिये।'

जिह्वायाश्छेदनं नास्ति न तालु पतनाद्भयम् ।
निर्विशंकेन वक्तव्यं यावान्नः को न पण्डितः ॥

६५—वर्त्तमान समय के श्रोता

एक जगह एक पण्डित कथा वाँच रहे थे, बहुत से श्रोता सुन रहे थे, परन्तु उन्हीं श्रोताओं में एक लालाजी भी थे जो क़ौम के कायस्थ थे। पण्डितजी ने कहा कि 'मुखादग्निरजायत' ब्रह्म के मुख से आग उत्पन्न होती है। पर लालाजी ने समझा कि ब्राह्मण के मुख से आग उत्पन्न होती है। अब कुछ दिन बाद लालाजी अपने घर से एक दूसरे ग्राम को चले। लाला जी हुक्का बहुत पिया करते थे अतः इन्हों ने तमाखू और चिलम तो ले ली, पर दियासलाई की डब्बी इस लिये नहीं ली कि इन्हों ने सुन रक्खा था कि ब्राह्मण के मुख से आग उत्पन्न होती है। इन्होंने सोचा कि दियासलाई लेकर क्या करें, जहां ब्राह्मण मिल जायगा वहां पीलेंगे। लाला जी चलते चलते दोपहर को एक कुएं के पास पहुंचे। वहां एक और पुरुष को देख पूछा कि—'आप कौन हैं?' उसने कहा—'ब्राह्मण।' बस, लालाजी ने निश्चय कर लिया कि अब आग मिल जायगी, हुक्के पानी को आराम है, ऐसा सोच उतर पड़े। इन लाला जी से पण्डित जी ने भी पूछा कि—आप कौन लोग हैं?' इन्हों ने कहा—मैं महाराज कायस्थ हूं। बस इतनी पूंछ पांछ होने पर ब्राह्मण जी तो सो गये क्योंकि ये भोजन भाजन कर चुके थे और लालाजी स्नान भोजन करने लगे। जब भोजन कर चुके तो लालाजी को हुक्के की आवश्यकता हुई। अतः इन्हों ने चिलम में तमाखू रख, एक कंडा ले ब्राह्मण के पास जा उसके मुख में लगा दिया। बड़ी देर तक लगाये रहे, पर आग न निकली। तब सोचा कि हम

मुंह के बाहर लगाये हैं, इस लिये आग नहीं निकलती, ऐसा विचार कंडा ब्राह्मण के मुंह में घुसेड़ दिया। ब्राह्मण भरभरा उठ बैठा और लाला जी से पूछा—'यह क्या करते हो?' लाला जी ने कहा—'महाराज, हमने कथा में सुना है कि ब्राह्मण के मुंह से आग पैदा होती है, सो आप के मुंह से ले रहे थे, क्योंकि ज़रा हुक्का पीने वाले थे।' ब्राह्मण भी दूसरा परशुराम था। उसने लट्ठ उठा लाला जी की खोपड़ी में दिया। लाला जी बोले—'हैं हैं यह क्या करते हो?' ब्राह्मण ने कहा—'तुम कायथ हो, इस लिये चटनी को कैथा तोड़ते हैं।' धन्य रे श्रोताओ! बुद्धि की बलिहारी है।

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम्।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति॥

६६—बे अवसर की बात

एक बार एक पुरुष कुछ बीमार था। उसने एक वैद्य के पास आकर अपना इलाज पूछा। वैद्यराज ने कहा कि—'तुम प्रथम जुलाब लो' तब हम तुम्हारी दवा करेंगे।' जुलाब की दवा देकर वैद्यराज ने कहा कि—'खाने को खिचड़ी खाना।' यह मनुष्य बेचारा साधारण ही पढ़ा लिखा था, इसने कहा—'वैद्यराज, आपने खाने को क्या बतलाया?' वैद्यराज ने कहा—'खिचड़ी' यह जान वह बीमार पुरुष वैद्यराज को प्रणाम कर अपने घर को चल दिया, लेकिन थोड़ी दूर चल कर खिचड़ी भूल गया, फिर लौट कर वैद्यराज से पूछा—'वैद्यराज आपने खाने को हमें क्या बताया था?' वैद्यराज ने कहा—'खिचड़ी।' अब यह पुरुष 'खिचड़ी' शब्द को रटता हुआ घर को चल दिया और शीघ्र शीघ्र 'खिचड़ी खिचड़ी' कहते जा रहा था। परन्तु

शीघ्र शीघ्र खिचड़ी खिचड़ी कहने में वह पुरुष खिचड़ी के स्थान में 'खाचिड़ी' रटने लगा। यह 'खाचिड़ी खाचिड़ी' रटता हुआ जा रहा था कि मार्ग में एक काश्तकार ने जो अपने खेत से चिड़ियां उड़ा रहा था इसके मुख से 'खा चिड़ी खा चिड़ी' शब्द सुन इसे खूबही पीटा और कहा कि—'मैं तो चिड़ियां उड़ा रहा हूं और तू कहता है 'खा चिड़ी खा चिड़ी' ?' इसने कहा—'तो फिर हम क्या कहें?' काश्तकार ने कहा—'कहो उड़ चिड़ी उड़ चिड़ी।' अब यह पुरुष 'उड़ चिड़ी उड़ चिड़ी' रटता हुआ आगे को चला। कुछ दूर पर एक बहेलिया चिड़िया पकड़ रहा था। यह पुरुष उधर ही से 'उड़ चिड़ी उड़ चिड़ी' कहते हुए जा निकला। बहेलिये ने क्रोध में आ कर कहा—देखो तो इस बदमाश को, हम तो पकड़ रहे हैं और मुश्किल से एक एक चिड़िया पकड़े मिलती है, पर यह कहता है कि उड़ चिड़ी उड़।' उसने भी इसे खूब ही पीटा। इसने,रोते रोते बहेलिये से पूछा कि—भाई, फिर क्या कहें?' बहेलिये ने बतलाया कि कहो—'आवत जाव फँसि फँसि जाव, आवत जाव फँसि फंसि जाव।' अब यही रटते हुए यह पुरुष आगे चला कि एक स्थान में चोर चोरी कर रहे थे कि इतने में यह जा निकला और यह रटता था कि-'आवत जाव फँसि फँसि जाव, आवति जाव फंसि फंसि जाव।' चोरों ने कहा यह बड़ा ही पाजी है, देखो हम लोगों ने तो बड़ी कठिनता से सेंध लगा पाई है और यह कहता है कि-'आवत जाव फंसि फंसि जाव, आवत जाव फंसि फंसि जाव।' इन्होंने इसे बहुत पीटा, यह विचारा फिर रोने लगा और चोरों से पूछा-'अच्छा, हम अब क्या कहें?' चोरों ने कहा-'कहो लै लै जाव धरि धरि जाव, लै लै जाव धरि धरि आव।' अब इसे ही रटता हुआ यह पुरुष आगे चला तो चार मनुष्य एक मुर्दा लिये

हुए जा रहे थे। यह अपनी ध्वनि में रट रहा था कि-'लै लै जाव धरि धरि आव, लै लै जाव धरि धरि आव।' यह शब्द सुनते ही उन चारों पुरुषों ने मुर्दे को रख के इसे खूब ही दुरुस्त किया और कहा-'अबे उल्लू, हमारा तो नाश हो गया और तू कहता है कि— लै लै जाव धरि धरि आव, लै लै जाव धरि धरि आव।' इस पुरुष ने रोते हुए उन चारों से पूछा—'तो महाराज, फिर हम क्या कहें?' उन्होंने कहा कि-तुम कहो—'राम करै ऐसा दिन कबहू न होय, राम करै ऐसा दिन कबहू न होय।' अब यही रटते हुए यह एक राजा के ग्राम से जा निकला। वहां तमाम उमर में राजा साहब के पहले ही लड़का हुआ था जिसकी प्रसन्नता में कहीं बाजे गाजे बज रहे थे कहीं बन्दूकें तोपें छुट रही थीं, कहीं यज्ञ होम हो रहे थे, ऐसे समय में वह पुरुष यह कहते हुए कि 'राम करै ऐसा दिन कबहू न होय, राम करै ऐसा दिन कबहू न होय।' निकला और ये शब्द राजा के कान तक पहुंच गये। राजा साहब ने इसकी हड्डी हड्डी ढीली करवा दी और कहा- क्यों रे मक्कार, तमाम उमर में हमारे लड़का हुआ तमाम गाँव प्रसन्नता मनावे और तू कहता है कि-'राम करै ऐसा दिन कबहू न होय?' इस पुरुष ने रोते हुए फिर राजा से पूछा-'अच्छा महाराज, तो हम क्या कहें?' राजा साहब ने बतलाया कि-'राम करै ऐसा दिन नित उठि होय, राम करै ऐसा दिन नित उठि होय?' अब इसी को रटते हुए यह पुरुष चला कि एक गाँव में आग लगी हुई थी, गाँववाले सभी विचारे आपत्ति में थे और यह पुरुष यह कहते हुये कि—'राम करै ऐसा दिन नित उठि होय, राम करै ऐसा दिन नित उठि होय' जा निकला। लोगों ने इसे खूब मारा। गरज़ इस प्रकार जहां यह गया, वहां इसकी दुर्दशा हुई। किसी कवि ने सत्य कहा है—

अप्राप्त काले वचनं बृहस्पति रपि ब्रुवन्।
लभते बहु यज्ञानं म्रियमानं च पुष्कलम्॥
अनवसरं च यदुक्तं तस्य भवति हास्य य।
रहसि प्रौढ़ वधूनां रति समये वेदपाठ इव॥

६७–शठ बिना शठता के नहीं मानता

एक बाबा जी के पास कुछ सुवर्ण की अशरफ़ियाँ एक लोहे के सोंटे में बन्द थीं। बाबाजी ने कहीं तीर्थयात्रा करने का विचार किया, इस कारण बाबाजी एक सेठजी के पास जाकर बोले कि—'सेठजी, ज़रा हमारा सोंटा जबतक हम तीर्थयात्रा करके न लौटें रक्खे रहिये।' सेठजी बोले—'महाराज, यहां सोंटा ओंटा रखने की जगह नहीं।' परन्तु जब बाबाजी ने बहुत कुछ कहा तो सेठ जी ने कहा—'अच्छा महाराज, जाओ उस कोने में रख दो, जब आना तब उठा लेना।' साधूजी सोंटा रख के चले गये। परन्तु यहां सेठानी और सेठ, रोज़ उस सोंटे को उठा उठा देखते रहे और आपस में कहते थे कि सोंटा भारी बहुत है, जाने क्या बात है।' सोंटे के ऊपर एक फुली जड़ी हुई थी। सेठानी ने कहा—'मालूम देता है कि इस सोंटे के भीतर कुछ भरा है, हो न हो यह फुली उखाड़ कर देखना चाहिये कि इसके भीतर क्या है?' सेठ ने ऐसा ही किया। जब फुली उखाड़ी तो उससे पीली पीली अशरफ़ियां गिर पड़ीं। सेठ ने अशरफ़ियां घर में रख सोंटा फेंक दिया। जब कुछ काल के पश्चात् साधूजी लौटे और सेठ जी के पास जा सोंटा मांगा तो पहले तो सेठजी ने साधूजी को पहिचाना ही नहीं, जब पहिचाना तो बोले कि—'आपका सोंटा तो छछुन्दरा खा गई।' साधूजी चुप रह गये

और सेठजी के पास से चले गये। थोड़े दिन बाद साधूजी आकर उसी गांव में अध्यापकी का काम करने लगे। बहुत से गांव के लड़के साधूजी के पास आने लगे और उन सेठजी का लड़का भी आने लगा जिन्हों ने सोंटा छछुन्दरी को खिला दिया था। कुछ दिन के बाद साधूजी ने उस सेठ के लड़के से कहा कि—'देख, आज जब तुझे छुट्टी दूं तो अमुक स्थान से लौट आना, अगर न लौटा और तू घर चला गया तो समझ लेना कि तेरी खाल खींच दूंगा।' सेठ का लड़का बेचारा भय से लौट आया। साधूजी ने उस लड़के को एक कोठरी के अन्दर बन्द कर दिया और उस में कुछ खाने को रख दिया एवं लड़के से कहा कि—'अगर तू बोला तो, समझ लेना कि तू था ही नहीं।' थोड़ी देर में, जब समय अधिक व्यतीत हुआ और लड़का घर न आया तो सेठजी ने अपने लड़के की तलाश की। जब लड़का न मिला तो सेठ ने आकर साधूजी से पूछा। साधूजी बोले—'भाई, सब लड़कों से पूछ लो, हमने तो उसे छुट्टी दे दी, पर हम नहीं जानते कि आपका लड़का कहां गया?' जब सेठजी ने लड़कों से पूछा तो लड़कों ने कहा कि—'हमारे साथ फलाँ स्थान तक गया, फिर हम नहीं जानते कि कहाँ गया?' सेठजी फिर इधर उधर घूम कर साधूजी के पास आये और बोले कि—साधूजी लड़का नहीं मिलता, न जाने कहाँ गया?' साधूजी ने कहा—'यहां से तो हमने लड़के को छुट्टी दे दी थी परन्तु हां एक लड़के को एक गिद्ध उसकी चोटी पकड़े हुये ऊपर को लिये जा रहा था।' सेठजी ने पुलिस में रिपोर्ट की। थानेदार ने आकर पूछा कि—'साधूजी' सेठ का लड़का कहां गया?' साधूजी ने कहा—'हमने तो यहां से छुट्टी दे दी है, आप सब लड़कों से पूछ लें।' जब थानेदार ने लड़कों से पूछा तो लड़कों ने साफ़ कह दिया कि—"हजूर हमारे साथ वह

पलां स्थान तक गया है, फिर हम नहीं जानते।' पुनः साधू जी बोले कि—'थानेदार साहब, हां एक बात हमने देखी थी कि एक गिद्ध एक लड़के की चोटी पकड़े ऊपर को लिये जाता था।' थानेदार ने कहा—'कहीं गिद्ध लड़के की चोटी पकड़ के उड़ा ले जा सकता है!' तब तो साधूजी ने कहा—

शठस्य शाठ्यं शठ एव वेत्ति नैव। शठो वेत्ति शठस्य शाठ्याम्।
छुछुन्दरी खादति लोहदण्डं कथन्न गृद्धेन हतः कुमारः॥

महाराज! 'शठं प्रति शठे कुर्यात् सादरम् प्रति आदरम्' इस कहावत के अनुसार जब तक शठ के साथ शठता न की जाय तब तक शठ नहीं मानता। महाराज, हम तीर्थ-यात्रा जाते समय इनके पास एक सोंटा रख गये थे जिसमें इतनी अशरफ़ियां थीं, जब हमने आकर इनसे सोंटा मांगा तो सेठ जी बोले कि 'लोहे का डण्डा तो छछुन्दरी खा गई' सो हुजूर अगर छछुन्दरी लोहे का डण्डा उगिल दे तो गिद्ध भी सेठ का लड़का डाल देवे। यह सुन सेठ ने सम्पूर्ण अशरफ़ियां भरे डण्डे के साधूजी के भेंट कीं और साधूजी ने सेठ का लड़का कोठरी से निकाल दिया। सच है, किसी कवि ने कहा है—

यस्मिन यथा वर्त्तते यो मनुष्यास्तस्मिन् तथा वर्तितव्यं स धर्मः।
मायाचारो माययावर्तितव्यः साध्वाचारः साधुना भ्युपेयः॥

६८—श्राद्ध करना तो सहज है पर सीधा देना कठिन है

एक अहीर ने एक बार श्राद्ध करनी चाही, अतः सब सामान तैयार कर एक पण्डित को बुलाया। पण्डित जी ने

कहा कि—'चौधरी साहब, जैसा हम तुमसे कहें वैसा करते जाना।' चौधरी साहब ने कहा—'बहुत अच्छा' पण्डित जी ने कहा—'लेव चिरुआ में जल।' चौधरी साहब ने लेकर कहा—'लेव चिरुआ में जल।' पण्डित जी बोले—हम तुम से कहते हैं।' चौधरी साहब ने कहा—'हम तुमसे कहते हैं।' पण्डित जी ने कहा—'अबे सुनता नहीं।' चौधरी साहब ने कहा—अबे सुनता नहीं।' पण्डितजी ने गुस्सा में आ एक थप्पड़ चौधरी साहब के मार दिया और कहा कि—'चिरुआ में जल लेकर आचमन कर।' चौधरी साहब ने पण्डितजी को उठाकर दे मारा और एक थप्पड़ लगा कर कहा—'चिरुआ में जल लेकर आचमन कर।' अब तो पण्डित जी को और क्रोध आ गया और वे—

> लात घूंसा कमर मध्ये चटकनं मुख भञ्जनम्।
> चरणादौ सीस मध्ये धार वार धड़ाधड़म्॥

यह श्लोक पढ़ अहीर को पीटने लगे। अहीर ने मारते मारते पण्डित की हड्डियां ढीली कर दीं। इस प्रकार दो घंटे श्राद्ध हुआ। पश्चात् पण्डित जी कांखते कूंखते अपने घर पहुंचे। पण्डितानी जी रास्ता देख रही थीं कि पण्डितजी श्राद्ध कराने गये हैं कुछ लिये आते होंगे। पण्डित जी की यह दशा देख पण्डितानी ने हाल पूछा। पण्डित जी ने सब हाल बताया। यहां चौधरीजी अपने घर आये तो चौधराइन ने पूछा कि—'श्राद्ध हो गया?' चौधरी ने कहा—हां हो गया।' चौधराइन ने कहा कि—'पण्डित जी को सीधा नहीं दिया?' चौधरी बोले—'क्या बतावें श्राद्ध तो दो घंटे तक होता रहा, पर सीधा देने का ख्याल नहीं रहा अच्छा, अब तुम जाकर पण्डित को सीधा दे आओ।' चौधराइन आटा दाल घी लेकर ज्योंही पंडित के मकान पर पहुंची तो वहां पंडित और पंडिताइन दोनों क्रोध में जल रहे थे, अतः दोनों ने मिलकर चौध-

राइन को खूब पीटा, पर चौधराइन जु इस लिये न बोलीं कि जाने सीधा शायद इसी प्रकार दिया जाता हो। जब चौधराइन पिट पिटा के घर आई तो चौधरी से बोलीं कि-चौधरी! श्राद्ध करना तो सहज है, पर सीधा देना बड़ा कठिन है, अगर तुम सीधा देने जाते तो मालूम होता।'

६९-मार दो़रि श्राद्ध करना

एक पण्डित केवल श्राद्ध ही पढे हुए थे और जहां कहीं ब्याह, जनेऊ, मुण्डन, कर्णछेद या भागवत आदि बांचने जाते वहां बेचारे और तो कुछ जानते ही न थे वहीं अपनी श्राद्ध की पोथी खोल कर बैठ जाते। एक जगह सत्यनारायण की कथा लगी। वहां से बुलावा आया तो पण्डित जी अपनी श्राद्ध की पोथी ले जा विराजे। वहां जब सत्यनारायण की कथा के स्थान में श्राद्ध का पाठ करने लगे तो एक जगह निकला कि 'अपसव्यं'. लोगों ने कहा—'महाराज यह सत्यनारायण की कथा में 'अपसव्यं' कैसा?' तो पण्डित जी ने कहा कि-'यह अध्याय की समाप्त है, बोलो राधाकृष्ण की जै। इति प्रथमोऽध्यायः।'

७०-अन्ध-परम्परा

एक बार एक सेठजी के घर में ब्याह होकर बरतौनी यानी मड़वा हो रहा था। लड़का लड़की गाँठ जोरे तथा सब लोग सेठजी के आँगन में बैठे हुए थे कि इतने में सेठजी के घर में एक बिल्ली मर गई। अब सेठजी ने सोचा कि ऐसे समय में मरी बिल्ली सभी ख्या कर बाहर भेजना अनुचित है, इससे सेठानी जी ने उस मरी बिल्ली को एक झौवे के नीचे मूंद दिया। यह सम्पूर्ण चरित्र सेठजी की लड़की अपने आँगन में

बैठी बैठी देखती रही। जब वह लड़की अपने सासुरे पहुंची और बहुत दिन के पश्चात् उसके सासुर में जब उसकी ननंद का व्याह हुआ और जब बरतावन होने लगी और सब लोग आंगन में आये तो उसने अपनी सास से कहा—'अम्मा, एक बिल्ली तो लाओ!' पूछा—'क्यों?' कहा—'हमारे यहां मार के झौवे के नीचे इस मौके पर मूंदी जाती है।' सास ने बिल्ली मंगा दी। बहू ने सोटा ले बिल्ली को मारना प्रारम्भ किया। अब वहां शोर मचा। इसी भांति हमारे बहुत से भाई बिना समझे बूझे बहुत सी बातों को सनातन समझ बैठते हैं।

दानाय लक्ष्मी सुकृताय विद्या चिन्ता परब्रह्म विचारणाय।
परोपकाराय वचांसि यस्य धन्यस्त्रिलोकी तिलकः स एव॥

७१—क्या से किसे मान बैठे

एक ब्राह्मण की लड़की जन्म से ही बड़ी साध्वी और भक्त थी। निशि दिन भजन, ईश्वर में वृत्ति, गीता का पाठ और इस महामंत्र का जाप किया करती थी कि—

राम कृष्ण गोपाल दमोदर हरि माधव मधुसूदन नाम।
कालीमर्दन कंसनिकन्दन देवकिनन्दन त्वं शरणम्॥
चक्रपाणि वाराह महीपति जलशायक मंगल करणम्।
ऐते नाम जपो निशि बासर जन्म जन्म के भय हरणम्॥

परन्तु जब यह लड़की कुछ बड़ी हुई तो इसका व्याह हुआ और जिस पुरुष के साथ इसका व्याह हुआ उसका नाम भी 'देवकीनन्दन' था और लौकिक प्रथा यह है कि स्त्री पति का नाम नहीं लेती है, इसलिए इस लड़की का जिस तारीख से व्याह हुआ, उसके उस महामंत्र के भजन में विघ्न पड़ गया।

क्योंकि उसके महामंत्र में यह शब्द आता था कि 'देवकिनंदन त्वं शरणम्' और यही नाम उसके पति का था, इस कारण इसने इस महामंत्र का भजन ही छोड़ दिया। परन्तु कुछ काल के पश्चात् देवकीनन्दन की स्त्री के एक लड़की उत्पन्न हुई। उसका नाम उस लड़की, देवकीनन्दन की स्त्री ने 'चंपो' रखवाया। बस उसी तारीख से देवकीनन्दन की स्त्री का महामंत्र बिना पति का नाम उच्चारण किये ही बन गया। जहां वह प्रथम कहा करती थी कि—

राम कृष्ण गोपाल दमोदर हरिमाधव मधुसूदन नाम्।
कालीमर्दन कंसनिकन्दन देवकिनन्दन त्वं शरणम्॥

अब ऐसा कहने लगी कि—

राम कृष्ण गोपाल दमोदर हरिमाधव मधुसूदन नाम्।
कालीमर्दन कंसनिकन्दन चंपो के चाचा त्वं शरणम्॥

मित्रो भजन तो बन गया पर उसे यह परिज्ञान न हुआ कि प्रथम मैं किन देवकीनन्दन का भजन करती थी और चंपो के चाचा कौन हैं? यानी कृष्ण भगवान् के स्थानमें चंपो के चाचा के भजन होने लगे। बस, समझ लो कि हम क्या से क्या मान बैठे?

७२--खुशामदियों से दुर्दशा

एक राजा के यहां बहुत से खुशामदिये रहा करते थे। खुशामदियों की बहुत दिनों से कोई बगी नहीं जमी थी अतएव ये लोग आपस में सम्मति करके कि राजा साहब से अब कुछ लेना चाहिये। राजा साहब के पास पहुंचे और उन से बोले कि—"राजा साहब, और तो आपने दुनिया में आ कर सम्पूर्ण ऐश आराम कर लिये, पर कभी आपने इन्द्र की पोशाक भी पहरी है?" राजा ने कहा—"नहीं, क्या इन्द्र की पोशाक

ख़ाली हाथ डाल फिर कहा-"राजा साहब, यह कमीज़ पहि-
निये।" फिर सबों ने कहा-"वाह वाह! क्या ही अच्छी कमीज़
है।" फिर खुशामदिये बोले-"राजा साहब यह वास्कट पहि-
निये।" फिर सभा के लोगों ने वाह वाह की। खुशामदियों
ने कहा कि-"राजा साहब लीजिये यह पजामा पहिनिये।"
फिर सब लोगों ने वाह वाह की। इस भांति संपूर्ण पोशाक
पहिना राजा साहब से कहा-'अब आप शहर की हवा खा आइये।
राजा साहब फिटन पर सवार हो नङ्गे शहर घूमने निकले
परन्तु शहर में राजा साहब की यह शकल देख लोग कहते थे
कि-"राजा क्या आज पागल हो गया है जो शहर में नङ्गा घूम
रहा है?" जब राजा ने सुना कि शहरवाले हमें नङ्गा कह रहे
हैं तो राजा ने कहा कि-"ये सब दोगले हैं। जब राजा साहब
शहर घूम आये तो खुशामदियों ने कहा कि—"राजा साहब
ज़रा महलों में भी हो आइये ताकि इन्द्र की पोशाक सब रानि-
यां भी देख लें। राजा साहब जब महल में पहुंचे तो रानियां
राजा को नङ्गा देख सब इधर उधर भगने लगीं। राजा ने कहा
कि-'तुम सब क्यों भगती हो?" रानियों ने कहा-महाराज,
आज आपको क्या हो गया है जो नङ्गे फिर रहे हो?" राजा बोले
"कि तुम सब दोगली हो। हम इन्द्र की पोशाक पहिर रहे हैं
सो यह असलों को ही दीखती है दोगलों को नहीं।" रानियों
ने हाथ जोड़ राजा साहब से प्रार्थना की कि-"महाराज आप
चाहे और संपूर्ण पोशाक इन्द्र की ही पहिनिये परन्तु धोती
केवल अपने देश की ही रखिये।" ऐसी ही दुर्दशा आज कल
के खुशामदिये हमारे भोलेभाले भाइयों की करा रहे हैं—

सचिव वैद्य गुरु तीन जो, प्रिय बोल भय आस।
तेहि राजा कर अवशि ही, होत वेग ही नास॥

किसी प्रकार मिल भी सकती है।" खुशामदियों ने कहा- "हाँ सरकार, मिल तो सकती है पर उसमें खर्च ज़्यादा है और कठिनता से मिल सकती है।" राजा ने कहा—"इसकी कुछ परवाह नहीं, तुम बताओ तो सही कि इन्द्र की पोशाक किस प्रकार मिल सकती है।" खुशामदियों ने कहा—"महाराज दस हज़ार रुपया हमें खजाने से दिया जाय तो हम लोग जा कर छै मास में लेकर लौट सकते हैं।" राजा ने उसी समय दस हज़ार रुपये का हुक्म कर करा दिया। खुशामदियों ने दस हज़ार रुपया तो लाकर घर में रक्खा और आप ६ मास इधर उधर बने रहे। जब ६ मास व्यतीत हुए तो खुशामदिये दो ताले बन्द खाली सन्दूक लेकर राजा की सभा में आ विराजे। राजा साहब इन्हें देख बड़े ही प्रसन्न हुए और बोले कि—"कहो तुम लोग इन्द्र की पोशाक ले आये?" खुशामदियों ने उत्तर दिया कि-"हां सरकार, इन्द्र की पोशाक तो ले आये परन्तु महाराज इन्द्र ने यह कह दिया है कि पोशाक असलों को दीख जायगी दोगलों को कभी दीख नहीं सकती।" राजा ने कहा—"खैर अब आप इसे खोलिये।" खुशामदियों ने कहा कि—"प्रथम आप अपने पुराने कपड़े सब के सब उतार दीजिये।" राजा ने वैसा ही किया। अब खुशामदियों ने खाली सन्दूक खोल, खाली हाथ सन्दूक में डाल और खाली ही निकाल बोले कि 'राजा साहब, ये लीजिये इन्द्र की धोती, इसे पहिनिये और इस पुरानी धोती को भी उतार दीजिये।" राजा पुरानी धोती भी खोल नङ्गे हो गये। सभा के लोग बोले-'वाह वाह! क्या ही अच्छी इन्द्र की कामदार धोती है।" क्योंकि सब डरते थे कि अगर यह कह दिया कि धोती ओती कुछ नहीं है राजा साहब आप तो नङ्गे हैं तो हमारी असलियत में फर्क लग जायगा और दोगले कहे जाँयगे। इसी प्रकार खुशामदियों ने

७३—धर्मध्वजी

एक पण्डित बड़े ही भक्त और शुद्धाचारी यानी नित्य प्रातः काल उठ के शौच दन्तधावन स्नान दुर्गापाठ आदि २ कर्म किया करते थे। परन्तु पण्डितजी को केवल मांस खाने की आदत थी। एक दिन पण्डितजी महाराज को कहीं मांस न मिला और पण्डितजी स्नान करने जाते थे कि इतने में एक छोटी बकरी जो पण्डितजी के पड़ोसी की थी उनके घर आ गई। पण्डित जी गँड़सा ले उसे यमपुर पहुंचा, उधेड़, काट छांट कर पण्डितानी से बोले कि—"तुम तब तक इसे बनाओ मैं स्नान कर पाठ करने जाता हूं।" पण्डित जी स्नान कर पाठ करने लगे और वह बकरी थाल में कटी रक्खी थी और पण्डितानी मसाला छांट रही थीं कि इतने में पड़ो-सिन कि जिसकी कि वह बकरी थी पण्डित के घर आग लेने आई। पण्डित दुर्गापाठ कर रहे थे। पण्डितजी पड़ोसिन को देख पाठ करते हुए प्रवाह में पण्डितानी से बोले—

या देवी सर्व भूतेषु चेतनेत्यभिधीयते।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः॥

पुनः इसी प्रवाह में बोले—

झांझनियां झांपनियां जिनकी हम मारी मेमनियां सो तो ठाढ़ी आंगनियां नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः।

पण्डितानी जी कुछ पढ़ी हुई थीं, यह पाठ सुनते ही उन्होंने मांस ढक दिया।

मित्रो! अब इस हिंसा-कर्म को छोड़ अहिंसक बनो और वंचकता छोड़ पूरे साधु बनो।

७४--गुरु चेला

एक क्षत्रिय एक बार एक पण्डित के चेला होने गये। क्षत्री जी लोटा, धोती, खड़ाऊं आदि २ सामान भेंट कर पंडित जी से 'नमो भगवते वासुदेवाय नमः' यह मंत्र सुन चेला हुए। परन्तु पण्डित जी ने सुन रक्खा था कि इन कुंवर जी की स्त्री बड़ी ही सुन्दर है, अतः पण्डित जी अपने नये चेले से बोले कि—"आपको सपत्नीक चेला होना चाहिये, अभी तो आप आधे चेला हुए हैं।' क्षत्री बेचारे सीधे सादे थे। उन्हों ने कहा— 'तो पण्डितजी अब क्या हो, अब तो हम चेला हो चुके।" पण्डित जी ने कहा—"सो अभी क्या हुआ, तुम अपनी स्त्री को ले आओ, उसको हम फिर मंत्र सुना देंगे।" कुंवर जी ने क्षत्राणी को ले आकर पण्डितजी से कहा-"गुरुजी महाराज, अब आप इसे भी मंत्र सुनाये।" गुरुजी ने कहा—"स्त्रियों को मंत्रोपदेश इस प्रकार नहीं किया जाता। इन का मंत्र कोई मनुष्य न सुन सकेगा, इस लिए इन्हें एकान्त में मंत्रोपदेश करेंगे।" कुंवरजी ने यह गुरु-आज्ञा पा अपनी स्त्री को गुरुजी के साथ एक कोठरी में एकान्त कर दिया और कहा कि—अब आप इसे मंत्रोपदेश कर दें।" परन्तु क्षत्राणी और क्षत्री दोनों कुछ संस्कृत पढ़े हुए थे और यह बात गुरुजी को मालूम न थी। गुरु जी कोठरी में क्षत्राणी जी से बोले कि—"इमं भूमिं गोकुल मानय" इस भूमि को गोकुल मानो। पुनः बोले कि—"अहं कृष्ण मन्ये" और हमको कृष्ण मानो। पुनः बोले कि—'त्वं आत्मानं राधां मन्यस्व' और तुम अपने को राधा मानो। पुनः बोले-"विहारं कुरु" और भोग विलास करो। परन्तु यह सब वार्ता कुंवरजी सुनते जाते थे। पण्डित तो समझते थे कि कुंवर वहां नहीं हैं क्योंकि कह दिया था कि

स्त्रियों का मंत्रोपदेश आपको नहीं सुनना चाहिये, पर कुंवर को पण्डित जी के वर्त्ताव से कुछ शंशय होगया था, इसलिए वे कोठरी के पास ही सुन रहे थे, वस इतना सुनते ही कुंवर जी किवाड़ोंमें धक्का मार जा कूदे और बोले कि—
'अहम्यमलोकसमागतोहं इमंयमदण्डं विद्धि अनेनदुष्टादन्याः।'
अर्थात् मैं यमलोक से आया हूं और यह यमदण्ड है, सो इससे यम की आज्ञा है कि ऐसे ऐसे दुष्टों का नाश करो।

७५--चेले का इस्तीफा

एक पण्डित जी को एक वैश्य ने अपना गुरु किया था और उनसे एक कंठी ली थी और चेला बन भक्ति किया करता था, परन्तु पण्डितजी को जहां कहीं जो कुछ सामान मिलता, चेले पर ही लदवाते थे। इस प्रकार धीरे २ चेले के पास बोझा अधिक होगया था। चेला बोझे से हैरान था परन्तु पण्डित जी ने अपनी ध्वनि न छोड़ी। एक दिन चलते २ गुरु चेला दोनों एक कुएं पर जा उतरे। चेले की कमर बोझे से टूट रही थी, जब तक पण्डित जी को किसी ने उसी कुएं पर आकर और एक लोटा भेंट दिया। गुरुजी बोले-' चेला, ले इसे और रखले।" चेले ने दाहिने हाथ से कंठी तोड़ गुरु से कहा कि-''यह लीजिये, इसे लेकर आप किसी ऊंट के बांधिये जो आपका बोझा ढोवे, हम से यह बोझा नहीं चलता।"

७६--भारवाही

एक साधूजी बिलकुल मूर्ख थे, लेकिन कुछ सन्यासी महात्माओं का उपदेश श्रवण करने से उनके हृदय में यह भाव उत्पन्न हुआ कि गीता पढ़ना चाहिये। एक दिन एक राजा साहब

अपने टमटम पर हवा खाने निकले। साधूजी ने राजा साहब को जा घेरा और हाथ जोड़ खड़े होगये। राजा साहब ने कहा-'कहिये, आप क्या चाहते हैं? क्यों आप इतनी तकलीफ़ उठा रहे हैं? कहिये।' साधूजी ने कहा-'महाराज हमें एक गीता की पोथी ले दो।' राजा साहब ने कामदारों को आज्ञा दी कि-"इस साधू को एक गीता की पुस्तक ले दो।' दूसरे दिन साधू कामदारों के पास गया तो उन्होंने बड़ी उत्तम सुर्ख जिल्द बंधी हुई गीता की एक पुस्तक उसे ले दी। यह साधू सुर्ख जिल्द गीता को पाकर कूदने लगा और बोला-"गीता गीता गीता, हमारी गीता।" और बार बार उस जिल्द को अपनी छाती में लगाता और कहता था कि- गीता, बड़ी अच्छी गीता, मेरी गीता।" कभी उसे चूमता और कहता-"गीता।" गीता ले जब यह मार्ग में आया तो कहा कि- इस में बांधने के लिये कोई बसना यानी वस्त्र होना चाहिये, नहीं तो इसकी जिल्द बिगड़ जायगी।" निदान साधू ने कपड़ा खरीद उसमें गीता लपेट कर रात को अपनी कुटी में रक्खा परन्तु रात में चूहे आकर उस की गीता खुतर गये। जब प्रभात हुआ तो साधू जी ने ज्यों ही अपनी गीता को देखा तो देखते क्या हैं कि उस चूहे काट गये। अब तो महात्मा जी को बड़ा ही कष्ट हुआ। दूसरे दिन साधूजी ने गीता की पोथी यद्यपि बड़ी सावधानी से रक्खी, पर चूहे उसे फिर खुतर गये। अब तो तीसरे दिन महात्मा जी देखकर बड़े दुखी हुए। लोगों से पूछा-"भाई, क्या करें, हमारी गीता की पोथी नित्य चूहे खुतर जाते हैं।" लोगों ने कहा-"महाराज एक बिल्ली पालिये ताकि चूहे आप की पोथी न खुतरें।' महात्मा जी ने एक बिल्ली भी पाली, परन्तु चूहों का काटना न बन्द हुआ। तो एक दिन उस बिल्ली ने चूहे तोड़े किन्तु जब वह भूखों मरने लगी तो उसने चूहों का तोड़ना बंद कर दिया। महात्मा ने

फिर लोगों से पूछा— 'क्यों भाई लोगों, अब तो बिल्ली भी चूहा नहीं तोड़ती।" लोगों ने कहा महात्माजी, बिल्ली चूहे कैसे तोड़े कुछ खाने को भी पाती है? बिल्ली को आप गाय का दूध पिलाया करें फिर देखें कि वह कैसे चूहा नहीं तोड़ती?' अब तो महात्माजी ने बिल्ली के दूध पिलाने के लिए एक गाय मोल ली। महात्मा ने गाय इसलिए ली कि बिल्ली गाय का दूध पीकर पुष्ट हो और चूहे तोड़े ताकि चूहे गीता की पुस्तक न काटें। परन्तु गाय भी दो रोज़ दूध दे, तीसरे दिन लातें फेंकने लगी। महात्माजी लोगों से बोले-"भाइयो, अब तो गाय भी दूध नहीं देती कि जो बिल्ली पिये और चूहे तोड़े ताकि गीता बचे।" लोगों ने कहा—'गाय को कुछ खिलाते भी हो कि दूध ही दे! इसे हरी घास खिलाया करो।' अब महात्मा जी को फिकर हुई कि अगर एक आदमी मिल जाय तो हरी हरी घास लाया करे। इतने में एक स्त्री अति दीन, जिस की अवस्था चौबीस पच्चीस वर्ष की थी, महात्मा के पास भीख मांगने आई। महात्मा ने कहा—"अरी तू हमारे यहां रह कर इस गैया को हरी घास रोज़ एक गट्ठा छील लाया कर हम तोय खाने भर को भोजन दिया करेंगे।" स्त्री ने स्वीकार कर लिया और रोज़ गाय को हरी हरी घास छील लाती और गाय की सेवा किया करती थी। अब तो महात्माजी की गाय खूब दूध देने लगी जिससे कि बिल्ली तो दूध पीती ही थी और महात्मा भी खूब रबड़ी उड़ाया करते थे और बचा बचाया स्त्री भी खा लेती थी परन्तु आप जानते हैं कि महाराज भर्तृहरि ने कहा है कि—

> भिक्षाऽशनं तदपि नीरसमेक वारं,
> शय्या च भूः परिजनो निजदेह मात्रम्।
> वस्त्रं च जीर्ण शतखण्ड मलीनकन्था,

शाटा तथापि विषया न परित्यजन्ति ॥

भिक्षा ही जिनकी वृत्ति हो और निरस भोजन दिन भर में एक बार मिलता हो और पृथ्वी ही जिनकी शय्या हो और अत्यन्त पुराने हज़ारों टुकड़ों की जुड़ी हुई गुदड़ी पहिरे हुए हो, ऐसी अवस्था में भी यह विषय-वासना नहीं छोड़ती।

और भी कहा है—

कृशः काणः खंजः श्रवणरहितःपुच्छविकलो ,
व्रणी पूतिः क्लिन्नः कृमिकुलशतैरावृततनुः ।
क्षुधाक्षामो जीर्णा पिठरजकपालाऽर्पितगलः ,
शुनीमन्वेतिश्वा हतमपि च हन्त्येव मदनः ॥

अर्थ—महा दुबला, एक आँख फूटी देह भर में खारिस, पूँछ कटी हुई, देह में बड़े बड़े फोड़े जिनमें कीड़ों के परिवार के परिवार घुसे, क्षुधा से पीड़ित, घड़े का घेरा गले में, ऐसा कुत्ता भी जब कुतियों के पीछे दौड़ता है, तो रबड़ी खानेवाले की तो बात ही क्या? बस, महात्माजी उस घसियारी से फँस गये। पुनः कुछ काल में उसी घसियारी से महात्माजी के एक लड़का और एक लड़की उत्पन्न हुई। कुछ दिन के बाद एक दिन महात्माजी एक लड़का इस कन्धे पर और एक लड़की उस कन्धे पर, गीता की पुस्तक बगल में, पीछे पीछे स्त्री और उसके पीछे गाय और साथ ही साथ बिल्ली आदि अपने सारे सामान से चले जा रहे थे और उधर से उन्हीं राजा साहब की सवारी जिन्होंने महात्मा को गीता लेदी थी आ रही थी। जब राजा साहब बराबर पर आये तो उन्होंने महात्मा को पहिचान और उनकी यह दशा देख सवारी खड़ी कर उनसे पूछा—'कहो महाराज, गीता कितनी पढ़ी?' महात्मा बोले—'महाराज, १८ अध्याय में केवल ५ अध्याय हुए

हैं।' दहिने कन्धे का इशारा करके कि एक अध्याय यह बायें की तरफ़ इशारा करके कि दूसरा अध्याय यह, पीछे की तरफ़ इशारा करके कि तीसरा यह, उससे पीछे की तरफ़ इशारा करके कि चौथा यह और बिल्ली की ओर इशारा करके कि पाँचवा यह। राजा यह सुन चले गये।

७७-अविद्या की हठ

शुक्लांबरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम्।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्व विघ्नोपशांतये॥

इस श्लोक के अर्थ में एक पंडितजी ने एक राजा साहब को 'रुपया बतलाया और इस प्रकार अर्थ किया कि 'शुक्लांबरधरं' यानी रुपया सफ़ेद सफ़ेद होता है, 'विष्णुं' जो चर अचर में व्यापक हो वह विष्णु कहावे, रुपये के बिना किसी का काम नहीं चलता इससे व्यापक है, और 'शशिवर्णं' गोल गोल चन्द्रमा सा होता है, 'चतुर्भुजं' चार चवन्नी होती हैं इस लिये चतुर्भुज भी है, 'प्रसन्न वदनं' और वह चमचमाता भी है, 'ध्यायेत्' उस रुपये के धारण करने से सम्पूर्ण विघ्न शान्त हो जाते हैं।' उस दिन से जो पण्डित इन राजा साहब के पास आता तो उससे राजा साहब यही श्लोक पूछा करते थे और जब पंडित इसको विष्णु की स्तुति में ले जाता यानी ठीक ठीक अर्थ करता तो राजा साहब कहते कि यह अर्थ ग़लत है और अपने को तथा अपने गुरू को बहुत कुछ धन्यवाद दिया करते थे। बहुत काल के बाद एक पंडित राजा के पास आये। उनके आते ही राजा ने वही प्रश्न किया। पंडितजी ने राजा का रुपये वाला अर्थ जान लिया था, इसलिये राजा के पूछते ही कह

दिया कि-'महाराज, इसका अर्थ रुपया है।' राजा बड़ा प्रसन्न हुआ और कहा—'इतने दिन पर हमारे गुरु के बाद दूसरे पंडित आप ही मिले हो।' तब तो इन दूसरे पण्डित ने कहा-'महाराज, इसका एक अर्थ हम और आपको बतावें।' जो कोई न जानता हो।' राजा साहब ने कहा— बताइये।' पंडितजी ने कहा कि—'इसका अर्थ 'दहीबड़ा' भी हो सकता है? देखो 'शुक्लांबरधरं' दहीबड़ा सफ़ेद सफ़ेद होता है, 'विष्णु' व्यापक है ही यानी सब कोई खाता है. 'शशिवर्ण' गोल गोल होता ही है, 'चतुर्भुजं' चतुरों के खाने योग्य अर्थात् चतुर ही इसे खाते हैं, 'प्रसन्नवदनं' फूला हुआ होता ही है और इसके धारण अर्थात् खाने से सम्पूर्ण विघ्न शान्त हो जाते हैं। राजा यह अर्थ सुन बड़ा ही प्रसन्न हुआ और पण्डित को बहुत कुछ दक्षिणा दे विदा किया। परन्तु यह बड़े का अर्थ करने वाला पण्डित विद्वान् था, उसके हृदय में यह शोक हुआ कि देखो यह राजा कैसी मूर्खता में फँसा है, अतः इससे इसे निकालना चाहिये। ऐसा विचार राजा के यहां ठहर कर राजा साहब को पढ़ाने लगा। थोड़े काल में राजा साहब को अष्टाध्यायी महाभाष्य और कुछ काव्य पढ़ा कर एक दिन राजा साहब से कहा कि—

'शुक्लांबरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम्।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्व विघ्नोपशांतये॥

इसका क्या अर्थ है? रुपया या दहीबड़ा?' राजा साहब ने कहा— महाराज, इसका असली अर्थ तो इन दोनों में एक भी नहीं।' पण्डितजी ने कहा कि—'हम प्रथम यदि इसका और अर्थ बतलाते तो क्या आप कभी मानते?'

———

७८—कृतघ्नता

एक ग्राम में दो पुरुष पास ही पास रहते थे, उनमें एक का नाम मिट्ठनलाल और दूसरे का दीपचन्द था। इनमें मिट्ठनलाल की स्त्री पढ़ी लिखी, बड़ी ही चतुर और सुशीला थी और दीपचन्द की स्त्री यद्यपि कुछ कम पढ़ी थी पर चालाकी और चतुराई में कम न थी। दीपचन्द की स्त्री मिट्ठनलाल की स्त्री से हर बात को इस प्रकार चतुराई से पूछती थी कि इस से सीख तो लेऊं ही पर इसे यह न मालूम पड़े कि यह सीखती है और हर बात के पूछने पर जब वह बतला देती तो यह कह दिया करती कि 'यह तो हमें पहिले ही से मालूम था।' मिट्ठनलाल की बिचारी सीधी स्त्री यह तो जान ही लेती थी कि यह चतुराई करती है पर कुछ कहती नहीं थी। इस प्रकार बहुत काल तक दीपचन्द की स्त्री मिट्ठनलाल की स्त्री से धूर्तता करती रही। परन्तु एक दिन मिट्ठनलाल की स्त्री को क्रोध आया और उसने कहा कि दीपचन्द की स्त्री मुझी से सीख जाती है और मानती नहीं इस लिये इसे इस की कृतघ्नता का फल देना चाहिये। मिट्ठनलाल की स्त्री यह सोच ही रही थी कि इतने में दीपचन्द की स्त्री आ पहुंची, तब तो मिट्ठनलाल की स्त्री बोली—'बहिन, कल अमुक त्योहार है, इस लिये कल पूरनपूरी हुआ करती हैं, सो तुम भी अपने करना।' दीपचन्द की स्त्री ने पूछा—'बहिन, पूरनपूरी किस तरह हुआ करती हैं? उसके बनाने की क्या विधि है?' मिट्ठनलाल की स्त्री ने कहा—'बहिन, जिस दिन पूरनपूरी करना हो सुबह से उठ के झाड़े जंगल हो, नाई से सब बाल बनवाडाले और फिर कोयला पीस कर सारी देह में लगावे और जूतियों की माला बना के पहिरे, फिर नंगे होकर नंगे नंगे दूध में कुछ घी डाल के आटा माड़े, फिर नंगे नंगे ही

करे और किसी से बोले नहीं।' दीपचन्द की स्त्री बोली–यह तो मैं पहले से जानती थी।' मिट्ठनलाल की स्त्री ने मन में कहा कि–'जा रांड, तुझे 'यह तो मैं पहले ही से जानती थी' का फल कल मिलेगा।' अब दीपचन्द की स्त्री ने घर में आकर अपने पति से कहा–'कल हमारे यहां अमुक त्योहार है, सो मुझे अमुक अमुक वस्तु ला दो और दुपहर तक घर न आना क्योंकि मैं पूरनपूरी करूंगी।' दीपचन्द ने सामान ला दिया और प्रातःकाल से वे अपने काम में चले गये। यहां इनकी स्त्री ने झाड़े जंगल हो, नाई को बुला सब सिर घुटा दिया, फिर नहा कर कोयला पीस सारे शरीर में लगाया, पुनः जूतियों की माला पहिन नङ्गी हो दूध में आटा सान नङ्गी नङ्गी पूड़ियां बना रही थी कि इतने में इसे सुबह से तीन बज गये और इस का पति आ गया। यह घर के किवाड़ बन्द किये पूरनपूरियां बना रही थी। पति ने दरवाजे से कई बार बुलाया, पर इसने किवाड़े न खोले। इसे संदेह हुआ कि न जाने मेरी स्त्री मर गई या उसे सर्प ने काटा या कोई अन्य पुरुष मेरे घर में है, मेरी स्त्री जाने किवाड़े क्यों नहीं खोलती? ऐसा सोच एक पड़ोसी के मकान से होकर जिसकी कि छत इसकी छत से मिली थी अपने घर पहुंचा तो देखता क्या है कि यह नङ्गी, सिर मुड़ाये, सारे शरीर में कोयला लगाये, जूतियों का हार पहने पूरनपूड़ी कर रही है। प्रथम तो पति को देखते ही यह सूख गई पुनः पति ने कहा—'क्योंरी चुड़ैल, यह क्या शकल बनाई है?' किन्तु यह पूरनपूरी के ध्यान में मस्त थी, इस कारण न बोली। पति ने कोड़ा ले इसकी खाल खींच दी। तब तो बोली कि 'मुझे यह सब मिट्ठनलाल की स्त्री ने बतलाया था।'

अब आप सोचें कि कृतघ्नता ने क्या क्या दुर्दशा कराई अन्त में यह खुल ही गया कि मैं मिट्ठनलाल की स्त्री से सीख आई थी।

७१--अमल के बिना लोग पीछे नहीं चलते

एक नदी के तट पर एक अन्धा और एक लङ्गड़ा बैठे हुये थे। एक पथिक नदी के समीप पहुंचे और अन्धे से पूछा कि "नदी कितनी है?" अन्धे ने कहा-"मोटी जांघ से।" पथिक ने कहा- 'तुमने देखी?' कहा-"मैं तो अन्धा हूं, मैं कैसे देखता? लङ्गड़े से पूछा-"नदी कितनी है?" लंगड़ा बोला-"कमर से। पथिक ने पूछा-"तुमने मँझाई?' इसने कहा-' मैं तो लङ्गड़ा हूं, कैसे मँझाता।' यह सुन पथिक संशय में था कि नदी के पार कैसे जाऊँ? जाने नदी कितनी गहरी, कहां से कैसा रास्ता हो? पथिक यह विचार ही रहा था कि इतने में एक ऐसा पुरुष जो नदी के समीप ही रहता था तथा उसकी आंखें और पैर दोनों थे और कई बार उसकी नदी मंझाई हुई थी आया और वेडर नदी मंझने लगा और उस पुरुष से जो संशय में खड़ा था कहा कि-"तुम भी मेरे पीछे वेडर चले आओ।' संशयात्मा पुरुष उसके पीछे चल पड़ा और नदी को पार कर गया।

इसी प्रकार जिनके बुद्धिरूप चक्षु हैं और काम करने को शक्तिरूप पैर हैं और आचरण के द्वारा नदीरूप वेदों को जिन्हों ने मँझाया है उन्हीं के पीछे मनुष्य चल सकते हैं और जिन्होंने केवल सुना ही है और बुद्धिरूप नेत्रों से अन्धे हैं उनकी बात कोई नहीं मान सकता; और न उन्हीं की बात कोई मान सकता है जिन्होंने बुद्धिरूप चक्षुओं से देखा तो है पर जो कर्म करने रूप पगों से लङ्गड़े आचरण-शून्य एवं भ्रष्टाचारी हैं। इसलिये अगर हम दुनिया को सुधारना या अच्छे आचरणों पर लाना चाहते हैं तो आवश्यकता है कि प्रथम हम सुधरें और हम अपने आचरणों को अच्छा बनावें।

विदुषो जनता शृणुते कुवति ह्यपि नाचारं विधिवत् कुरुते।

कालिपीड़ित भारत दुःख विनष्टि रथो भविता कथमत्यनघे ॥

८०--मेल से लाभ

एक पुरुष के चार बेटे थे। जब वह मरने लगा तो उसने अपने चारों बच्चों को बुला एक रस्सी दी और एक एक बेटे से पृथक पृथक कहा कि तुम इसे तोड़ो, पर वह किसी से न टूट सकी। फिर पिता ने कहा कि तुम चारों मिल कर इसको तोड़ो। पर वह फिर भी न टूट सकी। फिर उसने कहा अब इस रस्सी को उधेड़ डालो और इसकी एक एक लर को तोड़ो। बच्चों ने ज़रा ही देर में रस्सी के टुकड़े टुकड़े कर दिये। तब पिता ने कहा कि देखो एक तिनका तुम्हें वर्षा में पानी से नहीं बचा सकता परन्तु जब तुम बहुत सा फूस इकट्ठा करके छप्पर छा लेते हो तो वह बड़ी बड़ी जल-वृष्टि से भी बचाता है। इसी प्रकार जब तक तुम आपस में मिले रहोगे तब तक कोई तुम्हारा कुछ नहीं कर सकता पर जहां तुम अलग हुए वहां रस्सी की तरह टुकड़े टुकड़े कर दिये जाओगे। किसी कवि ने कहा है—

अल्पानामपि वस्तूनां संहतिः कार्य्यसाधिका।
तृणैर्गुणत्वमापन्नैर्बध्यन्ते मत्त दन्तिनः ॥
बहूनां चैव सत्वानां समवायेऽपि दुर्जयः।
वर्षं धाराधरो मेवस्तृणैरपि निवार्यते ॥

८१--अदालत से नाश

एक बार दो बिल्लियां कहीं से चार खोये की लोइयां उठा लाईं, परन्तु उनके परस्पर बाँटने में झगड़ा हुआ, अतः दोनों ने निश्चय कर एक बन्दर के पास जा कहा कि—'आप चल

कर हमारी खोये की लोई बांट दें।' बन्दर ने कहा—'अच्छा तुम कहीं से तराजू ले आओ।' जब बिल्लियां तराजू ले आईं तो बन्दर ने दो लोइयां एक तराजू के पलड़े पर रक्खीं और दो लोइयां दूसरे पलड़े पर रक्खीं। परन्तु एक पलड़े की लोइयां बनिस्बत दूसरे पलड़े की लोइयों के कुछ भारी थी, इस कारण जब बन्दर ने तराजू उठाई तो भारी लोइयों वाला पलड़ा नीचे को लचक गया। बन्दर उसमें एक हौकला मार खा गया। बिल्लियों ने कहा—'यह तू क्या करता है, खाता क्यों है?' बन्दर ने कहा कि—'यह कोटफोस है।' जब बन्दर ने फिर तराजू उठाई तो अब वह पलड़ा जिसमें हौकला नहीं लगाया था नीचा हो गया। बस बन्दर ने फ़ौरन ही उसमें भी एक हौकला लगाया। बिल्लियों ने कहा—'यह क्या करता है।' बन्दर ने कहा कि—'यह तलवाना है।' अब पहलेवाला पलड़ा फिर नीचा हो गया, तो बन्दर पुनः उसमें हौकला मार खा गया। बिल्लियों ने कहा कि—'तू यह बार बार क्या करता है?' बन्दर ने कहा—'यह हर्जाना है।' अब एक पलड़ा तो बिलकुल साफ़ हो गया और दूसरे में कुछ खोया रह गया। बन्दर ने अब की बार बिना ही तराजू उठाये वह शेष खोया भी खा लिया। बिल्लियों ने कहा—'यह क्या?' बन्दर ने कहा—'यह शुकराना है।'

बस यारो समझ लो कि अदालत सबका सभी साफ़ कर देती है, वहां दोनों के दोनों नाश हो जाते हैं। इसलिए आप लोगों के यहां जैसी पुरानी प्रथा थी कि गाँव में पञ्च नियत थे और वही सब न्याय किया करते थे वैसे ही पञ्च नियत कर अपने झगड़े घर के घर ही में निपटा लिया करो, कभी भूल कर भी अदालत में न जाओ।

८२--भेड़िया धसानी

एक महात्मा के पास कुछ तांबे के बर्तन थे। महात्मा जब बाहर भ्रमण को जाने लगे तो सोचा कि ये वर्तन कहां लादे २ फिरेंगे, इस लिये इन्हें कहीं रख दूं। यह सोच महात्माने वर्तन जंगल में एक स्थान पर गाड़ दिये और उसके ऊपर एक कूरी बांध रहे थे जिसमें चिन्ह बना रहे और लौट कर वे अपने वर्तन खोल लें कि इतने में गांव के कुछ लोगों ने महात्मा को जंगल में कूरी बनाते देखा। महात्मा तो बाहर भ्रमण को चले गये और गांववालों ने यह निश्चय किया कि गांव से जो कोई बाहर जाय वह फलां फलां जंगल में एक कूरी अवश्य बना आय इससे बड़ी सिद्धी प्राप्त होती है। बस, गांव से जब कोई कहीं जाता तो वहीं जहां कि महात्मा कूरी बना गये थे, एक कूरी बना देता। इस प्रकार थोड़े ही दिनों में वहां तमाम कूरी ही कूरी हो गई। कुछ काल के बाद जब महात्मा जी लौटे और अपने वर्तन खोदने के लिये उस जंगल में गये तो वहां देखते क्या हैं कि तमाम कूरी ही कूरी बनी हैं। महात्मा यह चरित्र देख बोले कि—

> गत नुगतिको लोको न लोक: पारमार्थिक:।
> पश्य लोकस्य मूर्खत्वं हृतं मे ताम्र भाजनम् ॥

अर्थ—लोक बड़ा ही गतानुगतिक अर्थात् भेड़ियाधसान है लोग परमार्थ नहीं विचारते कि क्या है? लोक की मूर्खता तो देखो कि हमारे बर्तन ही ले डाले। अब क्या जान पड़े कि कौन सी कूरी के नीचे हमारे वर्तन हैं।

८७--संखेश्वर

एक ब्राह्मण बेचारे बड़े ही सीधे सादे, ईश्वर भक्त, निर्त

पूजा पाठ किया करते थे। उनके मकान के पीछे एक धोबी का मकान था, अतः पण्डित जी जब दिन में पूजा किया करते और अपना संख बजाते तो साथ ही उनके मकान के पीछे जिस धोबी का घर था उसका गधा भी इन पण्डितजी के संख के साथ ही नित्य बोला करता था। पण्डितजी ने गधे को नित्य अपने संख के साथ बोलते देख सोचा कि यह कोई पूर्व जन्म का महात्मा जीव है इस कारण पण्डितजी ने उस गधे का नाम 'संखेश्वर' रख छोड़ा था। एक दिन अनायास महाराज संखेश्वर का देवलोक हो गया। जब पण्डितजी ने उस दिन दोपहर की पूजा की और संखेश्वर साथ न बोले तो जाकर धोबी से पूछा कि-"आज महात्मा संखेश्वर कहां गये?" पण्डितजी को पता लगा कि संखेश्वर का देवलोक हो गया। पण्डितजी ने सोचा कि खैर यदि हम से कुछ नहीं हो सकता तो लाओ महात्मा संखेश्वर के शोक में बाल ही बनवा डालें। बस पण्डितजी अपनी मूंछ दाढ़ी सिर सब घुटवा स्नान कर बनिये की दूकान पर कुछ सौदा लेने पहुंचे। बनिये ने पूछा-"महाराज, आज बाल कैसे बनवाये हो।" पण्डितजी ने उत्तर दिया कि-"एक महात्मा संखेश्वर थे, उनका स्वर्गलोक होगया तो हमने कहा कि महात्माओं के शोक में यदि और कुछ नहीं हो सकता तो बाल ही बनवा डालें इस लिये बाल बनवाये हैं।" बनिये ने कहा-"तो महाराज, कहिये तो महात्मा के शोक में हम भी बाल बनवा डालें?" पण्डितजी ने कहा—"इससे उत्तम क्या बात है?" बस सेठजी भी घुटा बैठे। दूसरे दिन बाज़ार के लोगों ने सेठजी से पूछा कि-"सेठजी आपने बाल कैसे बनवाये?" सेठजी ने कहा कि-"एक महात्मा संखेश्वर थे उनका देवलोक हो गया तो हमने सोचा कि अगर महात्मा के शोक में हम से और कुछ नहीं हो सकता तो बाल ही बनवा

डालें।' बाज़ारवालों ने सेठ से कहा कि—'तो लाओ हम सब लोग भी महात्मा के शोक में बाल बनवा डालें।' सेठजी ने कहा—'बड़ी अच्छी बात है।' अब तो सब बाज़ार की बाज़ार घुटा बैठी। तीसरे दिन पल्टन के लोग बाज़ार में रसद लेने आये। उन्होंने बाज़ारवालों से पूछा कि—'क्यों भाई आज तुम सब लोग बाल कैसे बनवाये हो?' बाज़ारवालों ने जवाब दिया कि—'एक महात्मा का, जिनका नाम संखेश्वर था, देवलोक हो गया है, हम लोगों ने सोचा कि महात्माजी के शोक में हम लोगों से और कुछ नहीं हो सकता तो बाल ही बनवा डालें!' पल्टनवालों ने कहा कि 'अगर हम लोग भी महात्माजी के शोक में बाल बनवा डालें तो क्या बुरा है?' बाज़ारवालों ने कहा—'वाह वाह महाराज, बुरा कि बहुत ही अच्छा है?' बस उन लोगों ने जाकर अपनी पल्टन भर में यह ख़बर कर दी। फिर क्या था पल्टन की पल्टन सिर घुटा बैठी। चौथे दिन जब कप्तान साहब क़वायद लेने आये तो पल्टन की यह शकल देख पल्टन के लोगों से पूछा-'वेल, टुम लोगों ने क्या किया! क्यों एकडम सब लोगों ने अपना २ बाल बनवा डिया?' लोगों ने जवाब दिया कि-'हुज़ूर, यहां एक महात्मा संखेश्वर रहते थे, वह मर गये, इस लिये हम लोगों ने उनके रंज में बाल बनवाये हैं।' कप्तान साहब ने पूछा 'अच्छा, वह महात्मा कहाँ रहटा ठा और कौन ठा। लोगों ने कहा-हुज़ूर, हम नहीं जानते? हम लोगों ने बाज़ार में सुना।' कप्तान ने भड़क कर कहा-'वेल, टुम लोग बड़ा बेवकूफ़ डैम है, जब टुम उसे जानटा नहीं फिर क्यों बाल बनवाया? अच्छा चलो, हम टुम्हारे साथ बाज़ार चलेगा।' जब कप्तान साहब बाज़ार पहुंचे तो बाज़ारवालों से कहा कि-टुम लोगों ने जो हमारी पल्टन के लोगों से कहा है वह संखेश्वर महाटमा कौन है और कहां रहटा ठा?' बाज़ारवालों ने कहा—'हुज़ूर,

हम से इस बनिये ने कहा।' कप्तान साहब उस बनिये के पास पहुंचे और उस से पूछा कि-'तुमने जो बाल बनवाया है और सब लोगों से कहा है, तुम जानता है कि संखेश्वर महात्मा कौन है?' बनिये ने कहा—'हुजूर, हमने अमुक पण्डित से सुना है।' कप्तान बोला-'आइयो डैमफूल, तुमने बिना जाने बाल क्यों बनवाया और दूसरों से क्यों कहा?' निदान कप्तान साहब उस पण्डित के पास पहुंचे और पूछने पर मालूम हुआ कि महात्मा संखेश्वर एक धोबी का गधा था। कप्तान बड़ा गुस्सा हो बोला-'आइयो काला, डैम फूल, तुम लोग बिलकुल उल्लू है।' अब तो सब के सब बिलकुल शर्मिन्दा हो गये।

भाइयो, अब तो यह भेड़ियाधसानी छोड़ो। हम अब भी देखते हैं कि जहां रेल में एक किवाड़ी खुली उसी में सब घुसते चले जाते हैं, चाहे पास ही दूसरा डब्बा ख़ाली क्यों न पड़ा हो।

८४—मालिन का देवता

एक बार एक स्थान में बड़ा भारी मेला लगा हुआ था। मेले का प्रबन्ध हमारी गवर्नमेंट ने पुलिस वगैरा भेज कर बहुत उत्तम कर रक्खा था। कहीं भी चोरी बदमाशी न होने पाती थी। स्थान २ पर पुलीसमैन मौजूद थे। सड़कों पर कोई पाख़ाना पेशाब मेले के अंदर नहीं करने पाता था, परन्तु एक मालिन जो मेले के अन्दर ही एक जगह अपनी फूलों की दूकान रक्खे थी, उसे सुबह को ऐसा ज़ोर पाख़ाना लगा कि वह सड़क पर अपनी दूकान के पास ही पाख़ाना फिरने लगी। यह चरित्र देख पुलिस के सिपाही मालिन को पकड़ने दौड़े। मालिन ने देखा कि मुझे पुलिस के सिपाही पकड़ने आते हैं, उसने झट एक टोकरा फूलों का ले अपने पाख़ाने पर डाल

दिया और उसकी तरफ अपने हाथ जोड़ कर बैठ गई। जब पुलिस के सिपाही उसके पास पहुंचे और उससे पूछा कि—'तू यहाँ क्या करती थी?' उसने कहा कि—'यहां एक बड़े भारी देवता रहते हैं, इनकी पूजा करने से इनसे जिस प्रकार का फल चाहो, पुत्र, पौत्र, धन, बल, विद्या सम्पूर्ण मनोकामनायें ये पूरी करते हैं।' यह सुन कर पुलिस के सिपाहियों ने भी मालिन से एक २ पैसे के फूल और हलवाई की दूकान से कुछ बताशे तथा कुछ पैसे चढ़ा किसी ने स्त्री, किसी ने लड़का, किसी ने तरक्की मांगी। इस प्रकार पुलिसवालों को देख मेले के और लोगों ने, और औरों को देख और लोगों ने, गरज़ कि तमाम मेले ने वहां खोड़ी, बताशे पैसों और फूलों के ढेर कर दिये। यह दशा देख हिन्दू बोले कि हमारा देवता है, मुसलमान बोले कि यह हमारा देवता है। जब दोनों में बड़ा झगड़ा हुआ तो राजा के पास यह न्याय पहुंचा। राजा ने कहा— 'वहां चल कर देखो, अगर वहां कुछ पत्थर वगैरा रक्खा है तब तो वह हिन्दुओं का देवता है और लम्बी लम्बी क़बर सी बनी है तो मुसलमानों का देवता।' राजा ने दोनों दलों को साथ ले मौक़ पर पहुंच कर कहा—'इसके ऊपर से सब ये फूल, बताशे, खोड़ी हटाओ।' लोगों ने हटाना शुरू किया। हटाते २ वहां जो कुछ असली माल था वह निकल आया। यह देख सब शरमा गये और दोनों ने इन्कार किया कि हमारा देवता नहीं।

८५—सुभाई का स्वभाव

एक राजा साहब को गाली देने की बड़ी आदत थी। एक बार राजा साहब एक बड़ी भारी सोसाइटी [सभा] के प्रधान बनाये गये और उनसे कहा गया कि—'राजा साहब! आज से

आप इस सभा के प्रधान बनाये जाते हो, इस लिये अब किसी को गाली न देना।' राजा साहब ने कहा—'आज से हम किसी 'साले' को गाली नहीं देंगे?'

८६--नीच की नीचता

य: स्वभावोहि यस्यास्ते स एव दुरतिक्रमः।
श्वा यदि क्रियते राजा किं नाश्नात्युपानहम् ॥

एक वार एक चमार के धनिक होने के कारण एक पंडित जी से यहां तक दोस्ती हो गई कि दिन रात दोनों हमेशा साथ ही रहा करते थे। एक वार एक क्षत्री के यहां से उन पंडित जी के यहां निमन्त्रण आया। पंडित जी उस चमार को भी अपने साथ क्षत्री जी के यहां भोजन कराने ले गये और यह नहीं बतलाया कि वह चमार है, पर मौक़ा ऐसा आया कि सब से पहले पैर धो क्षत्री जी के आँगन में वही पहुंचा और आसन पर बिठा दिया गया। अब इस के पीछे जितने पैर धुला २ अन्दर आते थे, यह चमार जिस पुरुष को आते देखता था तो सखिलता जाता था क्योंकि उसको यह आदत पड़ी हुई थी, यहां तक सकिलता रहा कि सखिलते २ नर्दवीन पर पहुंच गया। जब लोगों ने इसे बहुत ज्यादा सखिलते देखा तो लोग बोले-"तुम कैसे चमार की तरह सकिलते जाते हो?' यह शब्द सुन चमार पंडित से बोला कि- पंडितजू ई जानिगे।' तब तो लोगों को ज्ञात हुआ कि यह असल में चमार है। बस क्षत्री जी ने उस की पूरी ख़बर ले बाहर निकाला।

८७--जाति कभी नहीं छिपती

जिस समय शिवाजी महाराज का मुसलमानों से युद्ध हो

रहा था तो शिवाजी ने अपने सरदारों और सिपाहियों को यह हुक्म दिया कि 'जहां मुसलमान देखो मार दो।' यह ख़बर पा बहुत से मुसलमानों ने चन्दन टीका पाटा जनेऊ भी पहिर लिये थे। एक बार एक मुसलमान शिवाजी के सामने पड़ा। शिवाजी ने पूछा—'तू कौन है?' उसने कहा—'बरेहमन।' पूछा—'कौन बरेहमन?' कहा—'गौड़।' शिवाजी ने पूछा—'कौन गौड़?' वह बोला—'या अल्ला गौड़ों में भी और?' शिवाजी ने कहा—'अरे मार मार, यह बरेहमन नहीं तुरक है।

सुचिरं हि चरन्नित्यं क्षेत्रं सस्यं स बुद्धिमान्।
द्वीपि चर्म परिच्छिन्नो वाग्दोषाद् गर्दभो हतः॥

७८-ठनगन (तकल्लुफ़)

दो मुसलमान साहब कहीं जा रहे थे, अतः स्टेशन पर टिकट ले प्लेटफारम पर दोनों साहब गाड़ी आने की बाट देखने लगे। जिस समय प्लेटफारम पर गाड़ी आई और चढ़ने का समय आया तो एक साहब ने कहा—'चलिये, आप सवार हूजिये।' दूसरे ने कहा–'चलिये चलिये, आप सवार हूजिये।' पहले ने कहा—अजी वाह, इसमें क्या आप सवार हो जाइये।' दूसरे ने कहा—'क़िबला, आप सवार हूजिये।' बस इतने में गाड़ी सीटी दे चल पड़ी, ये दोनों साहब क़िबला में ही रह गये किसी शायर ने क्या ही सच कहा है—

है यार तकल्लुफ़ में तकलीफ़ सरासर।
आराम से वे हैं जो तकल्लुफ़ नहीं करते॥

८९-दिल्लगी मखोल

एक मुतलक जाहिल मुसलमान साहब एक मौलवी साहब

से मिलने गये। मौलवी साहब इन के पहुंचते हीं उठ कर खड़े हो गये और कहा—'वालेकुम सलाम, आइये क़िबला' और इन्हें मोढ़े पर बिठाल के इनके तथा और जो मौलवी लोग मौलवी साहब के पास बैठे थे उनके लिये पान लेने घर गये। इतने में दूसरे मौलवियों ने मखौल से इस मुतलक जाहिल से कहा कि-'अभी जो मौलवी साहब ने आप से कहा था कि 'आइये क़िबला' आप इसके माने भी समझे?' इन्हों ने कहा-हम ससुर माने क्या जाने, माने वाने आप जानते होंगे। भला, क्या माने हैं?' उन्होंने कहा कि-'क़िबला माने बेटीचोद।' अब तो ज्योंही मौलवी साहब पान लेकर घर से निकले, बस इस मुतलक जाहिल ने कहा कि-'मौलवी साहब, आपने आज तो क़िबला कहा, अगर दूसरे रोज़ क़िबला कहोगे तो मारे लट्ठों के सिर फोड़ दूंगा और क़िबला तू और तेरी मां क़िबिलिया और तेरा बाप क़िबिलया।' मौलवी साहब ने कहा-'भाई, आप क़िबला लफ़्ज़ के माने क्या समझे? क़िबला लफ़्ज़ के माने तो बड़े हैं।'

यह दशा देख और मौलवी हंस रहे थे। इस मुतलक जाहिल ने कहा-बस, अब बात न बनाइये। तुम अपने दरवाज़े मुझे चाहे कुछ क़िबला विबला कह लो, जनाब देखूंगा।' यह कह कर चल दिया।

९०—कष्ट भय से ऐश्वर्य-निन्दा

एक गांव में एक ऐसा दरिद्री रहता था कि जिसके घर में ख़ाली एक मूसल के और कुछ न था। एक बार अनायास समय ऐसा आया कि उस गांव में आग लग गई। अब तो यह दरिद्री अपना मूसल ले घरसे निकल रास्ते रास्ते नाचने लगा

और बोला कि—'आज दलिद्दर कामे आओ, आज दलिद्दर काले आओ।' यह गाता हुआ कूदने लगा।

ऐसों को ही मूसरचन्द कहा करते हैं कि आग के भय से सामान ही न जोड़े। पाखाने की दिक्कत से भोजन ही न करे, क्या यह अक्लमन्दी की बात है?

नाल्प मइप्नोतिति निमलत्वं श णोरगागोपण्मन्तरेण।

११—विद्या की निन्दा

एक सन्त जी एक पण्डित जी के द्वार पर भिक्षा मांगने आये। पण्डित जी ने कहा—'कहो सन्तजी, कुछ पढ़े लिखे हो?' सन्त जी ने कहा— अरे बच्चे पठितव्यं तदपि मर्तव्यं न पठितव्यं तदपि मर्तव्यं, फिर दन्त कटाकटेति किं कर्तव्यं?' तो पण्डितजी ने कहा कि— यदि यही माना जाय तो 'खातव्यं तदपि मर्तव्यं न खातव्यं तदपि मर्तव्य, फिर अन्न भक्षाभक्षेति किं कर्तव्यं?' सन्तजी क्रोधित होकर चल दिये।

१२—विद्या-दम्भ

विद्यादम्भ क्षणस्थायी धनदम्भ दिनत्रयम्।

एक साहब केवल दो शब्द सीख आये थे, एक 'बले' दूसरा 'नमे गोयम्' बस अब तो इनसे जो कोई बोलता था ये अपने इन्हीं दो शब्दों का इस्तेमाल किया करते थे और अपने गाँव में इन्हीं दो शब्दों की बदौलत मौलाना साहब बन रहे थे। एक दिन एक अरब के रहनेवाले मौलाना साहब का ऊँट खो गया था और वह अपना ऊँट ढूंढ़ते ढूंढ़ते इन दुलफ़्जी-पास मौलाना के गांव से आ निकले और अरब के मौलाना साहब ने इन दुलफ़्जी-पास मौलाना से पूछा कि—'शुतुर मे

दीद = मेरा ऊंट देखा है?' इन्होंने कहा—'बले=हां देखा है।' अरब के मौलाना ने कहा—'कुजा रफ्त? =किधर गया?' इन्होंने कहा—'नमे गोयम् = न बताऊंगा।' तब अरबवाले मौलाना ने कहा—'जब तूने देखा है तो क्यों नहीं बतावेगा?' और अरब के मौलाना को बड़ा गुस्सा आ गया कि देखा है और कहता है, नहीं बताऊंगा। बस गुस्से में आ अरब के मौलाना ने तुलजी मौलाना को खूब पीटा और यह वही लफ़्ज़ मार खाने में भी रटने जाते थे 'बले नमे गोयम् बले नमे गोयम् = देखा है, नहीं बतावेंगे, देखा है नहीं बतावेंगे।' तब अरब के मौलाना ने जान लिया कि यह दोही लफ़्ज़ जानता है।

१३—एक आर्य और उसकी पौराणिक भावज की वार्त्ता

एक आर्य्य पुरुष किसी ग्राम में रहते थे। दैवगति उनके जेठे भाई का देवलोक हुआ। इनकी भावज अर्थात् उस जेठे भाई की स्त्री, जिस ना को देवलोक हुआ था, पौराणिका थी। इन्होंने कहा—'हम भाई की अन्त्येष्टि वैदिक रीति से करेंगे।' पर भावज ने गरुड़पुराण सुन रक्खी थी, उसने कहा—'यह कभी नहीं हो सकता, हमारा पति मार्ग में कष्ट भोगेगा, इस लिए हम पौराणिक रीति से ही करेंगे।' भाई बिचारा चुप हो गया। भावज ने पौराणिक रीति से ही उसकी क्रिया, वैतरणी, गोदान आदि प्रारम्भ किया। भाई ने अपनी भावज से कहा—'क्यों भावज, गरुणपुराण में तो अङ्गुष्ठ प्रमाण शरीर लिखा है तो फिर उसी अङ्गुष्ठ प्रमाणवाले शरीर के ही अनुसार भाईजी के हाथ होंगे, तो जो गऊ तुमने इस ख्याल से दान की है कि इसकी पूँछ पकड़ कर वह वैतरणी पार होंगे,

सो उस अङ्गुष्ठ प्रमाणवाले शरीर के अनुसार भाईजी के छोटे छोटे हाथों में इतनी मोटी पूंछ कैसे पकड़ी जायगी ?'

पुनः जब दशगात्रादि के बाद एकादश का दिन आया तो भावज ने सम्पूर्ण वस्त्र अङ्गा, कुरता, धोती, साफ़ा, रज़ाई, गद्दा, पलङ्ग, वर्तन, हाथी घोड़ा सब कुछ महापात्र को देने को एकत्र किया। भाई ने अपनी भावज से कहा कि-'जब अङ्गुष्ठ प्रमाण जीव का शरीर गरुणपुराण में लिखा है तो उसके लिए आपने यह साढे तीन हाथ की चारपाई क्यों दी? इस पर वह अङ्गुष्ठ प्रमाण कहां लोटा २ फिरेगा? और यह पांच हाथ की रज़ाई गद्दा क्यों दिया? इसमें तो अङ्गुष्ठ प्रमाण शरीर दब जायगा और निकल भी नहीं सकेगा। जिस दिन जहां यह ओढ़ कर पड़ेगा वहीं दबा पड़ा रहेगा और इसे उठा कर उसके साथ कौन चलेगा? कुली कितने दान किये जो रथ पर उठा उठा रक्खें और फिर सिर भी गोल मटर कितना होगा, फिर ये दस गज़ का साफा कैसे बांधेंगे? और पैर भी छोटे छोटे होंगे फिर यह तेरह अंगुल का जूता वह कैसे पहिनेंगे? वह तो मये शरीर के जूते के पञ्जे ही में पड़े रहेंगे।'

भावज ने कहा-'भाई, हमसे बहस न करो, हमें करने दो।,

पुनः भाई ने अपनी भावज से कहा कि— ये रथ, हाथी, घोड़े वर्तन, वस्त्र और भोजन जो आपने महापात्र को कराये, ये तो सब भाई जी को पहुंचेंगे ही परन्तु हमारे भाई जी अफ़ीम भी खाते थे सो आधपाव अफ़ीम भी इन महाराज महापात्र जी को घोल कर पिलाओ जिसमें उन्हें अफ़ीम भी पहुंच जाय क्योंकि बिना अफ़ीम के उन्हें बड़ा कष्ट होगा, यहां तक कि उन से तो उठा बैठा न जायगा।' भावज ने कहा—'वह तो ठीक है।' उसने आधपाव अफ़ीम मंगा कर महापात्र से कहा-'महाराज,

इसे खाइये. क्योंकि इसके बिना मेरे पति को बड़ा कष्ट होगा, नहीं तो मैंने जो कुछ दिया है सब फेर लूंगी ।' पुनः भाई ने कहा-'भौजाई, तुम तो भाई जी को बहुत प्यारी थीं, यहां तक कि तुम एक क्षण भी भाई जी से अलाहिदा हो जाती थीं तो भाई जी को बड़ा कष्ट होता था, इसलिए तुम भी महापात्र के साथ जाओ, जिसमें उन्हें स्त्री भी मिल जाय, क्योंकि स्त्री के बिना भाई जी को बड़ा कष्ट होगा ।'

बस, भावज की समझ में यह सब आडम्बर आगया और उसने महापात्र से सब वापिस लिया।

१४--एक आर्य्य बहू

एक आर्य्य बहू एक पौराणिक महाशय के घर ब्याह कर गई तो पौराणिक महाशय के यहां पौराणिक प्रथा के अनुसार (जैसे कि अब भी देवियों में प्रायः प्रत्येक स्थानों पर परछन होती है) परछन होती थी, अतः उस बहू की सास मुहल्ले की स्त्रियों को बुलावा दे अपने बेटे और बहू की गांठ जोर सम्पूर्ण स्त्रियों के सहित गाते बजाते हुये बेटे बहू को लेकर देवी के मन्दिर में पहुंची। परन्तु देवी का मन्दिर विचित्र बना हुआ था, यानी देवी के मन्दिर के आगे दो पत्थर की चिड़ियों की तसवीरें अत्यन्त ही खूबसूरत बनी हुई थीं। ऐसा मालूम होता था कि मानों दोनों आपस में लड़ रही हैं। उससे कुछ ही दूर पर दो पत्थर के कुत्तों की तसवीरें उनसे भी अनोखी बनी थीं। और ऐसा जान पड़ता था कि मानों कुत्ते अभी काटने को दौड़ उठते हैं। उससे कुछ ही पीछे दो पत्थर ही के शेरों की तसवीरें सब से निराली और बड़ी ही मनोहर बनी हुई थीं। शेर पूंछ ऊपर को उठाये हुये इस भांति खड़े थे मानों टूट कर आदमियों को अभी भक्षण किये लेते हैं। उस मन्दिर के

बाहर बिल्लियों की तसवीरों के पास ज्यों ही यह आर्य्य बहू पहुंची तो अपने पति का डुपट्टा जिसमें कि इसकी गाँठ जुड़ी थी पकड़ कर खड़ी हो गई और भयभीत होकर अपनी सास से बोली कि—'हूं हूं अम्मा, बिल्लियां खा जांयगी।' यह सुन सास ने उत्तर दिया कि—'बहू तू कैसा लड़कपन करती है, पत्थर की बिल्लियां कहीं काटती हैं? बहू चुप हो कुछ आगे बढ़ी त्योंही उसे दो कुत्तों की तसवीरें नज़र आईं। बस बहू फिर गांठ जुरे डुपट्टे को पकड़ कर खड़ी हो गई और पहले से भी विशेष डरकर सास से बोली-'अरी अम्मा, कुत्ते फाड़ खांयगे।' सास ने कहा—'बहू, क्या तू पगली है, भला कहीं पत्थर के कुत्ते भी काटा करते हैं?' यह सुन चुप की हो कुछ आगे बढ़ी कि कुछ ही दूर पर उसे दो शेरों की तसवीरें दृष्टि पड़ीं, अतः बहू पुनः अपने पति का गांठवाला डुपट्टा पकड़ कर खड़ी हो डर कर ज़ोर ज़ोर रोने लगी और अपनी सास से कहा कि-'अरी अम्मा, ये शेर मुझे खा जांयगे।' इस पर सास ने बहू को डाटा और कहा कि-'तू बड़ी पागल है, मैं दो बेर कह चुकी कि पत्थर की तसवीरें हैं, यह काट नहीं सकतीं और न ये शेर खा सकते हैं।' सास बहू में झंझट होते हुआते बहू जब मन्दिर के भीतर देवियों के पास पहुंची तो उसकी सास ने देवियों की पूजा कर अपने बेटे और बहू से कहा कि-'इन देवियों के पैरों गिरो, यही तुम्हें बेटा देंगी।' यह सुन कर आर्य्य बहू से न रहा गया और वह अपनी सास से बोली कि-'माँ जब कि पत्थर की बिल्लियों ने मुझे बिल्ली बन कर नहीं काटा, और पत्थर के कुत्तों ने कुत्ते बन कर नहीं काटा और न पत्थर के शेरों ने शेर ही बन कर खाया तो यह पत्थर की देवी मुझे कैसे बेटा देगी जो हम इनके पैरों गिरें?' ठीक है—

जटिलखां पिलिलखां ने ऐसा किया।
कि मक्खी को मलमल के भैसा किया॥

९५—अल्लामियां अकेले

एक बार एक पण्डित जी एक मुसलमान साहब को अपनी कथा वार्त्ता सुना कर उससे बोले कि—'चलो यार, तुम्हें हम वैकुण्ठ का तमाशा दिखा लावें।' मुसलमान साहब ने कहा—'चलिये।' तब तो पण्डितजी ने मुसलमान साहब से कहा—'मीचो अपनी आँख' और पण्डितजी भी आंख मीच कुछ जपते रहे कि थोड़ी ही देर में पण्डितजी साहब मये उस मुसलमान भाई के वैकुण्ठ पहुंचे। ये दोनों वैकुण्ठ में एक स्थान पर खड़े थे कि थोड़ी देर के बाद वहां से एक सवारी करोड़ों आदमियों के साथ बड़े धूम धाम से निकली एक पुरुष सिंहासन पर बैठा हुआ था, ऊपर चँवरें हिल रही थीं, बाजे गाजे घंटा घड़ियाल आदि साथ बजते चले जाते थे। मुसलमान साहब ने कहा—'यह क्या है।' ये कौन साहब गये?' पंडित जी ने कहा—'यह रामचन्द्र जी महाराज हैं।' पुनः थोड़ी ही देर के बाद एक और सवारी निकली। इसके साथ भी लाखों आदमी थे और कई आदमी बीच में तख़्त पर सेहरा डाले सुथन्ना पहिरे हुए बैठे थे, ऊपर से चँवरें हिल रही थीं। यह देख मुसलमान साहब ने पूछा—'पण्डितजी, यह कौन हैं?' पण्डितजी ने कहा—'यह आपके हज़रत मोहम्मद साहब और ग़ाज़ीमियां हज़रत मूसा वग़ैरा हैं।' पुनः थोड़ी ही देर के बाद एक और सवारी निकली और इसके साथ भी हज़ारों आदमी थे। यह भी एक तख़्त पर सवार, चँवरें हिलती हुई चले गये। मुसलमान साहब ने कहा—'पण्डितजी, ये कौन हैं?'

पण्डितजी ने कहा—'यह हज़रत ईसा मसीह हैं।' इसके बाद एक बुड्ढा सा मनुष्य दाढ़ी रखाये हुए एक मरी हुई दुबली घुड़िया पर सवार अकेला निकला। जब यह भी निकल गया तो मुसलमान साहब ने पूछा—'पण्डितजी साहब यह कौन थे?' पण्डितजी ने उत्तर दिया—'अल्ला मियां थे।' मुसलमान साहब ने कहा—'यह कैसा कि रामचन्द्र के साथ इतने आदमी और हज़रत मोहम्मद साहब के साथ इतने और हज़रत ईसा मसीह के साथ इतने और अल्लामियां अकेले?' पण्डितजी ने उत्तर दिया—'भाई साहब, दुनिया मर्दुम परस्त हो गई है दुनिया के जितने आदमी थे वे सब उनके साथ हो गये, इस लिए अल्लामियां अकेले रह गये।'

मर्दुम परस्तों के कारण परमेश्वर की इबादत या प्रार्थना या परमेश्वर को सबों ने भुला दिया।

१६—तत्त्वपदार्थ की पुड़िया

एक पण्डित १६ वर्ष काशी में अध्ययन करते रहे। एक दिन पण्डितजी एक वैद्यराज के पास पहुंचे और कुछ देर बैठे रहे तो बैठे बैठे क्या देखते रहे कि वैद्यराज के पास जितने रोगी आते हैं, वैद्यराज प्रथम सभी को जुलाब दिया करते हैं। पण्डित जी ने सोचा कि अगर संसार में कोई तत्त्व पदार्थ है तो यही जुलाब है। बस पण्डित जी वैद्यराज से दो तीन जुलाब कोई सनाय का, कोई अण्डी के तेल का, कोई जमालगोटे का सीख अपने घर को चले आये। इनके गांव में आते ही यह हल्ला मच गया कि अमुक पण्डित १६ वर्ष काशी में पढ़ कर लौटा है और इधर पण्डितजी ने भी ग्रामवालों से यह कह दिया कि हम एक ऐसी तत्त्व पदार्थ की पुड़िया सीख आये

है कि उसमें दुनिया के सभी काम सिद्ध हो जाते हैं। अतः ग्रामवासियों ने यह भी जान रक्खा था। एक दिन उसी ग्राम के एक धोबी का गधा खो गया था, धोबी बड़ा हैरान था, इतने में उस धोबी की स्त्री ने कहा कि—'तू इतना क्यों हैरान होता है, क्यों नहीं उस पण्डित के पास जाकर, जो काशी १६ वर्ष पढ़ा है, एक तत्त्व पदार्थ की पुड़िया ले आता है।' धोबी ने वैसा ही किया। धोबी पण्डितजी के पास जा हाथ जोड़ बोला कि—'महाराज, मेरा गधा खो गया है।' पंडित जी बोले—'तू क्यों नहीं हमारे पास से तत्त्व पदार्थ की पुड़िया ले जाता है कि जिससे तेरा गधा मिल जाय?' पण्डितजी ने धोबी को सनाय के जुलाब की एक पुड़िया दी। धोबी को पुड़िया खाने के कुछ देर बाद पाख़ाना लगा और धोबी अपने गांव में एक तालाब पर जो गांव के मकानों के पीछे था, पाख़ाने गया। वहां उसका गधा चर रहा था। धोबी गधा पा बड़ा प्रसन्न हो गया और उसको सच्चा-विश्वास हो गया कि तत्त्व पदार्थ की पुड़िया बड़ी अच्छी है। कुछ दिन के बाद उस गांव के राजा के ऊपर एक फ़ौज चढ़ी आती थी। राजा साहब इस दुःख से बहुत ही दुःखित थे और यह विचार नित्य ही राज-सभा में प्रविष्ट रहता था। एक दिन यह धोबी राजा साहब के कपड़े धोकर ले गया और बहुत काल तक बैठा रहा। किसी ने इससे कपड़े न लिये तो धोबी ने राजा साहब के ख़िदमतगारों से कहा कि—'भाई साहब, कपड़े ले लो, मुझे और काम है।' राजा के भृत्यों ने कहा-'तुझे कपड़ों की पड़ी है, राजा साहब के ऊपर अमुक राजा की फ़ौज चढ़ी आती है सो यहां आफ़त मची है। तू अपनी निराली ही गाता है।'

तब तो धोबी ने कहा—'राजा साहब उस पण्डित को जो कि १६ वर्ष काशी में पढ़ा है बुलवा कर क्यों नहीं तत्त्वपदार्थ

की पुड़िया ले लेते जो दुश्मन की सेना अपने आप फ़तेह हो जाय।" भृत्यों ने जाकर राजा से कहा कि एक धोबी यह कहता है राजा ने धोबी को बुला कर पंडित जी की व्यवस्था पूछी। धोबी ने कहा— अन्नदाता पण्डित जी के पास एक तत्त्व-पदार्थ की ऐसी पुड़िया है कि उससे सब काम सिद्ध हो जाते हैं। एक बार मेरा गधा खो गया था, मैं पण्डित जी के पास जाकर तत्त्वपदार्थ की पुड़िया ले आया और उसे खाई कि फ़ौरन ही गधा मिल गया।' राजा को निश्चय आ गया, अतः राजा साहब ने पण्डित जी को बुलवा बड़ी प्रतिष्ठा की और पीछे हाथ जोड़ कर पूछा कि—"महाराज पण्डित जी हमारे ऊपर अमुक राजा की फ़ौज चढ़ी आती है और उस राजा की सेना बड़ी प्रबल है, सो क्या उपाय करें?" पण्डित जी ने कहा—"महाराज, हम आपकी सेना को एक ऐसी तत्त्वपदार्थ की पुड़िया देंगे जिससे कि शीघ्र ही शत्रु का पराजय और आप का विजय होगा, लेकिन आप हमें दो मन जमालगोटा मंगवा दीजिये।" राजा साहब ने वैसा ही किया। पण्डितजी ने उसे कूट पीस कर तैयार रक्खा। जब राजा पर शत्रु की सेना चढ़ आई और इस राजा की सेना भी लड़ाई के लिये वर्दी पहिन शस्त्र ले तैय्यार हुई; तब राजा साहब ने काशी के पण्डित को बुला कर कहा— महाराज, अब आप कृपा कर हमारी सेना को तत्त्वपदार्थ की पुड़िया दीजिये।" पण्डित जी ने सम्पूर्ण सेना को मये राजा के जुल्लाब दे दिया। जिस समय इस राजा की सेना शत्रु-सेना के सन्मुख पहुंची तो सारी सेना को दस्त आने शुरू होगये और यह दशा हुई कि कोई कहीं, और कोई किसी नदी, और कोई किसी नाले में धोती पतलूनें खोले पाख़ाना फिर रहा है। दूर से यह दृश्य देख शत्रुसेना के अफ़सर बड़े विस्मित हुये कि यह क्या कोई क़वायद है। कभी हम लोगों ने किसी शत्रु-सेना को इस भांति लड़ते नहीं देखा।

यह सोच शत्रु के अफ़सरों ने एक अपना जासूस इस राजा की यह नई क़वायद देखने को भेजा। जासूस ने आकर देखा कि सबों ने जुल्लाब ले रक्खा है और सबों को दस्त आ रहे हैं। जासूस ने जाकर अपने दल में ज्यांही यह वृत्तान्त कहा त्योंही उस सेना ने चढ़कर इसका विजय किया।

सच है, अन्ध विश्वास से नाश होता है। हमारे यहां भी सोमनाथ पट्टन को विदेशियों ने तत्त्वपदार्थ की पुड़िया के ही निश्चय से तोड़ा! किसी कवि ने सच कहा है—

न भूत पूर्वं न कदापि दृष्टा न श्रूयते हेममयी कुरंगी।
तथाऽपितृष्णा रघुनंदनस्य विनाशकाले विपरीत बुद्धिः॥

९७—परिहास में दुर्दशा

एक ब्राह्मण अपने घर में तीन भाई थे। उनमें जेठा भाई कुछ पढ़ा लिखा था, इस लिये कचेहरी का काम किया करता था, और दो भाई कुछ पढे लिखे न थे इससे ये काश्तकारी का काम किया करते थे। एकदिन इन मूर्ख दोनों भाइयों ने परस्पर सलाह की कि— भाईजी बड़े चालाक हैं, आप तो दिन भर कचेहरी का काम करते, साया में रहते हैं और हम से तुम से खेतों का काम लेते हैं। अब कल से हम तुम कचेहरी चला करेंगे और भाई साहब से कहेंगे कि तुम हल जोतने जाओ।' जब सायंकाल को ये दोनों मूर्ख जङ्गल से आये और बड़ा भाई कचेहरी से आया तो दोनों ने बड़े भाई से कहा—'भाई साहब, कल आप हल ले जांय और कल से हम में से एक कचेहरी जायगा।' बड़े भाई ने बहुत कुछ समझाया और कहा कि—'तुम एक अक्षर पढ़े नहीं, कचेहरी जाकर क्या करोगे?' इन्होंने कहा— 'कुछ हो, हम में से कल से एक कचेहरी जायगा।' बड़े भाई

ने बहुत समझाया पर ये दोनों दूसरे दिन हल न ले गये। जब बड़े भाई ने बैल बंधे देखे तो यह बेचारा बैल जोत हल चलाने चला गया। अब इन दोनों में से मंझला भाई आज अपने बड़े भाई की पोशाक पहिन कचेहरी पहुंचा। वहाँ बादशाह मुसलमान था और उस समय बादशाह साहब बाल बनवा रहे थे। यह मूर्ख बादशाह को देख खूब ही खिलखिला कर हँसने लगा। बादशाह ने अपने आदमियों से कहा—'यह कौन शख़्स है? इसको यहां लाओ।' और बादशाह ने उससे पूछा—'तुम एकाएक क्यों हंसे?' इसने कहा कि—हमें तुम्हारा कलौंदा सा सिर देख यह ख़याल हुआ कि अगर आपका कोई सिर काट डाले तो क्या पकड़ के उठावें, क्योंकि आपके चोटी वोटी तो है ही नहीं।' बादशाह ने यह गुस्ताख़ी देख उसे उसी समय जेल भेज दिया और कहा इसका मुक़द्दमा दूसरे दिन करूंगा। परन्तु दूसरे दिन उस मूर्ख का छोटा भाई भी पहुंचा। जब यह पहुंचा तो बादशाह ने पूछा—'तुम कौन हो? इसने कहा—'हुज़ूर हम उसके भाई हैं जिसको आपने कल क़ैद किया है।' तब तो बादशाह ने कहा—'क्योंजी, तुम्हारा भाई बड़ा ही बेवक़ूफ़ है, मैं कल हजामत बनवा रहा था कि इतने में तुम्हारा भाई आया और एकाएक खड़ा होकर हंसने लगा। हमने उसे बुलवा कर पूछा कि तुम क्यों हंसे? उसने जवाब दिया कि मैं इस लिये हंसा कि अगर आपका कोई सिर काट डाले तो चोटी तो आप के है ही नहीं, क्या पकड़ के उठावें!' यह सुन यह दूसरा मूर्ख बोला कि—'हुज़ूर वह था मूर्ख, अगर सिर में चोटी नहीं तो मुंह में लाठी घुसेड़ के उठा ले? बादशाह ने इस बेवक़ूफ़ को भी उसी के साथ जेल भेज दिया। अब तो तीसरे दिन उन दोनों मूर्खों का बड़ा भाई जो रोज़ कचेहरी में जाया करता था पहुंचा और बादशाह को सलाम

करके और बात चीत कर के मौक़ा पा बोला कि—'हुजूर, आपके यहां हमारे ही दो बैल क़ैद हैं, जिन से दो हल बन्द हैं। बादशाह ने कहा कि—आज, क्या आप भी पागल हो गये हैं, कैसी बातें करते हो ? कहीं दो बैलों से दो हल बन्द हुआ करते हैं ?' इन्होंने कहा—'हुजूर, वह इसी क़िस्म के बैल हैं।' तब तो इन्होंने उनकी मूर्खता का सारा समाचार वर्णन किया कि इस इस तरह उन दोनों मूर्खोंने मुझे हल जोतने को भेजा और उन दोनों ने आपकी ख़िदमत में आकर यह गुस्ताख़ी की। बादशाह ने उन्हें मूर्ख जान छोड़ दिया।

मूरख का मुख बम्ब है, निकसत बचन भुअंग।
ताकी औषधि मौन है, विष नहिं व्यापत अंग॥

८६—बहुत चालाकी से सर्वस्व नाश

एक स्थान से चार आदमी बाहर व्यापार के लिये निकले। कुछ दिन बाहर रह कर चारों ने अच्छा धनोपार्जन किया। जिस समय वे चारों घर को लौटे तो मार्ग में एक स्थान पर वे रात में ठहर गये। अब जिस समय भोजन भाजन की फ़िक्र हुई तो चारों की यह सम्मति पड़ी कि दो आदमी जाकर भोजन ले आवें। अतः उनमें से दो आदमी भोजन लेने गये और दो स्थान पर असबाब ताकने में रहे। परन्तु अब वहां यह दशा हुई कि जो दो आदमी भोजन लेने गये उन्होंने तो यह सम्मति की कि—'यार ऐसा भोजन ले चलो कि जिस में उस भोजन को खाकर वे दोनों आदमी मर जांय और उनका द्रव्य हम तुम आधा आधा बांट लें !' यह सोच विष के लड्डू ले आये और इन स्थानिक दोनोंने यह सम्मति की कि—"वे ज्योंही भोजन लेकर आवें, दोनों को जान से मार दो और

दोनों का द्रव्य हम तुम दोनों बांट लें।' निदान उन दोनों के आते ही इन सालिक दोनों ने उन्हें तलवार से मार दिया और उनका द्रव्य ले चलने की तैयारी की। जब चलने लगे तो सोचा कि यार यह भोजन जो वे दोनों लाये थे रक्खा है, इस लिये आओ प्रथम भोजन कर लें, फिर चलें। परन्तु भोजन में तो वहां विष के लड्डू थे। ज्योंही उन दोनों ने वे लड्डू खाये कि कुछ देर के बाद दोनों सो गये।

अब आप सोच लें कि चालाकी से क्या परिणाम निकला?

११--अभ्यास

एक गड़ेरिये के पास दो बड़े शिकारी कुत्ते थे। गड़ेरिया रोज़ उन्हें दो चार कोस दौड़ाता था और खाने को उन्हें साधारण ही बेझड़ की रोटी और मट्ठा दिया करता था। एक साहब बहादुर के पास भी दो कुत्ते थे जिनको कि साहब बहादुर रोज़ क़लिया मंगा मंगा खिलाया करते थे और उनको बड़ी सजावट के साथ रक्खा करते थे। एक दिन गड़ेरिये के कुत्तों की प्रशंसा सुन कर कि वे बड़े शिकारी हैं, साहब ने गड़ेरिये को बुला कर कहा-'शिकार खेलने में तुम अपने कुत्ते हमारे कुत्तों के साथ छोड़ोगे?' गड़ेरिये ने कहा हाँ और अपने कुत्ते ला साहब बहादुर के साथ छोड़े। गड़ेरिये के कुत्ते साहब बहादुर के कुत्तों से आगे निकल गये। यह देख साहब बहादुर बड़े शरमाये और गड़ेरिये से बोले कि- 'वल गड़ेरिया, तुम अपने कुत्तों को क्या खिलाता है?' गड़ेरिये ने जवाब दिया कि 'बेझड़ की रोटी और मट्ठा' साहब बहादुर ने जांच कर के देखा तो गड़ेरिया वास्तविक में बेझड की रोटी और मट्ठा ही खिलाता था। साहब बहादुर ने गड़ेरिये से कहा कि— 'तुम अपने कुत्ते हमको देदे।' गड़ेरिये ने कहा-'हम अपने कुत्ते

हुजूर को कभी नहीं दे सकते।' तब साहब बहादुर ने कहा-'अच्छा' अगर टुम डोनों कुट्टे नहीं देटा टो एक कुट्टा हमारे कुट्टे के साठ वडल डो।' गड़ेरिये ने एक कुत्ता बदल दिया। साहब का ख्याल था कि यह कुत्ता जब गड़ेरिये के यहाँ केवल बेफड़ की रोटी और मट्ठा पाता है, तब तो इतना शिकारी है और जब रोज क़लिया पायेगा तो बड़ा शिकारी हो जायगा। बस, साहब बहादुर कुत्ते को ले जाकर क़लिया खिलाने लगे, लेकिन कुत्ता साहब बहादुर के यहां ज़ंजीर में बंधा रहता था और गड़ेरिया साहब बहादुर के कुत्ते को अपने कुत्तों के साथ रोज़ दो चार कोस दौड़ाना और शिकार को तोड़ना सिखलाता रहा। कुछ अरसे के बाद साहब बहादुर ने गड़ेरिये से कहा कि—'अब टुम हमारे कुट्टों के साठ अपने कुट्टे छोड़ो।' गड़ेरिये ने कुत्ते छोड़े तो गड़ेरिये के कुत्ते फिर आगे निकल गये। साहब फिर भी बड़े शरमिन्दा हुये और गड़ेरिये को कुछ देकर उसका दूसरा कुत्ता भी उन्हों ने ले लिया और दोनों कुत्तों को खूब क़लिया वगैरा खिला तैयार किया। लेकिन गड़ेरिया साहब के कुत्तों को ले रोज़ दौड़ाना और शिकार को दबोचना सिखाता रहा। कुछ दिन में साहब ने गड़ेरिये को बुला कर कहा कि—अच्छा टुम अब अपने कुट्टों को हमारे कुट्टों के साठ छोड़ो। परन्तु फिर भी गड़ेरिये ने ज्योंही अपने कुत्ते छोड़े, तो इसके कुत्ते आगे निकल गये। सच है—

अभ्यास सदृशं नैव लोकेऽस्मिन्हितसाधनम्।
अतः स एव कर्तव्यः सर्वदा साधु वर्त्मना॥

१००—यथा राजा तथा प्रजा

एक राजा के यहां एक बार एक पंडित कहीं से पधारे।

राजा ने पंडितजी से पूछा कि—'महाराज, इस समय हमारी एक घोड़ी और गाय दोनों गर्भिणी हैं, आप बतावें कि दोनों क्या व्यायेंगी ?' पंडित ने उत्तर दिया कि—'महाराज, गाय बछड़ा और घोड़ी बछेड़ा व्यायेगी।' पंडित उनके व्याने के समय तक राजा के ही यहाँ ठहरे रहे। जिस समय वे दोनों व्यायीं तो राजा के कर्मचारियों ने बछेड़े को उठा कर गौ के नीचे और बछड़े को उठा कर घोड़ी के नीचे कर दिया और राजा साहब को ख़बर दी कि–'महाराज, आपकी गाय बछेड़ा और घोड़ी बछड़ा व्यायी है, आप चल कर देख लें।' राजा ने जाकर देखा तो गाय के नीचे बछेड़ा और घोड़ी के नीचे बछड़ा था। राजा ने कहा—'पण्डितजी, आप तो कहते थे कि गाय बछड़ा और घोड़ी बछेड़ा व्यायेंगी किन्तु यहां तो उलटा हुआ। अतः अब आप को एक कौड़ी भी नहीं दी जायगी और आप अब हमारे राज्य से निकल जाइये।' पण्डितजी ने सोचा कि आख़िर तो अब हम राज्य से जाते ही हैं, लाओ हमारे कपड़े बहुत मैले हो गये हैं, उन्हें तो धुलालें। अतः उन्हों ने अपने कपड़े धोबी के यहाँ धुलने को डाले। धोबी कई दिन तक कपड़ा ही देने न आया। जब पंडितजी उस धोबी के यहां अपने कपड़े मांगने गये तो उसने कहा—'महाराज, वे कपड़े तो मैं नदी में धोने गया था सो पानी में आग लगने से जल गये।' यह सुन पंडित ने राजा के यहां फरियाद की। राजा ने धोबी को बुला कर कहा—'क्योंरे, तू पंडित जी के कपड़े क्यों नहीं देता ?' धोबी ने कहा—'सरकार, मैं पंडित के कपड़े नदी में धोने ले गया था सो नदी के पानी में आग लगने के कारण कपड़े जल गये।' राजा ने कहा–'क्योंरे, कहीं पानी में भी आग लगती है ?' तब तो धोबी ने कहा—

अश्वन्यां जायते वच्छा कामधेनु तुरंगमा ।
नद्यां जायते वन्हि: यथा राजा तथा प्रजा ॥

'महाराज, अगर घोड़ी बछड़ा ब्या सकती है और गौ बछेड़ा ब्या सकती है तो नदी में भी आग लग सकती है।"

बस, राजा ने समझ कर पण्डित को प्रतिष्ठापूर्वक विदा किया और धोबी ने उन के कपड़े भी देदिये।

१०१—आशा में निराशा

एक पुरुष सन के वृक्षों को बड़ा सोहावना और उनके पुष्पों को सुवर्ण-कान्ति देख इस प्रयोजन से उनकी सेवा करने लगा कि जब ये वृक्ष इतने खूबसूरत हैं और इनके पुष्पों की कान्ति सुवर्ण के समान है तो जाने इनके फल कैसे होंगे! परन्तु वहाँ जब सन के वृक्षों के फल पुष्ट हुये तो हवा चलने पर वे छुनछुनाने लगे। यह देख उस पुरुष ने कहा—

सुवर्ण सदृश पुष्प फलं रत्नं भाविष्यति ।
आशया सेवते वृक्षं पश्चात् छुनछुनायते ॥

१०२—बुद्धि और भाग्य

एक बार बुद्धि और भाग्य में झगड़ा हुआ। बुद्धि कहती थी मैं बड़ी और भाग्य कहता था मैं बड़ा। बुद्धि ने भाग्य से कहा कि-'यदि तू बड़ा है तो यह गड़ेरिया जो वन में भेड़ें चरा रहा है, इसे बिना मेरी सहायता के तू बादशाह बना दे तो मैं मान लूँगी कि तू बड़ा है।' यह सुन भाग्य ने उसको बादशाह बनाने का प्रयत्न प्रारम्भ किया। भाग्य ने एक बहुमूल्य खड़ाऊँ का जोड़ा जिसमें लाखों रुपये के जवाहिरात जड़े हुये थे लाकर गड़रिये के आगे रख दिया। गड़रिया उसको पहिन कर फिरने

लगा। फिर भाग्य ने एक सौदागर को वहां पहुंचा दिया। सौदागर उन खड़ाउओं को देख चकित हो गया और गड़रिये से बोला कि— 'तुम खड़ाऊँ का जोड़ा बेचोगे ?" गड़रिये ने कहा—"ले लो।" सौदागर ने कहा—"क्या दाम लोगे ?" गड़रिये ने कहा—"और दाम क्या बताऊँ. मुझे रोज़ रोटी खाने के लिए गांव में जाना पड़ता है अगर तुम दो मन भुने चने इस खड़ाऊँ के जोड़े की कीमत दे दो तो मैं चने चबा कर भेड़ों का दूध पी लिया करूँगा और गाँव जाने के दुख से छूट जाऊँगा।" अभिप्राय यह है कि इस दुर्बुद्धि गड़रिये ने ऐसी बहुमूल्य खड़ाऊँ जिसमें एक एक हीरा लाखों रुपये का था दो मन भुने चनों में बेच डाली। यह देख कर भाग्य ने और बल दिया, उस सौदागर को एक बादशाह के दर्बार में पहुंचा दिया जिस समय वहाँ सौदागर ने खड़ाऊँ बादशाह के आगे रक्खी बादशाह देख कर चकित हो गया और उसने सौदागर से पूछा कि—"तुमने यह खड़ाऊँ का जोड़ा कहां से लिया ?" सौदागर ने जवाब दिया कि—"एक बादशाह मेरा मित्र है, उसने ये खड़ाऊँ मुझे दी हैं।" बादशाह ने पूछा—"क्या उस बादशाह के पास ऐसी और खड़ाऊँ हैं।" सौदागर ने उत्तर दिया कि— 'हां हैं।" बादशाह ने पूछा—"क्या उस बादशाह के कोई लड़का भी है ?' सौदागर ने कहा—' हां उसके लड़का भी है।" यह सुन कर बादशाह ने कहा—"जनाब मेरी लड़की की सगाई उस बादशाह के लड़के से करा दो।" यह सब बातें तो भाग्य के बल से हुई किन्तु सौदागर को बादशाह की पिछली बात सुन कर बड़ा आश्चर्य्य हुआ, क्योंकि उसे ज्ञात था कि खड़ाऊँ का जोड़ा तो मैंने गड़रिये से लिया है न कोई बादशाह है, न बादशाह का लड़का। परन्तु इस झूठ बात के मुंह से निकल जाने से उसने सोचा कि अगर इस समय मैं अपने

झूठ का भेद खोलता हूं तो बादशाह न मालूम क्या दण्ड देवे-गा। यह ख़्याल कर उसने विचार किया कि जिस तरह हो मुझे बादशाह के शहर से निकल चलना चाहिये। अतः उसने बादशाह से कहा कि-'मैं आपकी लड़की की सगाई करने के लिए जाता हूं।' यह कह जिस ओर से वह आया था उसी ओर को पुनः रवाना हुआ। जब वह उस स्थान पर पहुंचा जहां उसने गड़रिये को देखा था तो क्या देखता है कि वह गड़रिया उससे विशेष मूल्य का खड़ाऊं का जोड़ा पहिन रहा है सौदागर यह देख हैरान हो गया। उसने सोचा कि यह कोई सिद्ध पुरुष है जिसको इस प्रकार की वस्तुयें कुदरत से प्राप्त हो जाती हैं। उसने सोचा कि यहां ठहर कर इस का हाल मालूम कर लेना चाहिये। यह सोच कर उसने वहां डेरे लगा दिये। उसके पास तांबा लदा हुआ था, उसे उतार कर उसने वृक्ष के नीचे एक ओर रख दिया। जब दोपहर हुआ तो गड़रिया धूप का मारा उस वृक्ष के नीचे आया जहां तांबे के ढेर पड़े हुए थे वह उस ढेर के सहारे अपना सिर लगा कर सो गया। उस के तकिया लगाने से भाग्य ने उस तांबे को सोना कर दिया जब सौदागर ने यह देखा तब उसे ख़्याल आया कि जिस मनुष्य के सिर लगाने से तांबा सोना हो जाता है उस को बाद-शाह बनाना कौन बड़ी बात है। यह सोच कर सौदागरने कुछ गांव मोल ले लिये और उन गांवों में दुर्ग बनाना प्रारम्भ कर दिया और कुछ सेना भी रख ली। जब सब सामान तैयार हो गया तब उस गड़रिये को पकड़ कर दुर्ग में ले गया और उसे अच्छे बादशाही कपड़े पहना दिये। मन्त्री सेवक आदि सभी रख दिये। पुनः उस बादशाह को चिट्ठी लिखी कि—"हमारे बादशाह ने आपकी लड़की की सगाई स्वीकार कर ली है जो तिथि आप नियत करें बरात उसी दिन पहुंच जाय।' बादशाह

ने नियत तिथि कर लिख भेजा। इधर व्याह की तैयारियां होने लगीं। एक दिन जब दर्बार लगा हुआ था सारे मन्त्री आदि बैठे हुये थे गड़रिया बादशाही तख्त पर तकिया लगाये बादशाह बना बैठा था उस समय गड़रिये ने सौदागर से कहा कि-'तुम मुझे छोड़ दो देखो मेरी भेंड़ें किसी के खेत में चली जांयगी तो वह मुझे पीटेगा।' यह सुन कर सब लोग हंस पड़े और सौदागर दिल में सोचने लगा, इसका क्या इलाज किया जाय। कहीं उस बादशाह से इसने ऐसा कह दिया तो मैं बे प्रयोजन मारा जाऊंगा। पुनः सौदागर ने उस गड़रिये से कहा कि-'अगर तुम फिर कभी ऐसे शब्द कहोगे तो तुम्हें तलवार से मार दूंगा, जो कुछ कहना हो मेरे कान में कहना। निदान व्याह की तिथी समीप आगई। सौदागर बरात लेकर रवाना हुआ। जब बादशाह के शहर के समीप आ गया और उधर से बादशाह का मंत्री बहुत से कामदारों और सेना के सहित अगवानी(पेशवाई) को आया तो उन्हें देख कर गड़रिये को ख़याल आया कि शायद मेरी भेड़ें उनके खेत में जा पड़ीं और ये मेरे पकड़ने को आये हैं परन्तु बात कान में कहे जाने के कारण किसी को विदित न हुई और लोगों ने सौदागर से पूछा कि-'शहज़ादे साहब क्या कहते हैं?' सौदागरने जवाब दिया-"जितने मनुष्य अगवानी को आये हैं सबको पांच पांच लाख रुपया दिया जाय।' और सबको पाँच पांच लाख रुपया दिया गया। शहर में प्रसिद्ध होगया कि एक बड़े भारी बादशाह का लड़का व्याह के लिए आया है जो प्रत्येक पुरुष को लाखों रुपये इनाम देता है सैकड़ों हज़ारों का नाम ही नहीं जानता। बादशाह भी डरा कि मैंने बड़े भारी बादशाह से सम्बन्ध जोड़ लिया है परमेश्वर प्रतिष्ठा रक्खे। उस गड़रिये का व्याह बादशाह की लड़की से हो गया।

यहां तक तो बुद्धिमान सौदागर के सिलसिले से भाग्य कृतकार्य्य हुई। परन्तु रात को जब गड़ेरिया अकेला बादशाही महल में सोया और वहां झाड़ फानूस लैम्प जलते देखे तो इसको ख़याल आया कि जंगल में जो भूनों की आग सुनी थी वह यही है। मैं इसमें जल कर मर जाऊंगा। वह गड़ेरिया यह सोच ही रहा था कि इतने में बादशाह की लड़की गड़ेरिये की तरफ़ आई और जब उसने ज़ेवरों की आवाज़ सुनी तो उसे ख़याल आया कि कोई चुड़ैल मेरे मारने के वास्ते आ रही है। यह सोच कर वह झटपट एक दर्वाज़े की ओट में छिप गया। शाहज़ादी ने देखा कि शाहज़ादा यहां नहीं है, वह दूसरे कमरे में चली गई। उसके जाते ही इसे ख़याल आया कि अभी एक चुड़ैल से बचा हूं न मालूम यहाँ कितनी २ और चुड़ैलें आवें, इस लिये यहां से भाग चलना चाहिये। यह सोच ही रहा था कि उसे एक ज़ीना ऊपर की तरफ़ देख पड़ा। वह झट ऊपर चढ़ गया और उसने एक तरफ़ छज्जे को हाथ डाल कर नीचे कूद कर भागने का इरादा किया। उस समय अक़्ल ने भाग्य से कहा कि—'देख, तेरे बनाने से यह बादशाह न बना बल्कि अब गिर कर मरेगा।'

समाने हस्त पादादौ देहार्थाने च वैभवे।
यो निन्दां विन्दते नित्यं समूर्ख इति कथ्यते॥

१०३—नाक की ओट में परमेश्वर

दक्षिण देश की ओर प्रथम राजाओं के यहां नाक, कान, हस्त पादादि छेदन का दण्ड दिया जाया करता था इसी प्रथा के अनुसार एक बार वहां के एक अपराधी को नासिका-छेदन का दण्ड दिया गया। वह अपराधी राजा के फाटक से निकलते

हो कूद कूद कर नाचने और तालियां पीट पीट बड़ा ही प्रसन्न होने लगा। लोगों ने पूछा—"तू इतना प्रसन्न क्यों होता है?" उसने कहा कि—"नाक की ओट में परमेश्वर था, सो मुझे तो नाक कटने से परमेश्वर दीखने लगा।' इस प्रकार नाच २ कर इसने नाक कटाने पर कई मनुष्यों को तैयार किया। इसने कहा "जिस समय तुम नाक कटा लोगे तुम्हें परमेश्वर दीखेगा।' लोगों ने विश्वास पर आ नाकें कटा लीं। इस एक नकटे नाचने वाले ने उन लोगों से कहा कि—"आखिर तो अब आप लोगों की नाकें कट ही गई इस लिए तुम भी नाचने लगो और कह दो कि हमें भी परमेश्वर दीखने लगा नहीं तो लोक में बड़ी निन्दा होगी।' यह सुन वे कई मनुष्य नाचने और यह कहने लगे कि हमें भी नाक कटने से परमेश्वर दीखने लगा। इस प्रकार होते २ चार हज़ार नकटे मनुष्यों का समुदाय बन गया एक बार ये नकटे नाचते २ एक राज्य में पहुँचे तो राजा को खबर मिली कि चार हज़ार नकटों का झुण्ड इस भांति नाचता फिरता है और वे कहते हैं कि नाक की ओट में परमेश्वर था सो अब दीखने लगा है अतः राजा ने उन सब को बुलाया और पूछा—तो ये सब राजा के सामने भी वैसे ही नाचने लगे और बोले कि-"महाराज हमें परमेश्वर दीखता है।' राजा ने कहा-'अगर ऐसा है तो हम भी नाक कटावेंगे।' अपने ज्योतिषी जी से राजा बोला कि—'ज्योतिषी जी, आप पत्रा में देखिये कि हमारे नाक कटाने का मुहूर्त कब बनता है?' ज्योतिषी जी ने पत्रा निकाला और मीन मेष कर कहा—'आपके नाक कटाने को माघ वदी द्वीज को प्रातःकाल बहुत ही अच्छा है।' धन्य ज्योतिषी जी, आपके पत्रे में नाक कटाने का भी मुहूर्त निकला। इसके बाद वे नकटे चले गये। राजा के दीवान ने घर जा यह बात अपने बाप से कही। उसकी उमर अस्सी

वर्ष के क़रीब थी और वह ४० वर्ष तक राजा के यहां दीवान भी रह चुका था। बुड्ढा यह सुन दूसरे दिन राजा के यहां जाकर राजा को अभिवादन कर नाक कटाने का सम्पूर्ण वृत्तान्त पूछ बोला कि—"अन्नदाता, मैंने आपका नमक पानी तमाम उमर खाया है और मैं बुड्ढा भी हूं इसलिए आप प्रथम मुझे नाक कटा कर देख लेने दीजिये, अगर मुझे नाक कटाने पर परमेश्वर दीखे तो आप नाक कटावें नहीं तो आप न कटावें।' राजा के यह बात मन आ गई, अतः उसने ज्योतिषी जी से कहा कि—'ज्योतिषी जी, अब आप हमारे पुराने दीवानजी के नाक कटाने का मुहूर्त देखिये। ज्योतिषी जी ने पुनः पत्रा निकाल मीन, मेष, वृष, मिथुन कहा कि-'पुराने दीवानजी के नाक कान कटाने का मुहूर्त पौष सुदी पूर्णिमा को अच्छा है। राजा ने पौष सुदी पूर्णिमा को नकटों को बुला एकत्र किया और दीवान जी को बुलवा उनसे कहा—'लो, इनकी नाक काटो और परमेश्वर दिखाओ।' उनमें से एक ने बहुत तीक्ष्ण छुरा ले दीवान जी की नाक काट ली। दीवान जी बिचारों को बड़ा ही कष्ट हुआ। दीवान हाथ से कटी नाक पकड़ के रह गये। पुनः नकटों ने दीवान जी की नाक काट उनके कान में कहा कि—'अब आपकी नाक तो कट हो गई है, इस लिये तुम भी नाचने कूदने लगो और यह कहने लगो कि हमें परमेश्वर दीखता है, नहीं तो लोक में बड़ी निन्दा होगी।' दीवान जी ने राजा से साफ़ कह दिया कि—'ये सब बड़े ही धूर्त्त हैं, इन्होंने हज़ारों आदमियों की व्यर्थ नाकें काट डालीं, नाक कटने पर परमेश्वर वरमेश्वर कुछ ख़ाक नहीं दीखता बल्कि अभी नाक काट कर हमारे कान में इन्होंने ऐसा ऐसा कहा। राजा ने यह भेद जान उन सब को पकड़वा २ उचित दण्ड दे इस गिरोह को तोड़ा।

आप लोग दुनिया का प्रवाह देखिये कि ऐसे ऐसे मतों ने भी प्रचार पाया।

हरित भूमि तृण संकुलित, समुझि परै नहिं पन्थ।
जिमि पाखण्ड विवाद से, लुप्त होत सद ग्रन्थ॥

१०४-प्रकृति ही परमेश्वर के प्राप्त कराने में साधन है

एक बार एक ब्राह्मण के पच्चीस वर्ष की उम्र में लड़का पैदा हुआ, परन्तु लड़का पैदा होने के दूसरे ही दिन ब्राह्मण आवश्कार्य विदेश चला गया और पच्चीस वर्ष पर्यन्त यह ब्राह्मण विदेश में रहा, जब तक यहां इसका पुत्र पूर्ण युवा हो गया, उसके दाढ़ी मूछें सभी निकल आई। लड़के को बाप की चिट्ठी पत्री यद्यपि आया करती थी पर वह अपने बाप को पहिचानता नहीं था, क्योंकि इसके जन्म के दूसरे ही दिन बाप विदेश चला गया था और न बाप ही इसे पहिचानता था। एक दिन यह युवा लड़का अपने किसी कार्य्य के लिए किसी गाँव को गया और जब उस कार्य्य को करके लौटा तो दूर होने के कारण रात को किसी गांव में एक वैश्य के घर पर टिक रहा। इतने में इसका बाप भी, जो पच्चीस वर्ष बाहर रहा था, आकर उसी वैश्य के घर पर ठहर गया और रात भर ये पिता पुत्र एक ही साथ लेटे रहे, परन्तु एक दूसरे को न पहिचान सके लड़का प्रातःकाल उठ कर घर चला आया और बाप झाड़े जङ्गल कुल्ला दन्तधावन करके कुछ देर में चला, इस कारण लड़के से कुछ देर बाद में आया। लड़का मकान के अन्दर खड़ा था। लड़के ने इसे देख कहा—'यह कौन हमारे घर में घुसा आता है?' माता ने पुत्र से कहा—'बेटा, यह तो तुम्हारे

पिता हैं।' पुत्र ने यह सुन पिता को प्रणाम किया और कहा—'माँ, हम और पिताजी तो रात भर एक ही स्थान पर लेटे रहे, पर एक दूसरे को न पहिचान सके, आपके बतलाने से अब जाना है।' और यही शब्द बाप ने कहे।

इसका दार्ष्टान्त यह है कि इस जीवात्मा रूप पुत्र के जन्मते ही पिता परमात्मा अलग हो जाते हैं और यह सांसारिक प्रयत्नों में फँसा रहता है, परन्तु जिस प्रकार माता ने पुत्र को पिता का ज्ञान कराया था, इसी भांति जब प्रकृति माता पुत्र जीवात्मा को पिता परमात्मा का बोध कराती है तो यह तुरन्त उसे पहिचान लेता है जिसके लिए उपनिषद् तथा शास्त्रों में कहा है—

अनित्यै द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यं यदिता पुत्राद्युभया दृष्टान्तान्।

१०५—कलियुग में अधर्म ही फलता है

एक शहर में एक वैश्य की दूकान थी। वैश्य बेचारा बड़ा ही धर्मात्मा, सीधा और सच्चा तथा ईश्वरभक्त था। प्रातःकाल से उठ अपने नियम धर्मों का पालन, सत्य बोलना, धर्म से जीविका करनी आदि आदि सेठजी में विचित्र गुण थे, परन्तु इस प्रकार के व्यवहार से सेठ जी की पैदा तो बहुत थोड़ी थी लेकिन सेठजी अपनी सद्वृत्ति और संतोष से सुखी रहा करते थे। कुछ काल के पश्चात् एक अहीर ने आकर सेठजी की दूकान के सामने जो एक दूसरी दूकान गिरी हुई पड़ी थी उसे किराय में ले ली। अहीर के पास उस समय केवल १॥) की कुल पूंजी थी। अहीर उसी दिन दो चार पैसे के बरतन भांड़े कुम्हार के यहां से ला १।) रुपये का दूध लाकर उसमें उतना ही पानी मिला दूध बेचने लगा। इस प्रकार चौधरी साहब के तो उसी दिन दूने हुए। तीसरे दिन चौधरी साहब ने २॥) रु० का

दूध ला उतना ही पानी मिला दूध बेच डाला। अब तो चौधरी साहब के फिर भी दूने हुये। इस भांति कुछ ही दिन में चौधरी साहब मालामाल हो गये और थोड़े ही दिन पहले जहां चौधरी एक लंगोटी लगाये फिरते थे वहां अब उनके ठाठ ही निराले हो गये, यहां तक कि उस गिरी हुई दुकान को मोल ले चौधरी जी ने तिखण्डा खड़ा कर दिया और उनके बहुत से नौकर चाकर भी रहने लगे। सेठ जी यह दृश्य देख बड़े ही विस्मय को प्राप्त हुये और मन में कहने लगे कि लोग जो कहा करते हैं, क्या सचमुच कलियुग में अधर्म ही करने से सुख मिलता है? सेठ जी इन संकल्प विकल्पों ही में थे कि इतने में एक बड़े विद्वान् महात्मा उस ग्राम में पधारे। सेठ जी ने जब सुना कि यहां एक बड़े विद्वान् महात्मा आये हुये हैं तो सेठ जी ने महात्मा की शरण में आ उनको दण्ड प्रणाम कर कहा कि— महाराज, क्या कलियुग में अधर्म ही करने से सुख मिलता है? देखो हम नित्य प्रातःकाल उठ कर शौच दन्तधावन, पञ्चयज्ञ का सेवन कभी किसी जीव को दुःख न देना, सत्य बोलना आदि आदि नेम धर्मों में ही दिन व्यतीत करते हैं सो हमें तो खाने भर को भी कठिनता से पैदा होता है और एक अहीर ने हमारी दूकान के आगे अभी थोड़े ही दिन से दूकान रक्खी है जिस समय उसने दूकान रक्खी थी, उसके पास कुल १॥) था, लेकिन ज्योंही उसने दूध में आधा पानी मिला मिला बेचना प्रारम्भ किया कि लाखों रुपये का धनी हो गया। इससे ज्ञात होता है कि आज कल अधर्म से ही उन्नति होती है।' महात्मा ने कहा—'सेठ जी हम इसका उत्तर तुम्हें आठ रोज़ के बाद देंगे।' और महात्मा ने सेठ जी से आठ हाथ का गहरा गढ़ा खोदवा कर सेठजी को उसके भीतर खड़ा किया और लोगों से कहा कि तुम लोग

कुयें से पानी भर भर कर ज़रा इस गढ़े में तो डालो। जिस समय जल सेठ जी के गांठों तक आया तो महात्मा ने पूछा—'कहो सेठ जी, आपको कुछ कष्ट तो नहीं मालूम होता।' सेठ जी ने कहा—'महाराज, अभी तो कोई कष्ट नहीं मालूम देता।' पुनः महात्मा ने उस गढ़े में दस बीस घड़े पानी और छुड़ाये. जब जल सेठ जी के कमर तक आया तो महात्मा ने सेठजी से कहा—'कहो सेठ जी, आपको कोई कष्ट तो नहीं ?' सेठ जी ने कहा—'कोई कष्ट नहीं ?' पुनः महात्मा ने फिर गढ़े में और जल छुड़वाया। जब जल सेठ की छाती तक आया तो फिर उनसे पूछा, पर सेठ ने फिर भी यही उत्तर दिया कि—'कोई कष्ट नहीं।' महात्मा ने फिर कुछ जल छुड़वाया। जब सेठजी के कण्ठ तक जल आया तो महात्मा ने पूछा कि—'सेठ जी अब कहिये कोई कष्ट तो नहीं ?' सेठ जी ने कहा—'महाराज, कोई कष्ट नहीं।' अब आप लोग विचार लें कि कण्ठ तक जल से डूबा सेठ खड़ा है और कहता है कि—'कोई कष्ट नहीं।' परन्तु अबकी बार महात्मा ने ज्योंही दस बीस घड़े गढे में और डलवाये कि त्योंही सेठ डूबने लगे और ऊपासांसी ले बोले—' महात्माजी. हमें शीघ्र इस गढे से निकालो नहीं तो दम निकलती है। महात्माजी ने सेठ जी को निकाल कर उनसे कहा कि—''आप अपने प्रश्न का उत्तर समझ गये ?' सेठजी ने कहा "महाराज, नहीं समझे।' महात्माजी ने कहा—''जब आपको गांठों तक पानी आया और मैंने पूछा तो आपने कहा कि मुझे कोई कष्ट नहीं, पुनः जब आपको कमर तक जल आया और मैंने पूछा तो आपने कहा 'मुझे कोई कष्ट नहीं' यहां तक कि आपके कण्ठ तक जल आ गया और १० ही घड़े की कमी था कि आप डूब जाते, पर आपने कहा 'मुझे कोई कष्ट नहीं।' इसी भांति उस अहीर के अब कण्ठ तक पाप भर आये हैं।

अब डूबने में कमी नहीं, परन्तु तुमको वह सुखी मालूम पड़ता है और उसे भी नहीं जान पड़ता है।' किसी कविने क्या ही सत्य कहा है—

अन्यायोपार्जितं द्रव्यं दशवर्षाणि तिष्ठति ।
प्राप्ते एकादशे वर्षे समूलंच विनश्यति ॥
अधर्मेणैधते तावत् ततो भद्राणि पश्यति ।
ततः सपत्नां जयति समूलस्तु विनश्यति ॥ मनु० ॥

१०६--खूबसूरती और बुद्धि

एक तहसीलदार बड़े ही बुद्धिमान थे यहां तक कि उनसे बड़े बड़े अफसर बड़े बड़े मामलों में राय लिया करते थे, लेकिन वे कुछ बदसूरत थे। यह देख साहब कलक्टर ने उनसे एक दिन मखौल किया कि—'क्यों तहसीलदार साहब, जिस समय खुदा के यहां खूबसूरती बंट रही थी तब आप कहां थे?' तहसीलदार ने उत्तर दिया—'उस समय जहां बुद्धि बँट रही थी वहां था।' यह सुन कलेक्टर शरमिन्दा हो गये।

१०७--बच्चों को हमीं बुरा बनाते हैं

पैदा होने के समय सम्पूर्ण बच्चों की आत्मायें शुद्ध और पवित्र हुआ करती हैं, माँ बाप ही चाहे बच्चों को सत्यवक्ता, चाहे झूठा, चाहे चोर, चाहे साह, चाहे व्यभिचारी, चाहे सदाचारी बना दें। यथा—

एक मनुष्य को कुछ झूठ बोलने तथा चाल से बात करने की बान थी, अतः उसके बच्चे की भी आदत वैसी ही पड़ने लगी। बाप ने सोचा कि बच्चा भी हमारा वैसा ही हुआ जाता है, इसे डर से उसने उसे उसकी ननसाल भेज दिया। जब कुछ

दिन के बाद यह पुरुष अपनी ससुराल बच्चों के पास गया तो इसने सोचा कि भला बच्चे की परीक्षा तो लें कि इसका झूँठ बोलना कहां तक छूटा है? अतः इसने कहा कि—बेटा, आज गंगाजी में एक बड़ी भारी पहाड़ी पट गिरी।' बच्चा बोला कि—'दादा, छींटें तो मेरे ऊपर भी आई थीं।'

१०८—काठ का उल्लू

एक सेठ ने एक लोधे के हाथ अपना गाड़ी बैल अपने लड़के की सवारी के लिए किसी गाँव को भेजा। वह गाँव सेठ के गांव से २० कोस की दूरी पर था और रास्ता १० कोस कच्चा और १० कोस पक्का था। गाड़ी बहुत दिन से ऊंगी हुई न थी, इस कारण बोलती थी। पक्की सड़क पर तो गाड़ी बराबर बोलती चली गई परन्तु कच्ची पर पहुंची तो गाड़ी का बोलना बन्द हो गया। यह देख लोधे ने गाड़ी फौरन ही खड़ी कर दी और गाड़ी का बांस पकड़ कर रोने लगा, बोला—हाय, तुमका का होइगा? अबहीं तक तो तुम ब्वालति बतलात अच्छी भली चली आइउ, अब न जाने तुम का क्या होइगा।' अतएव लोधे ने गांव के लोगों से पूछा कि—'क्यों भाई, कोई वैद्य भी इस गांव में रहता है?' लोगों ने कहा—हाँ, उस तरफ़ रहते हैं।' यह जाकर वैद्यराज के पास रोने लगा और बोला कि—'महाराज, मैं फलाने गांव से गाड़ी लैके चलो सो १० कोस पक्की सड़क सड़क तो नीके बोलति बतलात चली आई पर अब न जाने का होइगा जो वहिका बचन बन्द होइगा।' वैद्यराज ने कहा कि—'नाड़िका दिखाई भी कुछ है?' उसने कहा—महाराज, मोरे पास तो गाड़ी बैलवा छोड़ि और कुछ नहीं है।' तब वैद्यराज बोले कि—'अच्छा, यदि हमने नाड़िका भी देख दी तो जब तेरे पास पैसा नहीं है तो दवा काहे से करेगा?

इससे एक तू बैल अपना बेच डाल कि जिसमें दवा के लिए भी दाम हो जांय और हमारा नज़राना भी हो जाय।' इस प्रकार एक बैल तो वैद्यराज ने बेचवा डाला और गाड़ी के पास जाकर कहा कि आपकी गाड़ी मर गई। सो कुछ गोदान वैतरणी कराके लिया और थोडा सा फूस नीचे रख गाड़ी की भस्मक्रिया कराई। पुनः वहां के पण्डितों ने दूसरा भी बैल बिकवा कर दशगात्र एकादशाह करा कर सब ले लिया और लोधजी तेरहीं का डुपट्टा सिर में बांध आ विराजे। उसे देख सेठजी ने पूछा—'गाड़ी बैल कहां छोड़ा?' लोधा बोला—लालाजी, मैं यहां से गाड़ी लैकै चल्यों सो १० कोस पकी भर तौ नीके ब्यालत बतलात उइ चली गई जो बच्चो पर पहुंच्यौं सोई उनका वचन बन्द होइगा सोई वैद का लकै देखायउं, सो एक बैल बेचि कै तौ गाड़ी की दवादारू औ वैद्य के नज़-राने माँ दीन्ह्यौं औ दूसरे से गाड़ी कै भस्मक्रिया कै दशगात्र एकादश कै आइ गयउं।'

१०१-एक के करने से क्या होगा ?

एक बार एक बादशाह ने अपने गांव में एक पक्के तालाब में जो बहुत पाक और साफ़ पड़ा था दूध भराने के लिये गांव भर के लोगों को जिनके यहां दूध होता था, आज्ञा दी कि एक एक घड़ा दूध अपने अपने घर से भर उस तालाब में सब डाल आओ। सब लोगों ने अपने अपने घरों में यह ख्याल किया कि अगर हम एक घड़ा पानी का डाल आवेंगे तो तालाब भर में क्या जान पड़ेगा। निदान सब के सबों ने दूध के बजाय पानी ही छोड़ा और तालाब पानी से भर गया। जब बादशाह ने देखा तो लोगों की दशा देख चकित हो गया। इसी भांति यदि लोग कह दें कि एक से क्या होगा, और इसी प्रकार दूसरा कह दे एक से क्या, और इसी प्रकार तीसरा

कह दें एक से क्या, ग़र्ज़ कि सभी इस भांति कह दें तो कभी कोई काम हो ही नहीं सकता।

११०—पल्लड़ झाड़

एक वैश्य रोज़ कथा सुनने को जाया करते थे एक रोज़ सेठ जी को कोई आवश्यकीय कार्य्य लगा इस कारण वे कथा में न जा सके, अतः उन्होंने अपने पुत्र से कहा कि—'बेटा आज फलां जगह कथा सुन आना।' लड़का कथा सुनने गया तो कथा में निकला कि यदि कहीं गौ खाती हो तो उसे न मारे। दूसरे दिन सेठ का लड़का दूकान पर बैठा था और अनायास गौ भी आकर सेठ की दूकान पर जो पल्लड़े में चावल रक्खे थे खाने लगी, लेकिन लड़के ने गौ को न मारा। इस लिये चावल कुछ बिखर गये और कुछ गौ खा गई। थोड़ी देर में सेठ आया और अपने बेटे से बोला—'क्योंरे ये चावल कैसे बिखरे पड़े हैं?' उसने कहा—'आपही ने तो कल कथा सुनने भेजा था, उसमें निकला था कि अगर गौ कहीं खाती हो तो उसे न मारे।' बाप ने कहा—'अरे बेवकूफ़, अगर हम ऐसी कथा आज तक सुनते तो काहे को घर रहता और मूर्ख, जब कथा सुनने गये तो चादर का कोना फैला दिया और जब चलने लगे तो वहीं झाड़ दिया और कह दिया कि पंडितजी यह लो अपनी कथा।'

मुक्ताफलैः किं मृगपक्षिणां च मिष्टान्नपानं किमु गर्दभानाम्।
अन्धस्य दीपो बधिरस्य गानं मूर्खस्य किं शास्त्रकथाप्रसंगः॥

१११—आज कल का तमस्सुक

मैं फ़िकीर शफ़ी वल्द मीर भक्की साकिन मौज़े ला मकान

का हूं जो कि मुबलिग़ रुपया एक हज़ार अज़ राह जूती पैज़ार लाला रामअवतार से क़र्ज़ लेकर व ज़रूरत वाहियात खुराफ़ात नेकज़ान आतिशबाज़ी में सर्फ़ कर डाले लिहाज़ा क़रार वसद न क़रार बल्कि इन्कार उलटी क़लम से लिखे देता हूं कि सनद रहे और वक्त ज़रूरत के काम न आवे जिसकी सचाई इस तरह से लगादी कि रुपये के बारह आने भी न जाने दूंगा, लाला साहब मौसूफ़ सख्त बेवक़ूफ़ का रुपया वसूल न हो तो उसको हिरासत से वसूल किये जावें।

एक मसला है-"घी के पून किया व्योपार। सोरह सै के रहे हज़ार। उसको बन्दा बैठा मार।" जिसकी मियाद इस तरह क़रार दी है कि माह गये और सन् रहे जिसके कातिब फर जात राम नाम खवांदा जिसके कि गवाह सुलतान खां व बेईमान खाँ मुशफ़िक़ मेहरबान चूहे के क़दरदान करमफोड़ व मवक़्ती के निशान दाम पिलह।

११२—मुड़िया भाषा

एक बार एक वैश्यजी ने शहर में रुई का भाव तेज़ होने के कारण एक चिट्ठी अपने घर को इस मज़मून की लिखी कि—"लाला तो अजमेर गये हमहूं रुई लीनि तुमहुं रुई लेव और बड़ी वही को भेज देव।" लोगों ने वहां इस चिट्ठी को पढ़ा कि—"लाला तो आजु मरि गये हमहूं रोय लीन तुमहूं रोय लेव और बड़ी बहू को भेज देव। बस यह पढ़ बड़ी बहू को भेज दिया। वह रोती हुई दूकान के आगे आ खड़ी हुई। सेठजी ने कहा-'यह क्या, यह क्यों?' तब तो जो लोग बहू के साथ थे उन्होंने कहा—"लालाजी का तो देवलोक होगया।' लोगों ने कहा-"यह क्या बकते हो?" तो बहू के साथ के

लोगों ने कहा—"यह लो अपना पत्र पढ़ो।" उन्होंने कहा—"हमने तो यह लिखा था।" उन्होंने कहा—'हमने तो यह समझा था।" सच है कूराक्षरा निष्ठुरा।'

११३-अंग्रेज़ी की लियाक़त

एक गांव के एक वे पढे ज़िमीदार ने जिस के कुछ संसार वीर भी थी अपने लड़के को औरों की देखादेखी अंग्रेज़ी पढ़ाई परन्तु आप जानते हैं रईसों के लड़के भला ऐसे मन लगा कर कब पढ़ते हैं। इन्होंने कुछ पढ़ा और कुछ शहरों की हवा खाते रहे। थोड़े दिन में यह बाबू साहब जब अपने घर आये तो वही अंग्रेज़ी ठाट कोट, पतलून, बूट, सिगरट पीते हुए रहने लगे। एक दिन इस ज़िमीदार के पास कुछ पढे लिखे मनुष्य और कुछ वे पढ़े इसके मित्र गण बैठे थे इतने में ज़िमीदार के बेटे ने ज्योंही आकर 'गुड मौर्निङ्ग' किया कि ज़िमीदार बोला कि—'भाई, हमारो लल्ला तौ खूब अंगरेज़ी पढ़ि आओ।' इस के पास के बैठनेवाले मनुष्य ने कहा कि—जब आप एक अक्षर भी अंगरेजी नहीं पढे तो आपको क्या मालूम कि यह लड़का खूब अंगरेज़ी पढ़ आया।' ज़िमीदार ने कहा कि—"हम तो यहिसों जान्ति हैं कि वहु एक तौ कोटि और पतलून पहिरे है, दुसरे मुण्डा जूता पहिरे है, तिसरे फ़ाफक्क सिगरट्ट पियति है, चौथे ठाड़े मूतति है पँचये जूता पहिरे चौके चलो जाति है, हम तौ जहां वहु पढ़ति रहें सबु देखि आये हैं, छठे नै संध्या, नै गायत्री, नै होम, नै यज्ञ, नै देव नै पितर सतैं कहतिहै कि परमेसुर के हृ वे मा का सबूतु है, परमेसुर हैं यैं नाइ, अउ गिटपिट गिटपिट बोलति है, नवें गांव वालेन केहू को पार नाई बैठति है, दसें बिसकुट खाति है, यहि सों हम जान्ति हैं कि जहु एमे एलल्ल बी पासु हैं।।"

कोटञ्च बूटं पतलून दिव्यं चुरटं मुखे चञ्चलमाह्लितायम् ।
लेडीगुलामं शुभमेमसीनं बाबू भयं मयं मान रक्षितम् ॥

११४—उर्दू बीबी

एक तहसीलदार के नाम एक बार साहब कलेक्टर ने अपने पेशकार से एक हुकुमनामा लिखवाया कि—' फलां तारीख़ को गंगानदी दरिया पर बीस या पच्चीस किश्तियें तैय्यार रक्खें और मल्लाहों के झोपड़े जो दरिया के किनारे हैं उनको वहाँ से फेंकवादें । ' यहां तहसीलदार साहब ने उसे पढ़ा कि—'बीस या पच्चीस क़स्बियें फलां २ तारीख़ को दरिया के किनारे तैयार रक्खो और दरिया के किनारे जो मल्लाहों के झोपड़े हैं उन्हें फुकवा दो ।" बस तहसीलदार साहब बीस पच्चीस रण्डियें बुलवा कर उन्हें साथ ले उस तारीख़ को दरिया के किनारे हाज़िर हुये और दरिया के किनारे के सब मल्लाहों के झोपड़ों को फुकवा दिया । उधर जब साहब कलेक्टर आये तो क्या देखते हैं कि एक नाव पर तहसीलदार बीस पच्चीस क़स्बियें लिये खड़े हैं । साहब ने पूछा— "वल तहसीलदार, यह क्या ?" तहसीलदार ने कहा—"हुजूर का हुक्म था कि फलां तारीख़ को बीस या पच्चीस क़स्बियां दरिया के किनारे तैयार रक्खें ।" साहब ने कहा पेशकार, तुमने तहसीलदार को क्या लिखा था ?" पेशकार साहब बोले कि—"मैंने तो लिखा था कि बीस या पच्चीस किश्तियें तैयार रक्खो ।" साहब बोला —' फिर आपने ऐसा क्यों किया ?' पेशकार ने कहा—"हुजूर, उर्दू में किश्तियें का क़स्बियें भी पढ़ा जा सकता है ।" थोड़ी देर में साहब के आगे मल्लाह हाथ जोड़ आ खड़े हुये और बोले—"हुजूर, हम लोगों के झोपड़े

तहसीलदार साहब ने फुकवा दिए।" साहब कलेक्टर ने कहा—"तहसीलदार, तुमने इतने झोपड़े क्यों फुंकवाये?" तहसीलदार ने कहा कि—"हुजूर, आपने हुक्म दिया था।" पुनः साहब ने पेशकार से पूछा तो पेशकार ने कहा कि-'हमने तो हुजूर यह लिखा था कि मल्लाहों के झोपड़े फेकवादो, पर उर्दू में वैसा भी पढ़ा जा सकता है।" साहब ने कहा—'उर्दू बड़ो ख़राब ज़ुबान है।' संस्कृत में भी कहा है—

अव्यक्ते शब्दे म्लेच्छे ।

शोक है कि आज लोग सम्पूर्ण ज़ुबानों की मां और सब से शुद्ध और पवित्र भाषा को छोड़ इस वाक्य के रूप बने हैं कि—

ईश गिरजा को छोड़ ईसू गिरजा में जाय शङ्कर स्वदेशी लोग मिश्टर कहावेंगे। पैंधि कोट पैण्ट कम्फ़ाटर टोपी कोट जाकट के पाकट में वाच लटकावेंगे॥ फिरेंगे बनगडो बने रण्डों को पकड़े हाथ पाकर वरण्डो मोट होटल में खावेंगे। फ़ारसी को छारसी उड़ाय अँगरेज़ी पढ़ि मानो देवनागरी को नाम ही मिटावेंगे॥

११५—फूट से हानि

एक ब्राह्मण, एक क्षत्री और एक नाई तीनों कहीं को जा रहे थे। सफ़र लम्बा था। रास्ते में तीनों को क्षुधा ने सताया और एक चने का फला हुआ खेत भी इन तीनों के दृष्टि आया। इन तीनों ने सोचा कि प्रथम तो इस समय इस जङ्गल में कोई है भी नहीं जो हम लोगों को इस खेत से चने उखाड़ते हुए देख ले, दूसरे यदि कोई देख भी लेगा तो हम लोग उससे कह देंगे कि भाई जो हमने भूख के कारण थोड़े थोड़े चने उखेड़े हैं। वह

खेत एक जाट का था और दुपहर का समय था। जाटजी ने सोचा कि दुपहर का समय है हो न हो चलो एक चक्कर खेत ही की ओर कर आयें कि जिससे कोई नुकसान न करे। जाटजी कन्धे पर कुल्हाड़ा धर खेत की ओर पधारे। वहां जाकर क्या देखते हैं कि हमारे खेत में तीन जवान चने उखेड़ रहे हैं। जाट ने सोचा कि अगर तुम एकाएक इन तीनों से कुछ कहते हो तो प्रथम तो यह जङ्गल, यहां कोई नहीं, दूसरे हम अकेले और यह तीन हैं इसलिए युक्ति से काम लेना चाहिये, अतः जाट जी ने तीनों के पास जा प्रथम द्विज महाराज से पूछा कि-'आप कौन हैं?' इन्होंने उत्तर दिया कि—'हम ब्राह्मण हैं।' तब तो जाट जी ने कहा-'महाराज, आप तो परमेश्वर की देह हैं आपने बड़ी दया की. भला आप काहे को कभी हमारे खेत में आते। धन्य हो महाराज, हमारा तो खेत पवित्र हो गया। यदि आपको और दो चार गट्ठे चनों की आवश्यकता हो तो उखेड़ लीजिये। आपका तो खेत ही है।' इसके पश्चात् जाट जी ने कुँवर जी से पूछा कि-'महाराज, आप कौन हैं?' इन्होंने कहा—'हम तो क्षत्री हैं।' जाट जी बोले—'धन्य हो महाराज कुंवर जी, आपने तो हमारे ऊपर बड़ी ही दया की। भला आप कभी हमारे खेत में काहे को आते। इत्तिफ़ाक की बात है। आपको यदि और दो चार गट्ठे चनों की आवश्यकता हो तो घोड़ों वगैरः के लिये उखड़वा मंगाइये। आपका तो खेत है।' अब इसके पश्चात् जाट जी ने तीसरे यानी हज्जाम जी से पूछा कि—'आप कौन हैं?' यह बोला—'मैं आपका हज्जाम हूं।' जाट जी बोले कि—'भला, अगर इन ब्राह्मण जी ने चने उखेड़े तो यह हमारे पूजनीय ठहरे और कभी कथा वार्त्ता सुना देते कभी व्याह काज करा देते, और कुंवर जी ने उखेड़े तो यह तो हमारे राजा ठहरे और फिर

कभी हम लोगों पर आमदनी ही में दया करते, हमारी रक्षा करते, पर तूने साले चने क्यों उखेड़े? गधे के खाये, न पाप में न पुण्य में।' ऐसा कह जाट जी ने उतार जूता हज्जाम की चाँद काट दी। अब तो ब्राह्मण और क्षत्री दोनों बोले कि—'अच्छा हुआ जो यह नौआ पिट गया, यह कुछ बदमाश भी था। इस साले को जब कभी घर से बाल बनवाने को बुलाओ तो घंटों नहीं निकलता था, चलो आज ठीक हो गया।' उधर नाई सोचने लगा कि मैं पिट गया और ये बच गये, ये लोग जाकर गांव में कहेंगे कि देखो नौआ पीटा गया। परमेश्वर, कहीं इन दोनों के भी चाँद में दस दस जूते लग जाते तो ठीक हो जाता। जब नौआ पिट पट के कुछ दूर गया तो जाट जी बोले कि—'क्यों कुंवर जी, यह खेत कोई माफ़ी है, या मुफ़्त में तैय्यार हुआ था? भला ब्राह्मण जी ने उखेड़े तो वह तो हमारे माननीय ठहरे, पर आपने चने क्यों उखेड़े?' ऐसा कह जाट जी ने उतार जूता इनकी भी खोपड़ी लाल कर दी और मारे बेतों के चूतर काट दिये।' अब तो ब्राह्मण जी बोले कि—'अच्छा हुआ, यह भी बड़ा ही टर्रबाज था, कभी सीधा बोलता ही न था, हमेशा अकड़ के चलता था आज सारी अकड़ निकल गई।' उधर क्षत्री मन में सोचने लगा कि देखो हम दो पिट गये पर यह ब्राह्मण बच गया। यह गांव में जाकर कहेगा कि नाई और क्षत्री दोनों खूब पिटे परमेश्वर कहीं इसके भी सिर में दस जूते लग जाते तो ठीक हो जाता। इस प्रकार जब कुंवर जी पिट कुट कर चले और कुछ दूर पहुंचे तब जाट जी पूज्यमान की पूजा के हेतु उनकी ओर मुख़ातिब हुए और ब्राह्मण जी से कहा—'क्यों महाराज, यह खेत ऐसे ही तैय्यार हो गया था, इसमें मेहनत नहीं पड़ी थी? क्या आप संस्कारों या कथा वथा में अपने टके छोड़ देते हो?

अरे भाई, ये चने क्यों उखेड़े ?' यह कह जाट जी ने उतार जूता इनकी भी खोपड़ी साफ़ कर दी। नाई की कभी ज़रूरत ही न रक्खी।

अब आप लोग नतीजा निकालें। अगर ये तीनों आपस में न फूटते तो तीनों की चांद न काटी जाती। मित्रो, ठीक यही हमारी आपकी सबकी हालत है। क्या इस पर आप लोगों को अफ़सोस नहीं जो आपस में हमेशा अंगुल अंगुल जगह पर, एक एक पनाले पर, एक एक खूंटे पर निष्प्रयोजन दिन रात वैर विरोध किया करते हैं। अब आप ज़रा सोच समझ भारत पर कृपा कीजिये।

११६—उजबक

एक बार एक उजबक जी को यह सूझी कि किसी प्रकार रामचन्द्र के दर्शन करना चाहिये। उजबक जी इस ख़याल में थे कि हमें कोई ऐसा गुरु मिल जाय कि जो सहज में ही कोई साधारण युक्ति बता दे ताकि बिना परिश्रम ही राम दर्शन हो जाय। उजबक ऐसे गुरु की तलाश में ही थे कि इनको 'यादृशी शीतला देवी तादृशः खर वाहनः' के अनुसार एक घोंघा बसंत मिल गये। इन्होंने घोंघावसंत जी से कहा–"महाराज हमें कोई ऐसी युक्ति बताओ कि सहज में ही राम-दर्शन हो जायं ?' घोंघावसंत ने उपदेश किया कि—"आज से आप जब प्रातःकाल पाख़ाने जाया करें तो अपने लोटे में जो जल भर कर पाख़ाने के लिये ले जाते हो उसमें का कुछ आवदस्त लेने से बचा रक्खा करो और उसे तुम नित्यप्रति बबूल पर चढ़ा दिया करो इस प्रकार करने से तुम्हें प्रथम हनूमानजी के दर्शन होंगे, पश्चात् वे तुम्हें रामचन्द्र के दर्शन करायेंगे।' उजबकजी ने वही व्रत धारण किया। उस दिन से वे पूरे तौर से आबदस्त भी न लेते थे पर बबूल पर चढ़ाने के लिए जल अवश्य

बचा रखते और रोज़ जल चढ़ाया करते थे। एक दिन एक बुड्ढा पुरुष जिसकी लम्बी २ दाढ़ी थी प्रातःकाल पाखाने गया और वह उस बबूल के उस तरफ़ बबूल की जड़ से मिल कर पाखाने बैठ गया। माघ पूस का महीना था जाड़ा खूब पड़ रहा था। इतने में यह उजबक पाखाने गया। यह झट पट पाखाने हो जल चढ़ाने के कारण पूरे तौर से आबदस्त भी न ले लोटे में आधा पानी बचा उसी बबूल पर इस ओर से जा और आधा लोटा जल ज़ोर से फेंक दिया। जल बहुत ही ठंडा था और ज्योंही उस बूढ़े के ऊपर जो कि बबूल की जड़ से भिड़ा हुआ उस ओर पाखाने बैठा था पड़ा तो जल पड़ने ही बुड्ढा भरभरा के उठ बैठा। यह दृश्य इस उजबक ने ज्योंही देखा तो इसे क्या मालूम पड़ा कि यह बबूल के अन्दर से निकला है और हो न हो यही हनूमान हैं। बस उजबक ने वहां से लौट कर जाकर उस बुड्ढे के पैर पकड़ लिये। वह बेचारा पाखाना फिरे हुए था इस कारण बोलने से लाचार था और यह उजबक बोला कि—"महाराज, बहुत दिन के बाद आपके दर्शन मिले बेचारा बुड्ढा बोलने से तो लाचार ही था परन्तु हाथ हिलाता था और संकेतों से यह कहता था कि—'तुम अलग जाओ।" परन्तु यह उजबक कहता था—"वाह महाराज, खूब रहे, बारह वर्ष हमने जब बबूल पर जल चढ़ाया है तब बाद मुद्दत के आपके दर्शन मिले हैं सो आप अलग २ करते हैं। भला मैं आपको छोड़ सकता हूं ? आप तो हनूमान हैं।" यह बुड्ढा फिर हाथ हिला कर संकेत से बोला कि—"हूं हूं, ऊं हुं, ऊं हुं।" यानी मैं हनूमान् नहीं हूं तुम अलग हटो। इसने कहा—"अरे ज़ाव, महाराज, अब एक नहीं चलने की, हमने बहुत दिन में आपके दर्शन पाये हैं, आप तो भक्तों से पहले ऐसा कहा ही करते हैं। बेचारे बुड्ढे को

आबदस्त लेना मुहाल हो गया। इस प्रकार जब बुड्ढे ने देखा कि इससे पीछा छूटना कठिन है तो बोला कि—'अच्छा, मैं हनूमान् हूं, तुम अपना अभिप्राय कहो, क्या है?' इसने हाथ जोड़ कहा—'महाराज हमें राम के दर्शन कराओ। बुड्ढा यह सुन हैरान हुआ कि मैं इसे रामचन्द्र के दर्शन कहां से कराऊं, परन्तु अनायास उसी समय चार सवार घोड़े पर किसी राजा के पास डाक लिये जाते थे, जब बुड्ढे ने देखा कि यह किसी प्रकार न मानेगा तो उसने कहा—'देखो, वे चारों भाई जा रहे हैं, और बोला कि—

आगे आगे राम जात हैं, पीछे लछिमन भाई।
उनके पीछे भरत जात है, पीछे शत्रुघ्न दिखाई॥

यह सुनते ही उजबक बुड्ढे को छोड़ सवारों की ओर दौड़ा। उनमें तीन सवार तो आगे निकल गये थे, पीछेवाले सवार के साथ वह उजबक जा चिपटा और बोला कि-'बहुत काल के बाद दर्शन हुए।' सवार ने कहा—'क्या है, क्यों चिपटता है, तू कौन है?' यह बोला—'महाराज, मैं आपका भक्त हूं, कृपा-नाथ, १२ वर्ष तो मैंने बबूल पर जल चढ़ाया, तब तो हनूमान जी ने आपको बताया है।' सवार ने कहा—'अरे भाई, हम सरकारी सवार हैं, डाक लिए जाते हैं, हमें तुमने क्या समझ रक्खा है।' इसने कहा—'महाराज, दास को क्या धोखा देते हो? आप राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न चारो भाई हो।' सवार ने कहा—'नहीं, हम सवार हैं।' उसने कहा—'आप तो प्रथम भक्तों से ऐसा ही कहा करते हैं कि जिसमें हमें छोड़ दें, सो हम आप को छोड़नेवाले नहीं।' सवार ने जब देखा कि यह इस प्रकार पीछा न छोड़ेगा और डाक को मुझे देर होती है तो हण्टर पीटने लगा और यह गिर पड़ा। पीछे बोला कि-

मारे गये चाहे पीटे गये, दर्शन तो कर ही लिये।

सम्पादिता सपदि दर्दुर दीर्घनादा यत्कोकिला कल रुतानि निराकृतानि। निष्पीतमम्बु लवणं ननु दत्तयाः पर्जन्य तेन भवतां विहितो विवेकः॥

११७--स्त्रियों के परदे से हानि

एक बार एक कलकत्ता के निवासी सेठजी अपनी बहू को विदा कराये बम्बई से आरहे थे और दूसरे सेठ कानपुर निवासी अपनी बहू को विदा कराये दक्षिण हैदराबाद से आ रहे थे। दोनों का इलाहाबाद स्टेशन पर संगम हो गया, और दोनों बहुयें एक ही बिस्तर पर बैठ गईं, परन्तु अब बात यह थी कि परदा के कारण न तो कानपुरवाले सेठ अपनी बहू को पहिचानते थे और न कलकत्तावाले सेठ अपनी बहू को पहिचानते थे। थोड़ी देर के बाद दोनों ओर की जानेवाली गाड़ियों का मिलान वहीं पर हुआ। सेठों ने बहुओं से कहा कि—'बहुओं तुम ज़रा अलग खड़ी हो जाओ तो हम असबाब सम्हाल लें।' प्रतिफल यह हुआ कि कलकत्ता के सेठ की बहू कानपुरवालों के साथ चली आई और कानपुरवालों की बहू कलकत्तेवाले के साथ चली गई। जब यह बहुयें कलकत्ता और कानपुर चार २ दिन रह चुकीं तो पीछे मालूम हुआ कि कलकत्ते की बहू कानपुर और कानपुर की बहू कलकत्ता चली गई। अन्त में यह हुआ कलकत्ता वाला कानपुर अपनी बहू को लेने आया और अपनी स्त्री को रास्ते में ही मार दिया। दूसरे ने कलकत्ते से कानपुर आकर वहीं उसे छोड़ दिया कि तू हमारे काम की नहीं।

११८--वर्त्तमान स्त्रियों की विद्या

एक लड़की ने अपने मायके में रह कर विचारी ने एक एक पैसा जोड़ हर प्रकार की तकलीफ़ सह कर सौ रुपये जोड़े। जब यह विचारी अपने सासुरे गई तो इसे सौ तक गिनती तो आती न थी, इस कारण अपने रुपयों को दो दो बराबर कर लिया करती थी और जब दो दो बराबर हो जाते थे तो समझ लेती थी कि अब मेरे रुपये पूरे हैं। परन्तु निकालने वाली भी बड़ी ही चतुर थी, यह भी दो ही दो निकाला करती थी। यहां तक कि निकलते निकलते इसके पास केवल चौवीस रुपये रह गये। परन्तु तब भी यह अपने बराबर कर लेती और कहती चली आई कि मेरे पूरे हैं। एक दिन निकालनेवाली चोट्टी इसके रुपये निकाल रही थी कि यह आ गई, इस कारण निकालनेवाली ने एक ही रुपया निकाल पाया। इसने फ़ौरन ही अपने रुपयों को दो दो बराबर किया परन्तु एक घट रहा तब इसे मालूम हुआ कि मेरी चोरी आज हो गई। तब तो इसकी सास ने कहा कि-'ला मैं तेरे रुपये गिन दूं।' यह दो दो बराबर कर बोली कि-'१) रुपया तो बढ़ता है तू किसका चुरा लाई?' अब आप लोग सोच लें कि इनके सुपुर्द हमारी सब घर का कारख़ाना और बाल बच्चे हैं, ऐसी स्त्रियों की सन्तानें जितना मूर्ख न हो उतना ही थोड़ा है।

११९-बेवा स्त्रियों का मुख्य धर्म

एक बार झांसी की रानी महारानी लक्ष्मण बाई किसी स्थान पर एक पण्डित की कथा श्रवण करने गईं। कथा में पण्डित जी ने एक दृष्टान्त कहा कि—'इन बेवा स्त्रियों के मकर देखो कि जब तक इनका पति जीवित रहता है तब तक तो

कांच की कच्ची चूरियां चार चार या छे छे पैसे की पहिनतीं हैं और जब पति मर जाता है तो सोने या चांदी का गहना या चूरियां दस दस, बीस बीस, पचास पचास रुपये की पहनती हैं। महाराणी लक्ष्मण बाई ने पण्डित जी को उत्तर दिया कि–'महाराज क्षमा कीजिये, आपने इस महत्त्व को नहीं समझा। इसका मतलब यह है कि जब तक इनका रिश्ता अपने पति से है तो ये समझती हैं कि पति का पाञ्चभौतिक अनित्य क्षणभङ्गुर शरीर काँच की कच्ची चूरियों की तरह ज़रा से धक्के में कुछ से हो जानेवाली है, इसलिए ये जब तक इनका रिश्ता कुम्हार के कच्चे घड़े की तरह फूटनेवाले पति के शरीर से रहता है तब तक कांच की कच्ची चूड़ियां पहनती हैं और जब पति मर गया तो अब संसार में इनका एक उस पक्के परमात्मा से जो कभी भी टूटने फूटनेवाला नहीं सम्बन्ध हो जाता है, इसलिये ये सोना चाँदी की पक्की चूरियां पहिर ईश्वर-भक्ति में अपने जन्म को बिता देती हैं।'

१२०--असंभव कभी सच नहीं

एक बार एक जगह गप्पें उड़ रही थीं, तब तक एक दूसरे गप्पी आ गये। अब क्या था 'गप्पी के घर गप्पी आये' के अनुसार जब गप्पियों के यहां गप्पी आये तो गप्प मारने की क्या कमी। यह बोला कि—'हमारे गुरू तो अपना सिर काट के अपने सिर के जूं बीन लिया करते हैं।' दूसरे ने कहा—'आंखें तो सिर के साथ कट जाती हैं फिर सिर के जूं किस से देखते हैं? इसने अपने मुंह में अपने ही हाथ से एक थप्पड़ मारा और कहा—'बस, इतनी ही तो झूठी निकल गई, नहीं तो सब सच्ची ही थी।'

१२१-तन बदन का होश नहीं

एक बढ़ई अपने बसूले को कन्धे पर रक्खे हुए उसे ढूंढता फिरता था कि बसूला कहां गया और इधर उधर बिलबिलाता हुआ व्याकुल हो रहा था। किसी ने कहा-'कन्धे पर क्या है?' वह झट उस पुरुष के पैरों पर गिर पड़ा और बोला कि-'आप न बता देते तो हमारा बसूला गया ही था।'

१२२-चोर की दाढ़ी में तिनका

एक बार एक मनुष्य के यहां चोरी हो गई थी। उसका पता लगना कठिन हो गया था। उस पुरुष ने बादशाह के यहां प्रार्थना की। बादशाह का वज़ीर बड़ा ही चतुर था। वह तमाम बदमाशों और चोरों को इकट्ठा कर बोला कि—'चोर की दाढ़ी में तिनका है।' अब तो जिस मनुष्य ने चोरी की थी, वह अपनी दाढ़ी देखने लगा। बस वज़ीर ने समझ लिया कि इसने चोरी की है।

१२३-आज कल की सती

किसी स्त्री ने अपनी सास से पूछा कि—सती के क्या माने हैं?' उसने जवाब दिया कि—'जिसने सात खसम किये हों, उसको सती कहते हैं।' इस पर उसने कहा कि—तेरा लड़का मेरा आठवां खसम है।' सास ने जवाब दिया कि—'तूने अब दूसरे सत पर क़दम रक्खा है।

१२४-बिना सम्बन्ध के वार्ता

एक वैद्य जी एक रोगी को देखने गये और उनके साथ उनका एक मूर्ख शिष्य भी गया। वैद्य जी ज्योंही रोगी के पास

पहुंचे तो चने के छिलके इधर उधर पड़े देख उसकी बद-परहेजी पर चिढ़ कर बोले कि—'तुम्हारी नाडिका में तो आज चने उछल रहे हैं।' रोगी हाथ जोड़ बोला—'महाराज, आज भूल हो गई, मैंने दो फ़ोंक चाब लिये, पर आइन्दा ऐसा कभी न होगा।' थोड़ी देर में वैद्यराज चले आये। रास्ते में शिष्य ने पूछा—'महाराज, आपने यह कैसे जान लिया कि इसकी नाडिका में चने कूद रहे हैं?' वैद्यजी ने कहा कि—'चनों के छिलके उसकी चारपाई के पास पड़े थे, इसलिए ऐसा कह दिया।' दूसरे दिन जब उस रोगी के घर के मनुष्य फिर लिवाने गये तो वैद्यराज तो रोगी की बदपरहेजी से चिढ़े थे, इस कारण आपने उसी शिष्य को भेज दिया कि जाओ उस रोगी को देख आओ। इतने में रोगी के घर कोई उसका मेह-मान ऊँट पर आया और ऊँट की काठी रोगी की चारपाई के पास रख बैठ गया। जब तक वैद्यराज के शिष्य रोगी को देखने पहुंचे। यह ऊंट की काठी पास रक्खी देख रोगी की नाडिका पकड़ के बोले कि—'आज तो यह ऊंट खा गया है, इसकी नाडिका में ऊंट कूद रहा है।' रोगी के घर के लोगों ने कहा—'खाना तो हूजिये।'

> अमन्त्रमक्षरं नास्ति नास्ति मूलमनौषधम्।
> अयोग्य पुरुषो नास्ति योजकस्तत्र दुर्लभः॥

१२५—बिना योग्यता के काम

एक वैद्यराज अपने नौकर को साथ ले बाहर वैद्यकी के निमित्त चले, परन्तु उस देश की प्रथा यह थी कि अगर कोई रोगी मर जाता था तो वैद्यजी को उठाना पड़ता था। वैद्य-

राज बड़े चतुर और चालाक थे। हर बार शव उठाने में अपने नौकर को रोगी के सिर की ओर और आप पैरों की ओर रहा करते थे। वैद्यराज जहां जहां दवा करने जाते थे वे प्रायः सभी मर जाया करते थे। अबकी बार वैद्यराज एक रोगी की दवा करने गये तो नौकर ने कहा कि-'महाराज, नाड़िका पीछे पकड़ो, पहले यह ठहरा लो कि अबकी हम पैरों की ओर रहेंगे।' यह सुन वहाँ से दोनों निकाले गये—

> लोभात् क्रोधः प्रभवति क्रोधात् द्रोहः प्रवर्त्तते।
> द्रोहेति नरकं यान्ति शास्त्रज्ञोऽपि विचक्षणाः॥

१२६—अत्यन्त लोभ से हानि

एक बार एक सेठजी का बहुत दिन से यह इरादा हो रहा था कि अगर कोई सब से थोड़ा खानेवाला ब्राह्मण मिले तो एक ब्राह्मण खिलावें। यद्यपि सेठजी अपने घर के बड़े मालदार थे परन्तु अत्यन्त लोभी होने के कारण उनकी यह दशा थी कि वे बहुत दिन तक ऐसे ब्राह्मण की खोज में रहे। सेठजी के बहुत दिन तक इस विचार में रहने के कारण गांववाले ब्राह्मणों ने समझ लिया था कि सेठ बड़ा लोभी हैं और सेठजी का ऐसा ऐसा विचार है। एक दिन सेठजी से एक गांववाले ब्राह्मण से वार्त्ता हुई। सेठ जी ने पूछा—"आप कितना खाते होंगे?" ब्राह्मण ने कहा—'एक छटांक भर के करीब।" यह सुन सेठजी ने उसी समय उस ब्राह्मण को दूसरे दिन के लिए न्योत दिया और ब्राह्मण से बोले कि—"पण्डित जी, मैं तो कल फलाने स्थान में सौदा तुलाने जाऊंगा आप मेरे घर जाकर भोजन कर आवें।" ब्राह्मण ने कहा-'बहुत अच्छा लाला जी की जै बनी रहे, हम तो हमेशा आपही लोगों का खाते हैं।' यही समा-

चार सेठने अपने घर जाकर सेठानी जी से कह दिया कि हम अमुक ब्राह्मण को कल के लिए न्योत आये हैं, सो मैं तो कल फलां स्थान में सौदा तुलाने जाऊँगा और तुम जो जो ब्राह्मण मांगे सो दे देना, क्योंकि सेठ जी ने यह तो जान ही लिया था कि जब पण्डितजी की छटाँक भर खुराक है तो मांगें हीं गे क्या? दूसरे दिन सेठ तो सौदा तुलाने चले गये और ब्राह्मण ने आकर सेठानी को आशीर्वाद दिया। सेठानी वैसी लोभिनी न थीं और बड़ी साध्वी, पतिव्रता, ब्राह्मणभक्त थीं। उसने पूछा—'बोलिये पंडितजी, आपको क्या क्या चाहिये?' इन्होंने कहा—"१० मन आटा, २ मन घी, ४ मन शाक, २ मन शक्कर, पाँच सेर नमक, २ सेर मसाला तो घर के लिए।" सेठानी जी ने पति की आज्ञानुसार सब निकलवा दिया और पण्डितजी ने इस सामान को घर भेज सेठानी जी से कहा कि—"ले हमारे लिए जल्दी चौका लगवाओ।" सेठानी जी ने चट पट चौका लगवा पण्डितजी को भोजन बनवाये। भोजन करने के बाद पण्डितजी बोले कि सेठानी जी, अब हमारी १०० अशर्फियां जो दक्षिणा की चाहियें वह भी मिल जायें तो हम तो आशीर्वाद दे घर चलें।" सेठानीजी ने १०० अशर्फियां भी दे दीं। ब्राह्मण आशीर्वाद दे विदा हुआ और अपने घर में जा पिछौरा ओढ़ पड़ रहा और अपनी स्त्री (ब्राह्मणी) से बोला कि—'अगर सेठ आवें तो तू रोने लगना और कहना कि पंडित तो जब से आपके घर से भोजन करके आये हैं तब से ही बहुत सख्त बीमार हैं; बल्कि बचने की आशा नहीं। न जाने आपने क्या खिला दिया।' इधर जब शाम हुई तो सेठ दिन भर के भूखे (यहां तक कि ये कभी लोभ से कंकड़ी भर गुड़ खाकर पानी भी बाहर नहीं पी सकते थे) घर में आये तो सेठानी से पूछा—'ब्राह्मणजी भोजन कर गये?" सेठानी ने कहा कि—'हां, पण्डितजी ने

इतना इतना सामान घर के लिए मांगा और ५ सेर तक की पूड़ियां यहां बना के खाकर १०० अशर्फियां दक्षिणा की भी ले गये।' सेठ यह सुन मूर्छित होगया। थोड़ी देर में जब सेठ को होश आया तो वह उस ब्राह्मण के घर पहुंचा। ब्राह्मणी दर्वाजे पर बैठी थी। सेठने पूछा कि—'ब्राह्मण कहाँ है?" यह सुन ब्राह्मणी फूट फूट कर रोने लगी और बोली-'उनको तो जब से आपके यहां से भोजन कर आये हैं न जाने क्या होगया, बहुत सख्त बीमार हैं, बल्कि बचने की आशा नहीं, न जाने आपके घर में क्या खिला दिया?' सेठ ब्राह्मणी के हाथ जोड़ने लगे और बोले कि—"चिल्लाओ मत, हम २००) तुम को और दिये जाते हैं, सो उनकी दवा दारू करा, पर यह मत कहना कि सेठजी के घर खाने गये थे सो न जाने क्या खिला दिया।"

१२७-कर्कशा

एक कर्कशा स्त्री हमेशा उल्टा वर्त्ताव किया करती थी। जो पति के मुख से निकले उस के विरुद्ध करना ही इस का काम था। यदि पुरुष कहे कि इस साल एक यज्ञ कराऊँगा तो यह कहती कि यज्ञ तो कभी न होगा और चाहे कुछ हो। अगर पति कहता कि इस साल ब्रह्मभोज कराऊँगा तो यह कहती थी ब्रह्मभोज तो कभी न होगा और चाहे कुछ हो। पति ने जब जान लिया कि स्त्री का यह स्वभाव ही है तो वह युक्ति से काम लेने लगा, यानी जो जो कुछ इस पुरुष का कर्त्तव्य होता, सदैव उसका उल्टा कहा करता था। यदि इसे यज्ञ करना होता तो कहता था इस साल में यज्ञ, ब्रह्मभोज कुछ न करूंगा। तब स्त्री कहती कि और चाहे कुछ न हो पर यज्ञ और ब्रह्मभोज तो इस साल अवश्य होगा।

इस दृष्टान्त के लिखने का प्रयोजन यह है, कि अगर मनुष्य बुद्धिमान् और युक्तिवान् है तो दुष्ट से दुष्ट और विरोधी से विरोधी मनुष्य भी उसका कुछ नहीं कर सकता।

१२८--ग़र्ज़बन्दा बावला

एक सेठजी ने एक बदमाश को एक हज़ार रुपये क़र्ज़ दे दिये। जब सेठजी उस बदमाश से विशेष तक़ाज़ा करने लगे तो उसने एक वैद्यराज से जो उसके पड़ोस में रहा करते थे सलाह पूछी। वैद्यराज ने कहा कि—"तुम बीमारी का बहाना कर अपने घर लोट रहो, तो हम सेठ का दो चार सौ रुपया बिगड़वा दें।" बदमाश ने ऐसा ही किया और गांव में वैद्यराज ने यह प्रगट कर दिया कि अमुक बदमाश बहुत सख़्त बीमार है, आज ही कल में मरनेवाला है। अब सेठ जी बिचारों का तक़ाज़ा तो भूल गया और वे दुबका उसे देखने आते थे और इसी फ़िक्र में पड़े कि किसी तरह यह अच्छा हो जाय। सेठजी ने वैद्यराज से पूछा कि—"किसी युक्ति से यह अच्छा भी हो सकता है?" वैद्यराज ने कहा कि—"अगर अमेरिका का उल्लू कहीं मिल जाय और उसका कलेजा निकाल कर इसकी दवा बनाई जाय तो यह आराम होसकता है। लेकिन अमेरिका का उल्लू ५००) रुपये में आता है।" सेठजी ने सोचा कि अगर यह मर गया तब तो एक कौड़ी भी वसूल न होगी और इस प्रकार अगर ५००) उल्लू में चले जायँगे तो ५००) तो मिलेंगे। अतः उन्होंने यह ख़र्च स्वीकार कर लिया। थोड़ी देर में वैद्यराज ने उसी बदमाश के किसी सम्बन्धी को उल्लू लेकर बाज़ार में बेचने के लिये भेज दिया और यह कह दिया कि बाज़ार में कहना कि—"लो अमेरिका के जंगल का

उल्लू।" सम्बन्धी बाज़ार में जा बोलने लगा—"लो अमेरिका के जंगल का उल्लू।" सेठजी विचारे तो आसामी की बीमारी से घबड़ा ही रहे थे, उन्होंने पुकारा—"ओ अमेरिका के जंगल के उल्लूवाले! उल्लू यहां ले आ।" जब वह पास लाया तो सेठ जी ने उसकी क़ीमत पूछी। उल्लूवाले ने कहा—"पांच सौ रुपया।" सेठजी ने फ़ौरन ही ५००) उल्लूवाले को दे और उल्लू ले बदमाश के दर्वाज़े पहुंच कर वैद्यराज से कहा— लो हम अमेरिका के जंगल का उल्लू ले आये।" तब तो वैद्यराज ने कहा कि—"रोगी तो अच्छा होगया, अब आपके उल्लू की क्या आवश्यकता है, आप अपना उल्लू ले जाइये।" अब तो सेठजी ने उसको एक पिंजड़े में रख अपनी दुकान के सामने टांग दिया और जो कोई ग्राहक आकर कहता था कि—'सेठ जी हरदी है?' तो सेठजी कहते थे कि—"हरदी है, मिरचा है, धनिया है, उल्लू है।" कोई पूछे—"जी लाची है?" तो जवाब देते—"लौंग है, मिरच है, लाची है। उल्लू है।" ग़रज़ जो कोई कुछ पूछे तो दो एक और चीज़ों के नाम ले पीछे कह दिया करते थे "उल्लू है।"

यावत् प्रीतिर्भवत्तलोके यावत् स्वार्थ सु सिद्ध्यति।
वत्सः क्षीरमयं दृष्ट्वा परित्यजति मातरम्॥

१२१--दो ब्याह करनेवाले की दुर्दशा

एक सेठ के घर में एक चोर चोरी करने के निमित्त बैठा परन्तु उस सेठ के पास दो औरतें थीं और उसका घर दुखंडा बना हुआ था, एक औरत नीचे सोती थी और एक ऊपर सो रही थी। परन्तु नीचे से ऊपर जाने के लिये पास ही एक खिड़की थी, सेठ जी नीचे सोते थे। जब रात को नीचे से

उठ कर ऊपर जाने लगे तो नीचे की औरत ने तो उनके पैर पकड़ लिये और ऊपरवाली ने चोटी पकड़ ली और दोनों अपनी अपनी ओर खींचने लगीं, और स्त्रियें रात भर खींचती रहीं, चोर रात भर तमाशा देखते रहे। प्रातः काल चोर पकड़ लिये गये और सेठजी उनको राजा के पास ले गये। राजा ने कहा-"चोरों को क्या सज़ा होनी चाहिये?" सेठजी ने कहा कि—"इनके दो व्याह करदो।" चोर बोले—हुजूर, चाहे हमें फांसी दे दी जाय, पर दो व्याह न किये जांय।" राजा ने कहा-"क्यों?" चोरों ने कहा-'सेठ से पूछ लीजिये।'

१३०—रण्डीबाज़ को उपदेश

एक रण्डीबाज़ ने एक वार कुछ रुपया एक रण्डी के यहां रक्खा। उसने ख़र्च कर डाला। रण्डीबाज़ रण्डी से मांग रहा था और रण्डी कहती थी कि—'मेरे पास रुपया कहां?' तब तक एक भले आदमी पहुंच गये और उस रण्डीबाज़ से बोले कि—'भाई, तुमने कभी इसके नाम से भी नहीं विचारा? अरे भइया, जोड़नेवाली तो जोड़ू हुआ करती है और जोड़ू ही जोड़ा करती है, यह तो है आसना। अफ़सोस आप 'आसना' से आस रखते हैं।'

वेश्यासौ मदनज्वाला रूपमेन्धन समेधिता।
कामिभिर्यत्र हूयन्ते यौवनानि धनानि च॥

१३१—चार श्रोता

एक पण्डितजी ने एक वार एक दृष्टान्त दिया कि श्रोता चार प्रकार के हुआ करते हैं-एक गपुआ, दूसरे तकुआ, तीसरे लखुआ, चौथे भकुआ। पण्डितजी बोले कि गपुआ श्रोता वे

कहलाते हैं जो कथा में गप्पें लगावें, और तकुआ वे जो यह ताके रहते हैं कि अब के अच्छी वार्त्ता आवे तो सुनें, और लखुआ वे जो अर्थ लखा करते है, और भकुआ वे जो कथा में सो रहा करते हैं। एक कवि का वाक्य है—

अप्रतिबुद्धे श्रोतरि वक्तुर्वाक्यं प्रयाति वैफल्यम् ।
नयनविहीने भर्त्तरि लावण्यं विमेह खंजनाक्षीणाम् ॥

१३२--बद नियती से दूर रहो

एक बेर ठगावे सो बावन वीर कहावे ।
बेर बेर ठगावे सो गप्पूनाथ कहावे ॥

एक कुए में बहुत से मेंढक, एक गोह और एक साँप रहा करते थे। मेंढकों के प्रधान का नाम था गंगदत्त और साँप का प्रियदर्शन तथा गोह का भद्रा। प्रियदर्शन और गंगदत्त में बड़ाहद दोस्ती थी. लेकिन प्रियदर्शन उन कुओं के मेंढकों में से एक मेंढक रोज़ खा लिया करता था। होते होते उस कुए के सब मेंढक प्रियदर्शन ने खा लिये और एक दिन समय ऐसा आया कि प्रियदर्शन के खाने को कुछ भी न रहा। प्रियदर्शन ने सोचा कि हो न हो आज गंगदत्त ही को खाने के काम में लाऊं। आप जानते हैं कि मन को मन समझ जाता है, गंगदत्त ने समझलिया इसने हमारे सब भाइयों को तो खा ही डाला और लाख दर्जे आज मुझ पर हाथ साफ़ करने का विचार होगा। अतः गंगदत्त कुए में गश्त लगा कर ज्यों ही प्रियदर्शन के पास पहुंचे तो बोले-'मित्र, आज हमें एक बात का बड़ा अफ़सोस है कि हमारे सब भाई तो निपट गये हैं सो यदि आप आज हमको भी खा लेंगे तो कल से आप क्या खांयगे? इसलिए यदि आप एक बात करें तो आप

को बहुत दिन को खाने का प्रबन्ध हो जाय।' प्रियदर्श ने कहा—'वह क्या ? गंगदत्त बोला कि—बाहर एक तालाब में मेरे बहुत से भाई रहते हैं सो यदि आप भद्रा को आज्ञा दें तो वह अपनी पीठ पर चढ़ा कर मुझे बाहर उतार आवे और मैं उस ताल के सब मेंढकों को लिवा लाऊं।' ऐसा ही हुआ। प्रियदर्शन ने फ़ौरन ही भद्रा को आज्ञा दे दी कि—'तुम गंगदत्त को अपनी पीठ पर चढ़ा कर बाहर उतार आओ।' भद्रा ने पीठ पर चढ़ा गंगदत्त को बाहर उतार दिया। उस समय गंगदत्त बोला कि—

बुभुक्षितः किन्न करोति पापं क्षीणा जनाः निष्करुणा भवंति।
त्वं गच्छ भद्रे प्रियदर्शनाय न गंगदत्तः पुनरेपि कूपम्॥

अर्थ—भूखा क्या पाप नहीं करता, उस क्षीण पुरुष में दया कहां ? सो हे भद्रे ! तुम तो प्रियदर्शन के पास जाओ, अब गंगदत्त फिर कुएं में न जायगे।

नोट—इन दृष्टान्तों को देख कहीं आप लोग यह कुतर्क न उठाने लगें कि सांप और गोह और मेंढक भी कहीं बोला करते हैं ? नहीं, वास्तव में यह केवल मनुष्यों के समझाने के लिए सांप, गोह, मेंढकों के नाम ले ले अलङ्कार बांध कहे गये हैं। इसलिए कोई दोष नहीं। यदि मैं लिखता कि यह सच्चा वाक़या है तो बेशक झूंठ था।

१३३—परमेश्वर की रक्षा

एक वृक्ष के ऊपर एक कबूतरी और एक कबूतर बैठे हुए थे। इतने में एक बहेलिया धनुष बाण लिये हुए शिकार को पहुंचा और इस कबूतरी और कबूतर को बैठा देख अपना धनुष बाण चढ़ा इसकी ओर पूरा निशाना लगा दिया। इतने

में ऊपर की ओर उड़ता हुआ बाज कहीं से आ रहा था, उसने भी अपनी घात लगाई कि इस पर धावा करना चाहिये। यह दशा देख—

नाथ वक्ति कपोतिका कृतना नाथान्तकालेऽधुनो ।
व्याधोऽधावृतचापपञ्चितशरः श्येनस्तु खे दृश्यते ॥
एवं सत्यऽहना अदष्ट इपुना श्येनापि तेना हथा ।
तूर्ण तौतु गतौ यमालय मधो दैवी विचित्रागतिः ॥

अर्थ—अपने पति से कबूतरी व्याकुल होकर बोली कि हे नाथ, काल सिर पर आ गया। देखो नीचे दुष्ट बहेलिया धनुष बाण चढ़ाये पूरा पूरा निशाना लगाये हुए ऊपर की ओर ताक रहा है और धनुष से बाण छोड़ने ही वाला है और ऊपर की ओर देखो वह बाज जो उड़ रहा है वह भी पूरी पूरी घात लगाये हुए है, यहां तक कि झपटा मारने ही वाला है। परन्तु होना क्या है कि बहेलिये ने ज्योंही अपना बाण छोड़ना चाहा, त्योंही उसके पैर में एक सर्प लिपट गया और उसने बहेलिये को काट खाया जिससे उसका निशाना तिरछा हो गया और उसका बाण ऊपरवाले बाज के लगा जो कबूतर कबूतरी पर झपटा मारने आ रहा था। बस बाज तो ऊपर मरा और बहेलिया नीचे मर गया। परमेश्वर तेरी महिमा धन्य है!

१३४—बिना परीक्षा का काम

एक ब्राह्मणी ने एक न्योला पाल रक्खा था जिसको वह बड़े प्यार से रखती थी। नित्य प्रति अच्छी से अच्छी वस्तुयें उसे खिलाया करती थी। एक दिन ब्राह्मणी अपने छै मास के नन्हें बालक को एक खटोले पर लिटा कर गंगा-जल भरने चली

गई। न्योला लड़के के खटोले के पास बैठा था कि इतने में एक सर्प उस लड़के के काटने के निमित्त आया। न्योले ने सर्प को कुछ तो खा लिया और कुछ तोड़ मरोड़ वहीं डाल दिया। अब न्योला यह कर्त्तव्य अपना ब्राह्मणी को जताने के लिये उसके पास को चला। न्योला मार्ग में ब्राह्मणी को मिला। ब्राह्मणी ने उसके मुंह में खून भरा हुआ देख ख्याल किया कि यह मेरे पुत्र को काट कर खाया है। यह ख्याल करते ही उसको क्रोध आ गया और उसने न्योले को वहीं मार डाला। पश्चात् जिस समय ब्राह्मणी अपने स्थान पर पहुंची तो क्या देखती है कि मेरा बालक आनन्द से चारपाई पर खेल रहा है और उस बालक के खटोले के पास ही एक सर्प मुंथरा हुआ पड़ा है। ब्राह्मणी ने जान लिया कि यह सर्प मेरे लड़के को काटने आया था और न्योला इसे तोड़ मरोड़ मुझे यह दिखाने गया था कि देख तेरे लड़के को सर्प काटने आया था इसे मैं तोड़ मरोड़ के रख आया हूं। पुनः ब्राह्मणी को बड़ा भारी पश्चाताप हुआ कि अब ऐसा अपना हितैषी न्योला मर गया तो अब पछताने से क्या? इसीलिए कहा है कि—

> अपरीक्षितं न कर्त्तव्यं, कर्त्तव्यं सु परीक्षितम्।
> पश्चात्भवति संतापो, ब्राह्मणी नकुलार्थेन: ॥

अर्थ—बिना परीक्षा किये कभी कोई काम न करना चाहिये, बल्कि हर काम को भली भाँति परीक्षा कर करना चाहिये, नहीं तो इसी प्रकार का पश्चाताप प्राप्त होगा जैसा कि न्योला मारने से ब्राह्मणी को हुआ।

१२८—बिना बुद्धि के विद्या निष्फल है

एक जङ्गल में एक महा बलवान् सिंह रहता था और सिंह

जङ्गल के जानवरों में बड़ा उपद्रव किया करता था, यहां तक कि खाता तो एक ही आध जानवर था और तोड़ फोड़ दस पाँच को डालता था। । अतः जङ्गल के सम्पूर्ण जानवरों ने सम्मति की कि हम तुम सब मिल कर वनराज के पास चल कर यह प्रार्थना करें कि ऐसा करने से आपको क्या फल कि आप खावें तो एक और मारें दस को। इस प्रकार हम सब बहुत जल्द निबट जाँयगे, इसलिए अगर आपकी राय हो तो हम लोग अपनी अपनी ओसरी बाँधलें और एक रोज़ आपके पास चला आया करे। इस भाँति हम सब भी कुछ दिन जीवित रहेंगे और आपको भोजन भी बहुत दिन तक मिलता रहेगा। सिंह ने जानवरों की यह राय स्वीकार कर ली और ऐसा ही होने लगा, यानी उन जानवरों में से एक रोज़ चला जाता था और सिंह अपनी तृप्ति कर लिया करता था। एक दिन एक खरगोश की बारी आई पर यह सिंह के पास बहुत विलम्ब से पहुंचा। सिंह बड़ा ही क्षुधित और गुस्से से जला भुँजा बैठा था। ज्योंही उसके सामने खरहा पहुंचा तो तड़फ के बोला कि—'क्यों रे दुष्ट, तू इतनी देर तक कहां रहा?' खरहे ने उत्तर दिया—'महाराज, मैं तो आपकी सेवा में बड़े सवेरे आता था लेकिन मुझे दूसरा सिंह मिल गया और वह बोला—'क्योंरे खरहे, तू कहां जाता है?' मैंने कहा—'कि उस वन में जो हमारा वनराज रहता है, मैं उसके पास जाता हुं।' तब तो सिंह ने कहा कि—'चल उस सिंह को दिखला कि वह कहां है?' खरहे ने थोड़ी दूर ले जाकर सिंह को एक कुआँ बतला कर कहा कि इसमें है। सिंह ने ज्योंही तड़फ कर कुएं में आवाज़ लगाई कि कुएं में से भी आवाज़ आई। सिंह को यह निश्चय हो गया कि इसके भीतर सिंह अवश्य है। बस यह समझ सिंह कुएं में कूद पड़ा और खरहे ने अपनी राह ली। सच है—

वरं बुद्धि न सा विद्या, विद्यायां बुद्धिरुत्तमम् ।
बुद्धि विद्या विनश्यैव, यथाते सिंह कारका ॥

१२६--भेषधारी

एक बिल्ली बड़ी ही दुष्ट और निशदिन चूहे तोड़ा करती थी, इस कारण इससे चूहे भी होशियार हो गये थे और इसके सामने कभी कोई चूहा बिल बाहर नहीं निकलता था। तब बिल्ली ने देखा कि अब मेरा गप्पा नहीं जमता तो उसने यह आडम्बर रचा कि कुछ दिन उसने चूहा तोड़ना छोड़ दिया और इधर उधर से लोगों के घर में जा कहीं दूध, कहीं रोटी, कहीं कुछ, कहीं कुछ उठाकर खाया करती थी। कुछ दिन के बाद बिल्ली एक घड़े का घेरा अपने गले में पहिर चूहों के पास जाकर बोली-'मैं केदारनाथ को गई थी, सो यह केदार कङ्कण पहिर आई हूं और वहां रहकर मैंने बड़ा तप किया और यह प्रतिज्ञा की कि मैं कभी हिंसा न करूंगी और न कभी किसी जीव को सताऊँगी सो अब तुम हमसे बे फ़िकर रहो, मैं अब तुमको नहीं सताऊँगी।' चूहे यह सुन बेखटके हो गये और अब सब चूहे बिल्ली के सामने निकलने लगे, परन्तु बिल्ली जिस समय सब चूहे आते थे तो चुपचाप सीधी साधी खड़ी रहती थी और जब चूहे निकल जाते थे तो पीछे से एक उड़ा लिया करती थी। एक दिन चूहों ने अंतरङ्ग की कि—'क्यों भाई, यह बिल्ली तो तीर्थवासिनी और तपस्विनी है तथा केदारकङ्कण भी पहिरे हुए है, इससे आज एक काम करो कि आज कल क़ौमी तरक्की के लिए हर क़ौमों के बड़े बड़े लोग अपनी अपनी क़ुर्बानी कर रहे हैं, सो (उन नहीं में से

एक काणा चूहा था) काणे चूहे से कहा गया कि आज जिस समय हम लोग बिल्ली के सामने से चलने लगें तो पीछे आप रह जांय ताकि पता लग जाय कि बिल्ली हम लोगों को खाती है या नहीं?' काणे ने स्वीकार कर लिया और ऐसा ही हुआ। जब बिल्ली के सामने से सब चूहे चले गये और काणेराम पीछे रह गये तो काणे को बिल्ली शीघ्र ही निगल गई। पुनः दूसरे दिन बिल्ली के सामने आते ही चूहे बोले—

केदार कंकणं कण्ठे तीर्थवासी महातपः।

सहस्र मध्य शतं हन्ति काणः पुच्छं न दृश्यते॥

कि तू कण्ठ में तो केदार-कङ्कण पहिरे है और तीर्थ-वासिनी तथा महातपस्विनी भी है, पर हम जब एक हज़ार थे उनमें से तू ने १०० उड़ा लिये और उसका प्रमाण यह है कि आज काणऊ नज़र नहीं आते।

१३७--पड़ोसी गुण दोष जानता है

एक बार महाराज रामचन्द्र तथा लक्ष्मणजी दोनों चले जा रहे थे। महात्मा रामचन्द्रजी पम्पासर तालाब को देख बोले कि—

पश्य लक्ष्मण पंपायां, बकः परम धार्मिकः।

मन्दं मन्दं पदं धत्ते, जीवानां वधशंकया॥

अर्थ हे लक्ष्मण! इस पम्पासर तालाब को देखो। इसमें यह बगुला कैसा धार्मिक है। देखिये कैसे धीरे धीरे टपा टपा पैर रखता है कि कहीं कोई जीव न मर जाय। यह सुन मछली बोली कि—

बकः किं वर्ण्यते रामं, तेनाहं निष्कुली कृतः।

सहवासी विजानीयात्, चरित्रं सहवासिनां॥

अर्थ—हे राम! बगुले की आप प्रशंसा करते हो, इसने तो हमें निर्वंशी कर दिया। भगवन्! आप क्या जानें जो जिसके पास रहता है वह उसके गुण अच्छी तरह जानता है। महाराज, इस बगुले को हम अच्छी तरह जानती हैं।

१३८—डपोल संख

एक बार एक ब्राह्मण घर से धन की खोज में निकले। परन्तु चारों ओर संसार पर्यटन कर आये, पर कहीं धन का ठीक न लगा। अनायास एक महात्मा से इनकी मुलाक़ात हो गई और इन्होंने दण्डप्रणाम के बाद अपनी सारी अवस्था कह सुनाई। महात्मा ने ब्राह्मण को विशेष दुःखी देख इन्हें एक इस प्रकार की क़ाञ्चनीमुद्रा दी, जो रोज़ एक असरफ़ी दिया करती थी और पण्डितजी से कहा कि—'अब आप इसे ले जाइये, यह नित्य एक असरफ़ी आपको दिया करेगी, जिससे आपका दुःख दूर हो जायगा।' ब्राह्मण उस काञ्चनी मुद्रा को लेकर चल दिये परन्तु उनके दिल में पूर्ण रूप से विश्वास न था कि यह काञ्चनीमुद्रा रोज़ एक असरफ़ी देगी, इस लिये चित्त में यह लगी थी कि कहीं उतरें और स्नान पूजन करके इससे असरफ़ी मांगे, फिर भला देखें कि यह देती है या नहीं! ब्रह्मदेव ने ऐसा ही किया। मार्ग में एक गाँव मिला जहां एक शिवालय और कुवाँ बड़ा अच्छा बना था और पास ही बनिये की दूकान थी। यह देख ब्रह्मदेव जी शिवालय में उतर पड़े और कुँए पर स्नान कर शिवालेमें पूजन करनेलगे। वहीं पास की दूकान वाला बनिया भी बैठा था। ब्रह्मदेव ने पूजा कर उस काञ्चनी मुद्रा से कहा कि—'या काञ्चनीमुद्रा महारानी! अब एक असरफ़ी दीजिये।' यह सुनते ही काञ्चनीमुद्रा ने एक असरफ़ी दे दी। बनिया देख कर दंग हो गया और मन

ने सोचने लगा कि हम दिन भर मिहनत करते हैं तब बमुश्किल तमाम दो आने पैसे पैदा होते हैं और यह काञ्चनीमुद्रा तो बहुत ही अच्छी है कि बिना मिहनत एक असरफ़ी दिया करती है। यह समझ बनिये ने ठान ली कि ब्रह्मदेव की कांचनी मुद्रा किसी प्रकार लेना चाहिये। अतः दुपहर के बाद जब ब्रह्मदेव जी वहां से चलने लगे तो उस बनिये ने ब्रह्मदेव जी से बहुत कुछ लल्लो चप्पो की कि-'महाराज, अभी धूप है और दिन थोड़ा है, कहां कुकुर बसेर करते फिरोगे और यह तो आपका घर है, आप हमारे पूज्य हैं, आपकी सेवा करना हमारा धर्म है, भला आप लोगों की सेवा हमें कहां मिल सकती है, आपको यहां कोई तकलीफ़ न होने पावेगी, अतएव आप प्रातःकाल उठ कर चले जाइयेगा।' यह सुन उन्हें, आखिर ब्राह्मण ही ठहरे, दया आगई और ब्रह्मदेव जी ठहर गये। बनियें ने ब्रह्मदेव की बड़ी सेवा की और जब रात को वे सो गये तो सेठजी ने उनकी कांचनीमुद्रा तो निकाल ली और उसकी जगह एक दूसरी बटिया रख दी। ब्रह्मदेव जी प्रातःकाल उठ कर चल पड़े लेकिन इनके मन में अभी यह शंका लगी थी कि कांचनीमुद्रा ऐसा न हो कि एक ही दिन असरफ़ी देकर रह जाय और दूसरे दिन न दे, सो नहा डालें और पूजा करके अशरफ़ी मांगे, देखें यह रोज़ की अशरफ़ी देनेवाली है या नहीं? अतः ब्रह्मदेव नदी में स्नान कर और पूजा कर बोले कि-'या कांचनीमुद्रा, ले अब एक असरफ़ी दीजिये।' परन्तु अब वहां दे कौन? कांचनीमुद्रा जो थी वह तो सेठ के पास गई, उसके स्थान में एक पत्थर की बटिया थी, भला वह असरफ़ी कब दे सकती थी! जब कांचनीमुद्रा ने उस रोज़ असरफ़ी न दी तो ब्रह्मदेव ने समझा कि महात्मा जी ने हमारे साथ बड़ा धोखा किया। कहा था कि यह कांचनीमुद्रा

तुमको रोज़ एक अशरफ़ी देगी, सो यह एक ही दिन देकर रह गई। यह सोच ब्राह्मण फिर महात्मा के पास पहुंचा और महात्मा से हाथ जोड़ बोला कि—'महाराज, आपने हमको बड़ा धोखा दिया। आप कहते थे कि यह कांचनीमुद्रा आप को रोज़ एक अशरफ़ी देगी, सो महाराज, इसने तो सिर्फ़ एक ही दिन अशरफ़ी दी, दूसरे दिन इससे हम बहुत कुछ मांगते रहे पर इसने अशरफ़ी न दी।' महात्मा यह सुन कर हैरान हो गये और सोचने लगे कि कारण क्या है जो ऐसा हुआ।

पुनः महात्मा ने ब्राह्मण से पूछा कि-'तुम कहीं रास्ते में भी ठहरे थे?' ब्राह्मण ने सारा मार्ग का क़िस्सा महात्मा को कह सुनाया। महात्मा ने सब रहस्य जान लिया और ब्राह्मण को एक सङ्ख दिया और कहा कि इसे ले जाओ और जहां जिस शिवाले पर उस दफ़े ठहरे थे वहीं फिर ठहरना और वैसे ही पूजा करना औ इस सङ्ख से असरफ़ी मांगना और रात को उस बनिये के यहां ठहर जाना। यह सङ्ख तुमको वह कांचनी मुद्रा जो बनिये ने तुम्हारी बदल ली है दिला देगा और फिर तुम जब कान्चनीमुद्रा पा जाना तो सिवा घर के और कहीं न ठहरना।' ब्राह्मण ने वैसा ही किया। चलते चलते उसी शिवाले पर आकर ठहरा और कुएं पर स्नान कर पूजा करने लगा और फिर वही बनिया ब्राह्मण के पास आकर बैठ गया और पूजा देखने लगा। ब्राह्मण पूजा कर सङ्ख से बोला कि- सङ्ख महाराज, अब दो अशरफ़ी दीजिये।' सङ्ख बोला कि-'कल चार इकट्ठी दो रोज़ की दे दूंगा।' पुनः जब ब्रह्मदेव चलने लगे तो बनिये ने अपने मन में सोचा कि कांचनी मुद्रा तो एक ही अशरफ़ी रोज़ देती है यह तो दो रोज़ देता है, इस कारण ब्राह्मण को रखना चाहिये। अतः बनिये ने ब्राह्मण की खुशामद दरामद कर फिर रख लिया और उसकी बड़ी सेवा की। जब

रात को ब्राह्मण सो गया तो सेठ ने पहिले की काञ्चनी मुद्रा तो उसके पास रख दी और सङ्खु उठा लिया। अब प्रातःकाल ब्राह्मण तो काञ्चनी मुद्रा ले रवाना हुआ, रहे सेठ, सो नहा धो जब सङ्खुजी से बोले कि—'सङ्खुजी, कल चार देने को कहते थे, अब आज चार दीजिये।' सङ्खुजी बोले—'कल आठ।' जब दूसरे दिन सेठ ने कहा-'महाराज, सङ्खुजी, अब आठ दीजिये।' तब सङ्खुजी ने कहा— कल सोलह।' जब तीसरे दिन सेठ ने कहा कि—'सङ्खुजी, अब आज १६ दीजिये।' तो सङ्खुजी बोले कि—

जालाट काञ्चनी मुद्रा सा गता पद्मपंखिनी।
अहं डपोलसंखस्य न ददामि वदाम्यहम् ॥

अर्थ—वह जो काञ्चनी मुद्रा पद्म और सङ्खों को देनेवाली थी सो तो गई; और मैं तो डपोलसङ्खु हूं, कहता जाऊँगा, पर दूंगा एक कौड़ी नहीं।

१३१--अनधिकार चेष्टा

एक जङ्गल में एक बार दो बढ़ई एक शीशम की सिली चीर रहे थे। बढ़ई प्रायः जब लकड़ी चीरा करते हैं तो आरे के कुछ आगे एक छोटा काष्ट का खूंटा सा ठोंक दिया करते हैं जिसको खटकिल्ली कहते हैं। दोपहर को लकड़ी चीरना बन्द कर बढ़ई रोटी खाने चले गये। शीशम की सिली में खटकिल्ली ठुकी हुई थी जिससे कि सिली फैली हुई थी। इतने में एक बन्दर सिली पर आगे की ओर आकर बैठ गया।

बन्दर के अण्डकोश सिली की दराज़ के भीतर हो गये और वह उस खटकिल्ली को पकड़ कर हिलाने लगा, इसलिये खटकिल्ली बाहर निकल पड़ी और सिली के दोनों पल्ले जो फैले

परस्पर मिल गये, अतः बन्दर के अण्डकोश उस सिल्ली की दराज़ के भीतर दब गये जिससे कि बन्दर उसी समय मर गया। सच कहा है कि—

अव्यापारेषु व्यापारं यो जनः कर्त्तुमिच्छति।
सखलु निधनं याति कीलोत्पाटीव वानरः॥

अर्थ—जो मनुष्य अनधिकारी हो उस काम से करने की इच्छा करता है उसकी यही दशा होती है जैसे जङ्गल की सिली से कील उखाड़ने में बन्दर की हुई।

१४०—विपत्ति में बुद्धि बचाती है

एक बन्दर एक बार एक दरिया में तैर रहा था कि इतने में उस दरिया के रहनेवाले घड़ियाल ने इसकी टाँग पकड़ ली, तब तो दूसरा बन्दर जोकि दरिया के किनारे बैठा था इस बन्दर को पैरने से ठहरा हुआ देख बोला कि—'क्या हुआ, क्यों रुक गया?' बन्दर ने जवाब दिया कि—'क्या बतावें, एक घड़ियाल ने एक लकड़ी को अपने मुंह में दबाये समझ रक्खा है कि मैंने बन्दर की टाँग पकड़ ली।' यह सुन घड़ियाल ने बन्दर की टाँग छोड़ दी। सच है—

उत्पन्नेषु विपत्तेषु, बुद्धिर्यस्य न हीयते।
सएव दुर्गं तरति, जलस्थो वानरो यथा॥

अर्थ—आपत्ति के उत्पन्न होने पर भी जिसकी बुद्धि नहीं बिगड़ती वह बड़ी बड़ी कठिनाइयों से तरता है जैसे कि दरिया से बन्दर तर आया।

१४१—टके टके की चार बातें

एक बादशाह शिकार खेलने गया। लौटते समय देर हो

जाने के कारण एक स्थान पर ठहर गया। थोड़ी देर में क्या देखता है कि एक बान बटनेवाले का बान उरझ गया है। बानवाले ने अपनी स्त्री से कहा कि—"अगर यह मेरा बान तू सुरझा दे तो मैं तुझे टके टके की चार बातें सुनाऊं।" स्त्री ने बान सुरझा कर कहा कि—'अब आप वे चार बातें सुनाइये।' पुरुष ने कहा कि—"पहिली एक टके की बात तो यह है कि अपना काम किसी दूसरे के भरोसे न छोड़ो और दूसरी बात यह है कि अपनी स्त्री को कभी मायके में न रक्खे तीसरी बात यह है कि कमीने की नौकरी न करे और चौथी बात यह है कि अपनी धरोहर कभी दूसरे के पास छिपा कर न रक्खे इन चारों बातों को बादशाह ने ध्यान से सुन कर मन में सङ्कल्प किया कि इन चारों बातों की परीक्षा अवश्य करनी चाहिये। यह सोच आते ही अपने राज्य का सम्पूर्ण काम मंत्री आदि के सुपुर्द किया और कह दिया कि—'अब छै मास तक मैं राज्य का काम बिलकुल न करूंगा यहां तक कि मैं हस्ताक्षर भी न करूंगा।' यह कह कर बादशाह महल में रहने लगा परन्तु बादशाह की बीबी बादशाह की ससुराल में ही थी, इस लिए बादशाह ने सोचा कि ससुराल चल स्त्री का भेद देखना चाहिये कि मायके में रहने से क्या हानि होती है? ऐसा विचार बादशाह ने एक हज़ार अशरफी नक़द और एक लाल अपनी जांघ के अन्दर रख भेष बदल ससुराल का मार्ग लिया वहां पर पहुंच कर सराय में जा ठहरा और अपनी एक हज़ार अशरफ़ी चुपके से भटियारिन के पास रख दीं और उस से कहा कि आवश्यकता पड़ने पर मैं तुम से ले लूंगा और आप एक महान् दीन का भेष बना यानी केवल एक लंगोटी लगा मैली देह ले शहर के कोतवाल के पास जाकर हुक्का भरने में केवल रोटियों ही पर नौकरी कर ली। उस कोतवाल के पास

बादशाह की स्त्री (जिसमें कि हुक्का भरने में नौकरी की थी आया जाया करती थी। एक रोज़ का वृत्तान्त है कि दोनों यानी वह औरत और कोतवाल एक ही चारपाई पर लेटे हुए थे इतने में कोतवाल ने उस हुक्केवाले से कहा-"अबे हुक्केवाले ज़रा हुक्का भर कर रख जा।' और यह हुक्का भर कर रखने गया कि बादशाह की स्त्री इस की सूरत देख कर समझ गई कि हो न हो यह मेरा पति बादशाह है मेरा हाल जानने के लिये इसने ऐसा स्वांग रचा है अतः उस औरत ने कोतवाल से पूछा कि-"यह आदमी आपने कब से नौकर रक्खा है ?' कोतवाल साहब ने उत्तर दिया कि-"इसको रक्खे हुये अभी तो दस पन्द्रह दिन हुये होंगे।' तब तो उस औरत ने कहा कि इसे आप मरवा डालिये।' कोतवाल ने बहुतेरा कहा कि-"इस बेचारेने तुम्हारा क्या लिया है, ख़ाली रोटियों पर सारे दिन मिहनत किया करता है यह बेचारा बोलना भी तो नहीं जानता है क्योंकि बौरा है और न कुछ सुनता ही है क्योंकि बहरा है।' परन्तु बादशाह की स्त्री के बहुत हठ करने पर कोतवाल साहब ने विवश हो कर हुक्केवाले को जल्लादों के हवाले किया और जल्लादों से कह दिया कि इसे जङ्गल में मार कर डाल आओ। उसको जल्लाद लेकर जङ्गल में पहुंचे और अपने हथियार निकाल उन्होंने उसे मारने का इरादा किया। इतने में इस हुक्के भरने वाले ने कहा कि-"आप लोग मुझसे एक हज़ार अशरफियां ले लीजिये और मुझे छोड़ दीजिये।' बहुत वाद विवाद के पश्चात् जल्लादों ने आपस में यह निश्चय कर कहा कि—"एक हज़ार अशरफ़ियाँ लाइये हम आपको छोड़ देंगे।' हुक्केवाला जल्लादों को ले सराय में गया और भटियारिन से अपनी धरोहर यानी एक हज़ार अशरफ़ियें मांगी। तब तो भटियारिन ने डाट कर कहा कि—"चल बे भँड़ये, कल तक तो हमारे

कोतवाल साहब की रोटियों पर नौकर रहा और लंगोट लगाये घूमता रहा, तेरे पास अशरफ़ियाँ कहां से आईं।' तब यह बेचारा लाचार हो अपनी जांघ से लाल निकाल जल्लादों को दे अपनी जान बचा घर आया और वहाँ से कुछ दिन के बाद अपने ससुर को पत्र लिखा कि—"फलां मिती को बिदा कराने आवेंगे।' यह समाचार सुन बादशाहज़ादी को ज्ञान हुआ कि हमारे बादशाह वह नहीं थे कि जिसको हमने शुभा से मरवा डाला। बादशाह ने बिदा का पत्र स्वीकार कर लिया। बादशाह नियत तिथी पर बिदा कराने पहुँच गया और दो तीन दिन बादशाह ने अपने दामाद की बड़ी ख़ातिर की, परन्तु दामाद कुछ गुम सुम सा उदासीन वृत्ति धारण किये रहा, क्योंकि इसके पेट में तो और ही बात समाई हुई थी। उसके ससुर ने पूछा कि—"आप उदासीन क्यों हैं?' और आपने इस दफ़े हमसे कोई चीज़ नहीं मांगी सो जो आपकी इच्छा हो सो माँगिये।' अपने ससुर बादशाह का विशेष आग्रह देख इस बादशाह ने कहा कि—"हमारे शहर का प्रबन्ध ठीक नहीं है इसलिए आप अपने शहर के कोतवाल को हमारे यहां प्रबन्ध करने के लिये हमें दे दीजिये, दूसरे हमारे शहर की सरायों में बड़ी गड़बड़ी मची रहती है इसलिये आप अपने यहाँ की फलां भटियारिन को भी दे दीजिये।' बादशाह का दामाद इन दोनों को जहेज़ में ले बिदा करा कर रुख़सत हुआ और कोतवाल तथा भटियारिन दोनों रास्ते में बड़े खुश होते चले जाते थे कि अब तो हमारी खूब बन आई वहां जाकर सैकड़ों हमारी मातहती में रहेंगे और हमारी बड़ी इज़्ज़त तथा तरक्क़ी होगी। इधर बादशाह ने अपने शहर में पहुंच कर दूसरे ही रोज़ आम दरबार किया और उन बात बदनेवाले दोनों स्त्री पुरुषों को बुलवा कर पूछा कि-"फलां तारीख को फलां महीने में फलां

वक्त जब तुमने अपना बान उरझने पर अपनी स्त्री से बान सुरझा देने के एवज़ में चार टके की चार बातें बतलाई थीं वे कौन सी बातें हैं?" यह बेचारा डर के मारे कुछ बतला नहीं सकता था। पुनः बादशाह ने उसे धीरज देकर कहा कि—"तुम घबड़ाओ नहीं, बल्कि प्रसन्नता पूर्वक अपनी बातें कहो।" बानवाले ने कहा कि—"हुज़ूर, पहली बात तो एक टके की यह थी कि अपना काम किसी के भरोसे पर न छोड़े। पुनः बादशाह ने जब अपने दफ़्तर की जांच की तो बड़ा ही उलट पलट और बड़ी गलतियां पाईं यहां तक कि करोड़ों रुपया लोग गबन कर गये थे। बादशाह ने उन सबको उचित दण्ड दे बानवाले से कहा कि—"तुम्हारी यह बात एक टके की नहीं किन्तु एक लाख की थी।" पुनः बादशाह ने कहा कि आप अब अपनी दूसरी बात सुनाइये। तब तो बानवाले ने कहा कि—"हुज़ूर दूसरी बात यह है कि अपनी स्त्री को कभी मायके में न रक्खे।" तब तो बादशाह ने अपनी बेगम को दरबारे आम में बुला कर कहा—"क्यों हरामज़ादी! तू मायके में रह कर कोतवाल से मोहब्बत करते हुए मुझसे इतनी विरुद्ध हो गई थी कि मेरे मार डालने का हुक्म दे दिया था?" इतना कह बादशाह ने गरम तेल कराकर उसकी मूत्रेन्द्रिय में डला कर उसे मरवा डाला। और बानवाले से कहा कि—"तुम्हारी दूसरी बात एक टके की नहीं बल्कि दो लाख रुपये की थी। अब आप कृपा कर अपनी तीसरी बात सुनाइये।" बानवाला बोला कि—"सरकार तीसरी बात यह थी कि कमीने की नौकरी कभी न करे। यह सुन बादशाह ने कोतवाल साहब को बुला कर कहा—"क्योंजी, जब मैं आपके यहां रोटियों पर नौकर था और हुक्का भरता था तो आपने इस हरामज़ादी के कहने पर मुझे जल्लादों के सुपुर्द किस अपराध पर किया था? कोतवाल

उत्तर ही क्या देता, अतः बादशाह ने कोतवाल साहब को भी जहन्नुम रसीद किया और बानवाले से कहा कि—"यह तुम्हारी तीसरी बात एक टके की नहीं वल्कि तीन लाख की थी और अब कृपा कर अपनी चौथी बात सुनाइये। बानवाले ने कहा—"महाराज, चौथी बात यह है कि अपनी धरोहर किसी के पास छिपा कर न रक्खे। इस बात को सुन कर बादशाह ने भटियारी को बुला कर कहा कि—"हमने, जो तेरे पास एक हज़ार अशरफियाँ इस शर्त पर रक्खी थीं कि समय पड़ने पर लें लूंगा, पर जब मैं जल्लादों के साथ तेरे पास अशरफियां मांगने गया तब तू साफ़ इनकार कर गई और ऊपर से मुझे अण्ड वण्ड बातें सुनाईं।' भटियारी हाथ जोड़ क्षमा माँगने लगी। तब बादशाह ने कहा—"उस समय तुझे मेरी जान नहीं प्यारी थी, तो इस समय मुझे तेरी जान क्यों कर प्यारी हो सकती है, अतः बादशाह ने भटियारिन को कमर तक गड़वा कर शिकारी कुत्ते उस पर छोड़ उसे नोचवा डाला और बानवाले से कहा कि—"तुम्हारी यह चौथी बात भी एक टके की नहीं वल्कि चार लाख की थी।' इस प्रकार बानवाले को दस लाख दे विदा किया।

हारं ददाति केनापि दत्तमङ्गेन मर्कटः।
लेढि जिघ्रति संक्षिप्य करोत्युन्नत माननम्॥

१४२-राजा भोज का विद्या का शौक़

यह बात भली भांति प्रसिद्ध है कि राजा भोज के यहां जो कोई नई कविता करके ले जाता था उसको महाराज बहुत

धन दिया करते थे। एक बार चार मूर्खों ने यह विचार किया कि बहुत से लोग कुछ न कुछ कविता बना जब महाराजा भोज के यहां से पुष्कल धन ले आते हैं तो हम तुम भी कोई कविता बनावें। सबों ने कहा, बात तो बड़ी अच्छी है। अब सब के सब कविता बनाने में प्रवृत्त हुये कि उन में से एक बोला कि—'मुनुन मुनुन रहंटा मुन्नाय' लो हमारा तो बन गया। दूसरा बोला कि—"तेली का बैल खरी भुस खाय।" मेरा भी बन गया। तीसरा बोला—"डगर चलन्ते तरकस बन्द।" मेरा भी बन गया। चौथा बोला कि—'राजा भोज हैं मूसर चन्द।" तुम्हारा सब का बन गया तो मेरा भी बन गया। अब तो चारों की यह सम्मति पड़ी कि यह कविता चल कर महाराज भोज को सुनावें और यह विचार कर चारो महाराज भोज की ड्योढ़ी पर पहुंचे। परन्तु महाराज भोज की ड्योढ़ी पर प्रायः महा-कवि कालीदास भी रहा करते थे। इन चारों ने कालीदास से कहा कि—"हम लोग कुछ कविता बना कर लाये हैं सो महाराज को सुनाना चाहते हैं।' परन्तु कालीदास इनकी शक्ल देख बोले—"क्या कविता बना लाये हो जो महाराज को सुनाना चाहते हो? प्रथम हमें तो सुनाओ।' यह सुन उसमें से एक बोला कि—'मुनुन मुनुन रहंटा मुन्नाय।' कालीदास ने कहा—तुम्हारी कविता अच्छी है।' दूसरा बोला—'तेली का बैल खरी भुस खाय।' कालीदास ने कहा—'तुम्हारी भी अच्छी है।' तीसरा बोला कि—'डगर चलन्ते तरकस बन्द।' कालीदास ने कहा— 'तुम्हारी भी अच्छी है। चौथा बोला कि—"राजा भोज हैं मूसरचन्द। कालीदास ने कहा—'तुम्हारी कविता अच्छी नहीं है, इसलिये तुम ऐसा कहना कि—"राजा भोज जैसे शरद के चन्द।' चौथे मूर्ख ने मान लिया और चारों महाराज भोज के पास पहुंचे और महाराज को दण्ड प्रणाम

कर बोले कि—"महाराज, हम लोग आपको कुछ कविता सुनाने आये हैं। महाराज उनकी शकल देख और इनके मुख से ऐसे शब्द सुन बड़े प्रसन्न हो इनकी ओर मुखातिब हो बोले कि—'तुम लोग अपनी कविता सुनाओ। उनमें से एक बोला कि—"मुनुन मुनुन रहंटा सुन्नाय। महाराज ने इस विचारे की यह रुचि और साहस देख कि यद्यपि यह पढ़ा नहीं है पर इसकी इस ओर रुचि और इतना साहस तो हुआ कि इतने अक्षर जोड़ हमारे पास तक आया अतः महाराज ने कहा कि १००) इसे पारितोषिक दिये जायें। दूसरा बोला कि—"तेली का बैल खरा भुस खाय। महाराज ने इसे भी १००) रुपये के पारितोषिक की आज्ञा दी। तीसरा बोला कि—'डगर चलन्ते तरकस बन्द। महाराज ने इसे भी १००) रुपये पारितोषिक देने की आज्ञा दी। चौथा बोला कि—राजा भोज जैसे शरद के चंद्र। राजा भोज ने यह सुन विचारा कि इसका साथ तो इन तीन मूर्खों का है और यह भी कुछ पढ़ा लिखा नहीं मालूम पड़ता है। यह शब्द कहीं से पा गया या किसी से पूछ आया है नहीं तो ऐसे शब्द यह कभी नहीं बना सकता अतएव राजा भोज ने कहा कि—'इसे एक कौड़ी भी न दी जाय। तब वह मूर्ख बोला कि—'महाराज हमारा छन्द कालीदास ने बिगाड़ डाला - महाराज भोज ने कहा कि 'अच्छा जो तुम बना लाये हो वह कहो। तब वह बोला कि पहले हमारा छन्द ऐसा था कि—'राजा भोज हैं मूसर चन्द। महाराज ने कहा कि—अब ठीक है। अब इसे २००) पारितोषिक दिये जाँय। धन्य है महाराज भोज को। अभागे भारत! तेरे वे दिन अब कहां गये?

१४३—पुराने काल में यज्ञ का प्रचार

जिस समय महाराज रामचन्द्र और लक्ष्मण वन को जारहे थे और प्रयाग कुछ ही दूर रह गया था तो लक्ष्मण ने महाराज रामचन्द्र से पूछा कि—

किमयं दृश्यते तात धूमपुञ्जोयमग्रतः ।
प्रयागो दृश्यते तात यजन्तेत्र महर्षयः ॥

भाई जी यह धुएं की गुंजारी जो आगे उठ रही है सो क्या दिखलाई पड़ता है? महात्मा राम ने उत्तर दिया कि भाई लक्ष्मण यह प्रयाग दिखलाई पड़ता है यहां महर्षि लोग यज्ञ कर रहे हैं उसका यह धुआं है बल्कि प्रिय लक्ष्मण इसका प्रयाग नाम ही इस लिये पड़ा है कि-'प्रकृष्टेन यजते यस्मिन असौ स प्रयागः।' जिसमें प्रकृष्ट रूप से यज्ञ हो वह प्रयाग कहलावे।

पुनः किसी कवि ने कहा है—

यदि कदाऽपि पुरा पतिताश्रुतः श्रुतिगताद्धि द्विजानच याऽन्यथा।
परमियं वसुधाऽत्र विना क्रतुं परिवृताऽश्रुजलैरिति चित्रताम् ॥

पुराने ज़माने में यदि कभी किसी के आंसू निकलते थे तो केवल यज्ञ के धुएं से, नहीं तो प्रजा की आंखों से कभी आंसू नहीं निकलते थे।

१४४—पहले हमारे यहां अधर्मी न थे

एक महात्मा को एक ब्राह्मण निमन्त्रण देने गये तो महात्मा ने इनकार किया। पुनः ब्राह्मण ने कहा कि—

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपो ।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान् स्वैरी न च स्वैरिणी ॥

अर्थ—महाराज! न हमारे यहां कोई चोर है और न कोई कदर्य्य अर्थात् कंजूस न शराबी और न अग्निहोत्र से रहित, न मूर्ख न पर-स्त्री-गामी और न स्त्रियें ही पर-पुरुष-गामिनी हैं फिर आप हमारे यहां भोजन करने क्यों नहीं चलेंगे? यह वाक्य सुन महात्मा ने निमंत्रण स्वीकार कर जा के भोजन किया और जाकर यह देखा कि सम्पूर्ण मनुष्यों के घरों में उनके मकानों की धन्नियां धुयें से काली हो रही थीं।

१४५—बाल विवाह

जातोऽपि न चिरंजीवेत् जीवे वा दुर्बलेन्द्रियः।
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत्॥

एक ब्राह्मण ने अपनी कन्या का ब्याह आठ ही वर्ष में कर दिया। ब्राह्मण अपने घर का धनवान् था और कुछ पढ़ा लिखा भी था इस कारण वह अपनी कन्या को भी पढ़ाया करता था और ब्राह्मण का समधी और दामाद दीन होने के कारण कलकत्ता में नौकर थे। ब्राह्मण का दामाद बड़ा ही छैल और गरीब गुण्डा तथा उजड्ड भी था। अपने बाप से बिलकुल नहीं दबता था। ब्याह होने के बाद सोलह वर्ष लगातार वह परदेश में रहा और ब्राह्मण की कन्या यहां पढ़ लिख कर बहुत कुछ योग्य हो गई। सोलह वर्ष के बाद जब ब्राह्मण का दामाद आया तो ब्राह्मण ने इसकी बड़ी खातिर की। जब रात का समय आया तो ब्राह्मण की लड़की से उसकी सखी सहेलियों ने कहा कि—"तुम्हारे पति आये हैं, जाकर उनकी सेवा करो।" उसने उत्तर दिया कि—'किसका पति? मेरा पति वह हर्गिज़ नहीं है।' सखियों ने कहा—"क्यों? क्या तुम्हारे मां बापने तुम्हारा ब्याह उसके साथ नहीं किया?" लड़की ने कहा—"तो वह मेरे मां

बाप के पति होंगे, मां बाप उनकी सेवा करें। मैंने उसके साथ कोई प्रतिज्ञा नहीं की।" सखियों ने कहा—"तुम छोटी थीं, तुम्हें याद नहीं, तुमने छोटेपन में प्रतिज्ञा की है।' लड़की ने कहा—जब कि मैं अपने ठीक ठीक होशहवास में ही न थी तो प्रतिज्ञा कैसी?' पुनः जब ये समाचार ब्राह्मण और उसकी स्त्री को मालूम हुआ तो उन दोनों ने अपनी लड़की को बहुत समझाया और बोले कि–'वह विदा कराने आये हैं, तू ऐसा कहती है!' लड़की ने बाप से कहा कि–'तो आपही विदा हो के उसके साथ चले जाइये, क्योंकि आपने व्याह किया और आप ही का वह पति है।' आख़िर यह मुक़दमा अदालत तक पहुंचा, वहां साहब मजिस्ट्रेट के पूछने पर लड़की ने कहा कि—"मेरा व्याह मुझे मालूम भी नहीं कब हुआ और किसने प्रतिज्ञा की। अब यह न मालूम कौन कहां से आ गया। मेरा बाप कहता है कि तुम इसके साथ जाओ, मैंने तुम्हारा इसके साथ व्याह किया है। तो मैंने बाप से कहा कि जब तुमने विवाह किया तो तुम्हीं इसके साथ विदा हो के चले जाओ, मैंने इसके साथ कोई इक़रार नहीं किया।' आख़िर मुक़दमा ख़ारिज हो गया और लड़की को हुक्म हुआ कि तुम अपना व्याह अपनी मर्ज़ी के मुआफ़िक़ कर सकती हो।

१४६—पूर्व स्त्रियों की वीरता

पूर्व स्त्रियों की विद्या और योग्यता से ग्रन्थ के ग्रन्थ भरे हुए हैं और ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो भारत की देवी गार्गी मैत्रेयी, कात्यायनी, सुलभा आदि की ब्रह्मविद्या तथा कैकेई, दुर्गावती, ताराबाई, संयोगिता, लक्ष्मीबाई की वीरता, पद्मावती सीता, आदि का सतीत्व न जानता हो। परन्तु हमें दिखलाना तो यह है कि अभी गये गुज़रे समय में आपके यहां एक एक

स्त्री इतनी योग्या और विदुषी होती थी कि जिसके लिए मैं आपके सामने महाराणी विद्योत्तमा का चरित्र उपस्थित करता हूं

विद्योत्तमा एक बड़ी ही सुयोग्य और विदुषी कन्या थी। उसने एक विद्या का संग्रामरूपी यज्ञ रच रक्खा था अर्थात् संसार भर में यह विज्ञापन दे रक्खा था कि जो कोई मुझे शास्त्रार्थ में आकर जीत ले उसी के साथ में अपना व्याह करूंगी रूप में भी वह एक ही रूपवती थी इस कारण बड़े २ विद्वानों ने आ आ कर इसके साथ शास्त्रार्थ किये, परन्तु संग्राम में वे पराजित हो अपना सा मुंह ले ले चले गये। विद्योत्तमा इस शोक में थी कि क्या संसार में मुझे कोई वर न मिलेगा। उन पराजित पण्डितों ने यह सम्मति की कि इसका व्याह ऐसे मूर्ख के साथ कराना चाहिये कि जो एक अक्षर भी न जानता हो। अतः वे मूर्ख की खोज करने लगे। एक जगह एक पुरुष एक वृक्ष पर जिस डाली पर बैठा था उसे ही काट रहा था। पण्डितों ने यह दृश्य देख विचार किया कि इससे बढ़कर मूर्ख शायद अब संसार भर में न मिलेगा, अतः विद्योत्तमा का व्याह इसीसे कराना चाहिये। बस, पण्डितों ने विद्योत्तमा के सामने उस मूर्ख को लेकर खड़ा कर दिया और कहा—'आप इससे शास्त्रार्थ कीजिये।' विद्योत्तमा ने एक अंगुली उठाई जिसके माने यह थे कि ब्रह्म एक है या दो? पण्डित ने इसे समझा कि यह कहती है कि मैं तेरी एक आँख यह अंगुली घुसेड़कर फोड़ दूंगा। तब तो वह दो अंगुली उठा मन में बोला कि अगर तू मेरी एक आंख फोड़ेगी तो मैं तेरी दोनों फोड़ दूंगा जिस का अभिप्राय पण्डितों ने यह समझाया कि कहता है एक जीव और एक ब्रह्म। पुनः विद्योत्तमा जोने पाँच अंगुलियें उठाई जिस का मतलब यह था कि पांचो इन्द्रियें तुम्हारे वश में हैं? पण्डितों ने इस मूर्ख से कहा कि कहती है कि थप्पड़ मारूंगी। इस मूर्ख ने

ने मूठी बांध के घूंसा उठाया और मन में बोला कि अगर तू थप्पड़ मारेगी तो घूंसा मारूंगा। इसका अभिप्राय पण्डितों ने विद्योत्तमा को समझाया कि कहता हैं कि पांचों इन्द्रियां मेरे मूठा में हैं। आख़िर विद्योत्तमा का व्याह उस मूर्ख कालीदास से हो गया। जब रात में ये दोनों स्त्री पुरुष इकट्ठे हुये तो अ-चानक एक ऊंट उस समय किसी का छूट कर ब्रलबलाता जा रहा था। मूर्ख कालीदास बोला कि उट्ट उट्ट उट्ट। यह सुन विद्योत्तमा ने समझ लिया कि यह मूर्ख है। महारानी विद्यो-त्तमा ने उस भेड़ों के चरानेवाले गड़रिये मूर्ख कालीदास को इस प्रकार पढ़ाया कि वही कालीदास रघुवंश और मेघदूत सरीखे काव्यों का रचयिता हुआ और संसार में उसने महा-कवि की उपाधि प्राप्त की। यह सब उसकी स्त्री का ही प्रताप था। एक भाषा कवि का वाक्य है कि—

दमयन्ति सीता गार्गी लीलावती विद्याधरी।
विद्योत्तमा मन्दालसा थीं शास्त्रशिक्षा से भरी॥
ऐसी विदुषी स्त्रियें भारत की भूषण होगईं
धर्मब्रत छोड़ा नहीं गो जान अपनी खो गईं॥

१४७--अन्धेर नगरी अनबूझ राजा

एक ग्राम बड़ा ही रमणीक और सुन्दर था। वहां प्रायः सभी चीज़ सदैव टके सेर बिका करती थी। एक गुरु और उनके दो चेले एक बार चलते चलते उसी गांव में पहुंच गये। गुरु ने गांव के लोगों से पूछा—भाई, ग्राम का क्या नाम है? लोगों ने कहा—'अन्धेर नगरी चौपट्ट राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा।' गुरु ने कहा कि चल कर तो देखें कैसी अन्धेर नगरी है जहां सब चीज टके सेर ही बिकती है। जब

गांव में जा बाज़ार पहुंचे तो अनाजवालों से पूछा कि-'भाईजी कितने सेर?' दूकानदार ने कहा—टके सेर और गेहूं टके सेर और चावल टके सेर और सरसों।' पुनः हलवाइयों के पास जाकर पूछा-अरे भाई हलवाई, बरफ़ी कितने सेर?' हलवाई ने कहा—'टके सेर और पेड़ा टके सेर और बताशा टके सेर। पुनः बजाज़ों से पूछा-'भाई बजाज़, मारकीन क्या भाव?' बजाज़ बोला—'टके सेर, मलमल टके सेर, रेशम टके सेर।' पुनः काछियों के पास जा पूछा—'पालक क्या भाव?' काछी बोले—'टके सेर, बैंगन टके सेर।' गुरु ने यह दशा देख चेलों से कहा—'अरे भाई चेलो, सुनो—

छेदश्चंदन चूत चम्पक वने रक्षा करीर द्रुमे।
हिंसा हंस मयूर कोकिल कुले काकेषु नित्यादरः॥
मातंगेन खरक्रयः समतुला कर्पूर कार्पासयो।
एषायत्र विचारणा गुणिजनो देशाय तस्मै नमः॥
सेत सेत जहँ एक से, दधि अरु दूध, कपास।
ताहि राज्य में ना करिय, भूलि कै कबहूँ बास॥

इसलिए चलो यहां से भाग चलें। उन दो चेलों में से एक चेला बोला--गुरुजी, हम तो यहां से न जावेंगे, मज़े से टके सेर मलाई ले ले उड़ावेंगे।' गुरुजी ने कहा-'अच्छा बेटा, मत चलो, पर एक बात हम कहे जाते हैं कि शायद तुम्हें कोई कभी आपत्ति आ पड़े तो हम अमुक शहर में रहेंगे, तुम हमें बुला लेना। पुनः गुरुजी एक चेला को ले कर चले गये और यह दूसरा चेला टके सेर मलाई खा खा ख़ूब मोटा हुआ क्योंकि गांव के लोग तो बिचारे बहुत ही दुबले और टके सेर की बिक्री से हैरान थे, पर इन चेला जी की तो यह दशा थी कि—

आन के फिकर न धन के ख्वाट । ई धमधूसर काहे ख्वाट ॥

परन्तु कुछ दिन के बाद जब बरसात आई तो एक तेली की दीवार गिर पड़ी कि जिससे एक गड़ेरिये की भेड़ कुचल गई। दीवारवाले ने राजा के यहां जाकर नालिश की कि—'हुजूर गड़ेरिये की भेड़ ने मेरी दीवार को कुचल डाला। राजाने गड़ेरिये को तलब किया और पूछा-'क्यों रे गड़ेरिये, तेरी भेड़ ने तेली की दीवार को किस तरह कुचल डाला ?' गड़ेरिया बोला-'हुजूर राज ने दीवार ही इसप्रकार की बनाई कि जो भेड़ ने कुचल डाला, इसलिये राज का कुसूर है। अब गड़ेरिया गया और राज आया। राजाने उससे पूछा—क्योंरे राज तूने तेली की दीवार किस तरह की बनाई जो दीवार को भेड़ने कुचल डाला और दीवार गिर गई ? राज बोला—हुजूर, गारेवालों ने गारा ढीला कर दिया, इसलिये गारेवालों का कुसूर है।' अब राज गया और गारेवाले आये। राजा ने पूछा-'क्योंरे गारेवालो, तुम लोगों ने गारा क्यों ढीला किया कि जिससे दीवार राज से कमज़ोर बनी और दीवार को भेड़ ने कुचल डाला ? गारेवालों ने कहा कि-'हुजूर, हम क्या करें भिश्तीने पानी ज़्यादा डाल दिया, इसलिये भिश्ती का कुसूर है।' गारेवाले गये भिश्ती आया। राजा ने पूछा-'क्यों रे भिश्ती तूने गारे में पानी ज़्यादा क्यों डाला जिससे गारेवालों से गारा ढीला हो गया और राज से दीवार कमज़ोर बनी कि जिससे गड़ेरिये की भेड़ ने तेली की दीवार कुचल डाली ?' भिश्ती बोला-'हुजूर, हम क्या करें, मशकवाले ने मशक बड़ी बना दी कि जिससे पानी ज़्यादा आ गया, इस लिये मशकवाले का कुसूर है।' अब भिश्ती गया मशकवाला आया। राजाने पूछा —क्योंरे मशकवाले, तूने इतनी भारी मशक क्यों बनाई कि

जिससे भिश्ती से पानी ज़्यादा गिर गया और गारेवालों से गारा ढीला हो गया और राज से दीवार कमज़ोर बनी कि जिससे गड़ेरिये की भेड़ ने तेली की दीवार कुचल डाली ?' मशकवाले ने कहा कि-'हुजूर, मैं क्या करूं अब की दफे शहर के कोतवाल ने शहर की सफ़ाई अच्छी तरह नहीं कराई कि जिससे बड़े २ पशु मर गये और मशक बड़ी बन गई इसलिये कोतवाल का कुसूर है।' अब मशकवाला गया और कोतवाल आया। राजा ने पूछा—'क्योंजी कोतवाल, तुमने इस साल शहर की सफ़ाई क्यों नहीं कराई कि जिससे बड़े २ पशु मर गये और मशकवाले से मशक बड़ी बन गई और भिश्ती से पानी ज़्यादा गिर गया जिससे गारेवालों से गारा ढीला हो गया और राज से दीवार कमज़ोर बनी कि जिससे गड़ेरिये की भेंड़ ने तेली की दीवार को कुचल डाला ?' कोतवाल कुछ न बोला। राजा ने कोतवाल को एकदम सूली का हुक्म दिया जब जल्लादों ने कोतवाल को ले सूली पर चढ़ाया और कोतवाल के दुबले होने के कारण फांसी ढीली हुई तो जल्लादों ने राजा से आकर कहा कि-'हुजूर, कोतवाल को लेजाकर सूली पर चढ़ाया लेकिन सूली ढीली होती है।' यह सुन राजा ने कहा-'ओ, हमारी फांसी मोटा मांगती है अच्छा, शहर भर में जो मोटा आदमी मिले कोतवाल के बदले में चढ़ा दिया जाय।' यह आज्ञा पा राजदूत शहर में मोटा आदमी ढूंढने निकले, परन्तु उस नगर में मोटा आदमी कहां। अब तो वही गुरु के चेले जो गुरु के कहने पर नहीं गये थे और गुरु से कहा था कि हम तो यहां टके सेर मलाई ले ले कर उड़ायेंगे और मज़े करेंगे राजदूतों को मिल गये। राजदूतों ने इन्हें पकड़ कहा-'चलिये, आपको राजा का फांसी का हुक्म है।' इन्होंने कहा-'मेरा अपराध क्या ?' दूतों ने कहा- अ,राध कुछ

नहीं, राजा की फांसी मोटा मांगती है।' अब तो इन्होंने फौरन ही गुरु को खबर दी। जिस दिन ये सूली पर चढ़ने लगे कि त्योंही गुरुजी आगये। इनसे पूछा गया कि—'तुम किसी से मिलना चाहते हो?' इन्होंने कहा कि-'हम अपने गुरु से मिलना चाहते हैं।' अतः इन्हें गुरु से मिलने की इजाज़त दी गई। जब ये गुरु से मिलने गये तो गुरुने इनसे चुपके से कह दिया कि-तुम कहना हम फांसी चढ़ेंगे और हम कहेंगे हम चढ़ेंगे, इस तरह तुम हम से झगड़ना तो हम फांसी से तुम्हें बचा लेंगे।' बस ऐसा ही हुआ कि वहीं फौरन दोनों झगड़ने लगे। चेला कहता था कि मैं फांसी चढ़ूंगा, गुरु कहता था कि मैं फांसी चढ़ूंगा। यह झगड़ा राजा के पास गया। राजा ने पूछा कि-'भाई, तुम लोग क्यों परस्पर लड़ते हो?' गुरुने कहा कि—'हुजूर, आज ऐसा मुहूर्त है कि आज जो फांसी पर चढ़ेगा वह उस जन्म पृथिवी भर का राजा होगा और अन्त में मुक्तिपद प्राप्त करेगा।' तब तो राजा ने कहा- हटाओ इन को, हमीं चढ़ेंगे।' और राजा स्वयं सूली पर चढ़ गया।

१४८—अयोग्य श्रोता

एक स्थान पर एक पण्डित वाल्मीकीय रामायण सुना रहे थे। जब रामायण समाप्त हो गई तब श्रोताओं ने कहा कि—'पण्डितजी, रामायण तो आपने सुनाई, परन्तु अब तक हम यह न समझे कि राम राक्षस थे या रावण?' तब तो पण्डितजी ने उत्तर दिया कि—भाई, न राम राक्षस थे न रावण राक्षस तो हम हैं जिन्होंने तुम सरीखे श्रोताओं को कथा सुनाई।

उल्लू बसन्त

एक उल्लू बसन्त का बाप बहुत सा द्रव्य छोड़कर मरा था

परन्तु इसने अपने उल्लूपने में अपने द्रव्य का नाश कर दिया. यहाँ तक कि इसकी स्त्री और बच्चे भूखों मरने लगे। स्त्री ने दुःखी होकर कहा कि—कुछ व्योपार किया करो, इस प्रकार कैसे पार होगी?' वह बोला कि-'अच्छा आज तो आटा उधार ले आओ, कल व्योपार करूंगा।' इसी प्रकार यह नित्य किया करता था। एक दिन उसकी स्त्री बैठ रही कि अब पड़ोसी तो नहीं देते मैं कहां से उधार ले आऊं? और वास्तव में यही दशा थी, अतः उल्लू बसन्त विवश हो बोला कि-मुझे एक खुरपा ला दे तो मैं घास छोल लाऊं और उसे बेच लाऊंगा।' स्त्री ने किसी पड़ोसी को खुरपी मांग कर ला दी। यह खुरपी ले प्रातःकाल से इधर उधर घूमता घामता गया और मरता हुआ १० बजे वन में पहुंचा। वहां एक स्थान पर खड़े होकर खुरपी से अपने नख काटने लगा कि इतने में एक बटोही आ निकला और उसने कहा कि—'भैया खुरपी से नख क्यों काटते हो? यह खुरपी तुम्हारे हाथ में कहीं लग जायगी।' वह बोला—उंह, ऐसे कहीं हाथ कटा करते हैं। बटोही थोड़ी ही दूर गया था कि इतने में इसका हाथ कट गया और यह हाथ के कटते ही खुरपी डाल कर बटोही की ओर दौड़ा और हाथ जोड़ कर उसके चरणों में गिर पड़ा और कहा कि—'महाराज, आप तो साक्षात परमेश्वर हो।' उसने कहा-'भला क्यों? उल्लूबसन्त बोला- यदि आप परमेश्वर न होते तो यह कैसे आगे से जान लेते कि मेरा हाथ कट जायगा, अतएव आप कृपा कर हमें यह बता दें कि हम कब मरेंगे?' बटोही ने यह सुन कर समझ लिया कि यह कोई पक्का उल्लू ही है। उसने कहा कि—"जब तक तेरा डोरा नहीं टूटता तब तक तू नहीं मरेगा और जिस दिन तेरा डोरा टूट जायगा उसी दिन तेरी मौत है।' बस यह उल्लूबसन्त

उसी समय अपने घर आया और अपनी स्त्री से एक डोरा ले अपनी कमर में बांध समझ लिया कि जब तक यह डोरा नहीं टूटता तब तक मेरा जीवन है। पश्चात जिस पड़ोसिन ने इस उल्लूवसन्त की स्त्री को अपनी खुरपी माँगने में दी थी वह खुरपी माँगने आई। उल्लूवसन्त की स्त्री ने उल्लूवसन्त से कहा—'महाराज, वह खुरपी कहां है?' इसने कहा-'वह तो हम जंगल में डाल आये।' स्त्री ने कहा-तो अब मैं इसे क्या दूं उल्लूवसन्त ने कहा—'हैं हैं हैं हैं हैं हैं हैं हम क्या जानें। स्त्रीने कहा—'और घास नहीं छोल लाये, खाओगे क्या? इसने कहा तू ही ले आ कहीं से।' यह विचारी हैरान, थी क्या करती। फिर भी ला के खिलाया। एक दिन स्त्री ने व्योपार को कहा और इसने इनकार किया। पुनः दोनों में बड़ा ही धक्कम धक्का हुआ और इसका डोरा टूट गया तब तो इसने कहा-'अरे सखु री हमारा डोरा टूट गया हम तो मर गये। अब देखूं किससे नाज मंगावेगी? और पैर फैला कर सो गया और चिल्ला २ कर कहने लगा—'अबे कुनबे वालों, हमको कफ्फन ले आओ' हम मर गये। सब लोग बोले—'साला यों ही बका करता है कहीं मरे भी बोलते हैं। अतः कोई पास तक नहीं आया। उल्लूवसन्त बोला कि—'कुनबा तो कुनबा, साले पड़ोसी भी नहीं सुनते हैं कि मुहल्ले में मुर्दा पड़ा है और सब लोग रोटी पानी खाते पीते हैं। यहां के लोग बड़े बदमाश हैं मेरे पास भी नहीं आते हैं कि यह मुर्दा क्या कहता है। खैर हम अपने लिये कफ़न आप ले आवेंगे। अतः बाज़ार में जाकर क़फ़न—फ़रोश यानी बजाज़ से बोला कि—'भाई साहब, हम मर गये आप मेहरबानी करके हमें क़फ़न दे दो ताकि हम दफ़न हो जायें। बजाज़ ने समझ लिया कि पूरा उल्लूवसन्त है बजाज़ ने कहा—'अच्छा दाम लाओ।' यह बोला—'किसी दिन दे

जायँगे।' बजाज़ बोला—'फिर किस दिन दे जाओगे तुम तो दफ़न हो जाओगे, मैं किससे दाम पाऊँगा।' यह बोला—अरे यार दफ़न होके क्या नहीं आते ? बजाज़ बोला—'मरे हुये नहीं आते।' इसने कहा—'ख़ैर वैसे ही गड़ आयेंगे।' इतना कह मरघट में जा एक क़बर खोद उल्लूबसन्त उसमें जा सोये थोड़ी देर बाद जब भूख ज़्यादा लगी तब लगे घबड़ाने। दैव योग उधर से एक आदमी पीठ पर गठरी बांधे और एक लड़का कंधे पर बिठाले चला आता था। उसको देख उल्लूने सोचा कि इसके पास रोटी ज़रूर होगी इससे मांगनी चाहिये जब वह आदमी पास आया तो यह क़बर से उठकर एकसाथ खड़ा हो उसके आगे आकर रोटी मांगने लगा। वह आदमी पहले तो डरा फिर उसने सोचा कि यह मुर्दा तो है नहीं कोई उल्लू है और बोला—'अच्छा रोटी हम दे देंगे पर इस लड़के को कंधे पर रख कर ले चल। उल्लू बोला– अच्छा ला भाई पर रोटी दे दे।' उसने रोटी दे दी। अब ये रास्ते में चलते जायँ और कहते जायँ कि– देखो. मरने पर भी सुख नहीं; यहां भी मजूरी करनी पड़ी। लोग कहा करते हैं जीने से मर जाना भला है, यह सब झूठ है इससे तो जीना ही अच्छा है। ले भइया, हम अब तक मरे सो मरे अब नहीं मरेंगे। जो मजूरी मरे पर यहां करी सो घर ही में करेंगे जिसमें आनन्द से घर तो रहेंगे यहां तो क़बरों में सोना पड़ता है। यहां इतने मरे हुये आदमी हैं, कोई किसी से नहीं बोलता है। सो अपना लड़का ले हमको रुख़सत करो। हम मजूरी करेंगे और खायेंगे।' बटोही ने लड़के को उतार लिया और इसको रुख़सत कर दिया।

हे भाइयो, जो लोग माया के मारे होते हैं, उनके लड़के ज़्यादा बिगड़ते हैं, वे मजूरी के लायक़ भी नहीं रहते।

१५१—उल्लू का दादा उल्लूसिंह

एक उल्लू का दादा उल्लूसिंह करके मशहूर था। उसका रोज़गार कहीं नहीं लगता था। एक वकील साहब को नौकर की चाहना हुई। दैवयोग से उल्लूसिंह को तलाश कर उन्होंने नौकर रख लिया। वकील साहब ने कहा—'यह बर्दी पहले सिपाही की रक्खी है सो तुम पहन लो।' और कोट पायजामा साफ़ा तथा एक तलवार भी उसे दे दी और कहा- मेरे सामने पहन कर दिखाओ।' उस उल्लू ने कोट की बाहें पैरों में चढ़ाईं और साफ़ा कमर में बांध लिया पैजामा हाथों में पहन लिया म्यान फाड़कर गले में डाल ली और तलवार को पूछा- 'इससे क्या करते हैं?' वकील बोला—'यह उस वक्त काम आवेगी जब कोई हम से बोलेगा उसी वक्त साले को मार देना, यही तुम्हारा काम है।' उल्लू के पहनावे को देख वकील साहब खूब हँसे और उसे पहनना सिखाया। एक दिन उस वकील का साला आया और वकील से बातें करने लगा। उल्लू ने तलवार निकाल कर एक ऐसा हाथ मारा कि साले साहब के दो टुकड़े हो गये। वकील बोला—'अबे यह क्या किया? वह बोला— मेरा क्या कसूर है, आपने कहा कि कोई साला हमसे बोले, उसे मार देना, सो साला तुमसे बोलो था मैंने मार दिया।' फिर तो पुलिस ने मुकदमा क़ायम किया। वकीलने उल्लू से कहा—'क़लमदान उठा ला, अर्ज़ी लिखूंगा।' यह उल्लू इधर उधर देख बोला कि—'हुजूर, क़लमदान न हो तो फुकनी उठा लाऊँ।' वकील और पुलिस के लोग हँसने लगे और [illegible] चालान कर दिया।

१५१-दुनिया में सब से बड़ी बात

एक राजा ने अपने दीवान के मरने के पश्चात् नियमानुसार दीवान के लड़कों के पढ़ने का पूर्ण प्रबन्ध कर दीवान का स्थानापन्न दूसरा दीवान उस समय तक के लिए नियत किया जब तक पूर्व दीवान के लड़के पढ़ लिख कर योग्य न हो जांय। कुछ काल के पश्चात जब पूर्व दीवान के लड़के पढ़ लिख कर योग्य हुए तब इस स्थानापन्न दीवान ने ६६ सहस्र मुद्रा पूर्व दीवान के नाम राजा के खाते में डाल दिये और जब राजा पूर्व दीवान के लड़कों को दीवान पद देने लगे तब इस दीवान ने राजा के सामने खाता ले जाकर रख दिया और कहा कि-" अन्नदाता, इन बच्चों के बाप के नाम ६६ सहस्र मुद्रा आप का पड़ा हुआ है, जब तक यह सम्पूर्ण रुपया आप को ना चुका दें तब तक पद इन्हे न दिया जावे।" राजा को भी समझ में ऐसा ही आ गया, अतः राजा ने लड़कों से कहा-"जब तक तुम हमारा सब रुपया न दे दोगे, तब तक तुम्हें यह पद न मिलेगा।" पूर्व दीवान के लड़के तो बड़े ही चतुर और बुद्धिमान थे अतएव बच्चों ने कहा-" श्रीमान यदि हमें दीवान पद नहीं दिया जाता तो जबतक हम दोनों को कोई अन्य काम दिया जावे जिससे हमारे पेटका पालनहो और आपका रुपया भी पटे।" राजा ने बच्चों की प्रार्थना सुन एक बच्चे को अपनी ड्यूढ़ी पर दर्बानी का काम और दूसरे को बागीचे में माली का काम दे दिया। बच्चे बहुत दिन तक यह काम करते रहे, परन्तु इन कामों में बच्चोंको वेतन केवल उतना ही मिलता था कि जितने से उनके पेट का पालन हो सके, अतः लड़कों ने सोचा कि इस प्रकार तो हम लोगों से कभी ६६ सहस्र रुपया नहीं दिया जासकता है और न दीवान का पद ही मिल सकता है,

इसलिए कोई ऐसी युक्ति सोचनी चाहिये कि जिससे राजा के ऋण से शीघ्र उऋण हो दीवान पद प्राप्त करें। अतः लड़कों ने आपस में कुछ सम्मति कर दूसरे दिन जब राजा साहब बाहर निकले तो बड़े लड़के दर्बान ने पूछा कि-" महाराज, दुनिया में सब से बड़ी चीज़ क्या है?" राजा ने कहा—' मैं इसका उत्तर कल दूंगा।" दूसरे दिन राजा ने प्रातःकाल दरबार में आते ही इस बात को सम्पूर्ण सभा के लोगों से पूछा कि— "भाई, सभा के लोगों, दुनिया में सबसे बड़ी चीज़ क्या है?" किसी ने कहा—" अन्नदाता, सबसे बड़ा हाथी।" किसी ने कहा—" सबसे बड़ा ऊँट।" किसीने कहा—" सबसे बड़ी खजूर।" किसी ने कहा—"सबसे बड़ा ताड़" किसी ने कहा "सब से बड़ा पहाड़।" किसी ने कहा—"सबसे बड़ा रुपया, किसी ने कहा-"सबसे बड़ा बल" ये सब उत्तर राजा ने दर्बान को दिये पर दर्बान ने इन में से एक को भी न माना। जब राजा के राज्य में सम्पूर्ण मनुष्य उत्तर दे चुके तो राजा ने सोचा कि अब केवल हमारे बगीचे का माली शेष है, उसे भी बुला कर पूछना चाहिये, देखें वह क्या उत्तर देता है। अतः राजाने पूर्व दीवान के छोटे पुत्र माली को बुला कर पूछा कि—' दुनिया में सब से बड़ी चीज़ क्या है?' उसने कहा—"यदि मेरे बापके नाम से ३२ सहस्र रुपया काट दिया जावे तो मैं आप के प्रश्न का उत्तर दूं।" माली की यह बात सुन राजा तथा सम्पूर्ण सभा के लोग चकित हो गये। अन्त में राजाने कहा—"तुम्हारे बाप के नाम से ३२ सहस्र रुपया काट दिया जावेगा, तुम बताओ कि दुनिया में सब से बड़ी चीज़ क्या है?" माली ने कहा— 'दुनिया में सब से बड़ी चीज़ है—"बात।" यह उत्तर सुन राजा के भी मन में निश्चय हो गया कि ठीक है और दर्बान ने भी मान लिया पुनः दर्बान ने पूछा कि-"महाराज, दुनिया में सबसे

बड़ी चीज़ बात तो है पर वह रहती कहां है?" राजा ने फिर दर्बान से यही कहा कि "मैं इस का उत्तर कल दूंगा" और राजा ने सभा में आकर उसी भांति पूछा कि—"दुनिया में सब से बड़ी चीज़ बात तो है, पर वह रहती कहां है?" किसी ने कहा "अन्नदाता धनवानों के पास।" किसी ने कहा—"बलवानों के पास।" किसीने कहा—"विद्वानों के पास।" राजाने पूर्व की भांति ये सब उत्तर दर्बान को दिये, पर दर्बान ने एक भी उत्तर स्वीकार न किया। पुनः राजा ने बागीचे से माली को बुलवा यह प्रश्न किया कि—" दुनिया में सब से बड़ी चीज़ बात है, पर रहती कहां है?" इसने कहा कि—"महाराज ३२ सहस्र फिर निकलवा दीजिये।" राजा ने यह सुन तुरन्त ही आज्ञा दी कि—"आप उत्तर दें, ३२ सहस्र और निकाल दिये जावेंगे।" माली ने उत्तर दिया—" दुनिया में सबसे बड़ी चीज़ बात है और वह रहती है असीलों के पास।" उत्तर सुन कर राजा ने मान लिया और राजा ने दर्बान को यही उत्तर दिया, दर्बान ने भी स्वीकार किया। पुनः दर्बान ने राजा साहब से प्रश्न किया कि—"दुनिया में सब से बड़ी चीज़ बात, रहती तो है असीलों के पास और खाती क्या है?" राजा ने कल का वादा कर पुनः जाकर दूसरे दिन अपनी सभा में यह प्रश्न किया। प्रश्न सुन सब सभा चकित हो गई और कुछ काल तक तो सभी मौन साध गये। पश्चात् कुछ आदमियों ने सलाह कर कहा—"महाराज, कहीं बात भी खाया करती है?" राजा ने माली को बुला कर पूछा कि—"दुनिया में सब से बड़ी चीज़ बात, रहती तो असीलों के पास है और खाती क्या है?" इसने कहा कि—' ३२ सहस्र रुपया जो मेरे पिता के नाम बाकी है यदि वह भी कटा दें तो मैं बता दूं कि वह खाती क्या है?" राजा ने उसी समय स्वीकार कर कहा—"आप उत्तर दीजिये।" इसने

कहा कि—"महाराज, दुनिया में सब से बड़ी चीज़ बात है जो रहती है असीलों के पास, पर खाती है गम।" राजा ने मान लिया। पुनः दीवान ने राजा से प्रश्न किया कि—'दुनिया में सबसे बड़ी बात, रहती तो है असीलों के पास और खाती है गम, पर करती क्या है?" राजा ने फिर भी 'कल' कह कर दूसरे दिन अपनी सभा में यह प्रश्न किया। सभा के लोग थोड़ी देर तो चुप रहे और फिर बोले—"महाराज, बात भी कहीं काम किया करती है?" राजा ने पुनः बागीचे से माली को बुला उससे इस प्रश्न का उत्तर पूछा। उसने कहा—"महाराज, अबके हमारे बाप का दीवान पद हम दोनों भाइयों में से किसी को दिया जावे क्योंकि आपका ऋण भी पट गया, और यह दीवान जो मेरे बाप के स्थान पर है इसने मेरे बाप के नाम ६६ सहस्र रुपया बिल्कुल झूठा डाला है, इसलिए यह जहन्नुम रसीद किया जावे तो मैं आपके प्रश्न का उत्तर दे सकता हूं।' राजा ने सच्चा हाल समझ स्वीकार कर लिया और कहा—"आप उत्तर दीजिये, ऐसा ही होगा।" माली ने कहा—"महाराज, दुनिया में सब से बड़ी चीज़ बात है और वह रहती है असीलों के पास तथा खाती है गम और करती है वह वह काम जो धन, बल, विद्या किसी से न हो।" राजा ने उत्तर स्वीकार किया और इन बच्चों को दीवान पद दे झूठे दीवान को जहन्नुम रसीद किया।

लक्ष्मी वसति जिह्वाग्रे जिह्वाग्रे मित्र बान्धवः।
जिह्वाग्रे बन्धनं प्राप्तं जिह्वाग्रे मरणं ध्रुवम्॥

१५२—रमखुदैया

एक हिन्दू और एक मुसलमान साहब गंगा पार को आ रहे

थे। रास्ते में जब गंगाजी पड़ीं तो घाट पर नाव न होने के कारण दोनों सोच रहे थे कि क्या करना चाहिये, परन्तु कुछ विचार में न आया। थोड़ी देर में हिन्दू ने तो कहा कि 'जै रामचन्द्रजी की' मैं तो अपने एक तरफ़ से मँझाता हूं, और वह ऐसे उथले ओर से गया कि पार हो गया। अब मुसलमान साहब सोचने लगे कि मैं कैसे पार जाऊँ? राम को सुमिरूँ या खुदा को। यह सोचते सोचते मँझाना प्रारम्भ कर दिया और यह मँझाने में भी यह विचार करता जाता था कि—"राम को याद करूँ या खुदा को?" इस रमखुदैया के कारण इसका ध्यान बट गया और वह गहरे में जाकर डूब गया।

बस, समझ लो कि रमखुदैयावालों की यही दशा होती है कि थोड़ा यह लें थोड़ा वह, यह करें या वह?

१५३—एक पतिव्रता

एक साहब किसी गांव में रहा करते थे। उनकी स्त्री तो बड़ी चतुर और पतिव्रता थी किन्तु वह अत्यन्त ही निकम्मा और मूढ़ था, यहां तक कि कुछ कमाता धमाता न था दिन भर पड़े पड़े बातें बनाया करता था औरत बिचारी इसे जहां तहां से उधार पुधार ला ला खिलाया करती थी। यह पुरुष एक दिन बाज़ार में टहलने गया। वहां एक यवन से बहुत सी बात चीत होने के बाद यवन से किसी ने कह दिया कि इसकी औरत बड़ी खूब सूरत है. अतः यवन ने इससे कहा कि—"अगर तू अपनी औरत को मेरे पास सुलादे तो मैं १०० रुपये तुझे दूंगा।" यह पागल उस यवन को अपने घर ले आया और अपनी औरत से कहा कि—" अगर तू आज इसके साथ सो रहे तो ये सौ रुपये देगा. इसी लिए मैं इसे लिवा लाया हूं।" यह सुन औरत उससे बहुत ही अप्रसन्न हुई। तब उसने कहा—

"अच्छा तू प्रथम इसे दो रोटी बना के खिला दे, फिर देखा जायगा।" औरत ने कहा—"रोटी मैं दो क्या चार बना कर खिला दूंगी।" परन्तु औरत अपने पति की बद हरकत को भली भाँति जानती थी, इसलिये बड़े ही असमंजस में पड़ गई कि ऐसे समय में इस दुष्ट से बच कर कैसे पतिव्रत की रक्षा हो, अतः औरत ने अपने पति से कहा—"आप कृपा करके एक रस्सा चारपाई में दावन लगाने के लिये और एक मूसल पीसना छरने के लिये ले आइये क्योंकि घर का मूसल टूट गया है, जब तक मैं इस मुसाफिर के लिये रोटी का सामान लगाती हूं।" औरत पाव भर मिरचे निकाल सिल पर पीसने लगी और इस का पति रस्सा और मूसल लेने बाज़ार को चला गया। थोड़ी देर में वह औरत रोने लगी। मुसाफिर ने पूछा—"तू क्यों रोती है?" औरत ने कहा—"जनाब, रोती इसलिये हूं कि यह मेरा पति बड़ा ही बदमाश है और इसको ऐसी बद आदत है कि यह रोज़ बाज़ार से किसी न किसी मुसाफ़िर को ले आता है और अपने घर में उसके हाथ पैर रस्से से बांध उसके पाख़ाने के मुकाम में मिरचे भरा करता है और पीछे मूसल घुसेड़ देता है' सो देखिये कि मिरचे तो मुझ से बटना गया है. मैं पीसती हूं और रस्सा और मूसल टूट गया था, उसे लेने बाज़ार गया था सो देखो वह लिये आ रहा है।" यवन यह दशा देख कि वह वास्तव में रस्सा और मूसल लिये आता है विश्वास मान चल पड़ा। जब वह पुरुष अपने घर आया तो अपनी स्त्री से पूछा कि—"मुसाफिर क्यों चला गया?" औरत ने कहा—"मैं मिरचे पीस रही थी मुसाफिर कहने लगा कि यह मिरचे जो तू पीस रही है मय सिल के मुझे ऐसे ही दे दे। मैंने कहा—'ऐसे मिरचे आप लेकर क्या करेंगे, आप ही के लिए पीसती हूं, रोटी बनाऊंगी तब खाना। बस इसीसे गुस्सा होकर जाते हैं।" पुरुष ने

कहा-"अरे तूने मए मिरचों के क्यों न पैसे ही सिल दे दी? अच्छा अब ला मैं दौड़ कर दे आऊँ।" और यह पुरुष मए मिरचों के सिल ले कर दौड़ा और पुकारा कि—"ओ मियां ये लिये जाओ।" मियाँ ने जाना कि यह मेरे पाखाने के मुकाम में मिरचे भरने आता है, इस लिए मियां भागे और यह पीछे दौड़ा। तब तो मियां को और निश्चय हो गया और प्राण छोड़ भग गये।

१५४--ग़म खाना

एक बार किसी शख्स ने प्रश्न किया कि—"ये बनिये इतने मोटे क्यों होते हैं?" दूसरे ने जवाब दिया कि— 'ये ऐसी वस्तु खाते हैं, जिसे संसार में कोई नहीं खाता और न माने तो चल मैं तुझे दिखलाऊँ।" अब वह उस शख्स को लेकर गया तो क्या देखता है कि एक पुलीसमैन ने बनिये की दूकान पर आटा लिया और अच्छे आटे को कहता था कि साले तूने इसमें चपड़ी मिलाई है और बहनचोद ने जुआर का आटा भी मिलाया है गरज़ यह कि पुलीसमैन ने सैकड़ों गालियां दीं पर बनिया न बोला। तब उसने उस शख्स से कहा-" क्यों साहब ! समझ गये ?"

१५५--बेरहमी

एक काबुली बहुत ही दीन और अत्यन्त बेवक़ूफ़ इस देश में आया और दिल्ली की बाज़ार में उसने जामुन बिकते हुए देख लोगों से पूछा कि—"यह क्या है ?" लोगों ने कहा-"यह हिन्दुस्तान की मेवा है।" बेचारा क्या करे, पैसा पास न था इस लिये विवश हो चला गया। पश्चात घूमते घामते कुछ

काल में एक बागीचे में पहुंचा तो बाग में केवकी के वृक्षों तथा अन्य फूले हुए वृक्षों पर भौंरे गूंज रहे थे। इसने समझा कि ये उसी हिन्दुस्तान की मेवा के वृक्ष हैं और इनमें ये फूल फल लग रहे हैं। अतः इसने भौंरे पकड़ पकड़ कर खाना आरम्भ कर दिया। परन्तु जिस समय यह भौंरों को पकड़ता था तो भौंरे चीं चीं करते थे। काबुली बोला कि—"चाहे चें करो या में, काले काले सारे एक नहीं छोड़ूगा।"

१५६—निन्यानवे का फेर

एक सेठजी बहुत धनवान् एक शहर में रहते थे और सेठ के तिखण्डे मकान के समीप ही दीवार से दीवार मिली हुई एक दूसरे सेठ जो बहुत ही दीन थे, रहा करते थे। धनाढ्य सेठ अपने घर में ख़राब से ख़राब नाज की रोटी बनवाते और केवल नमक के साथ खाया करते थे और दीन सेठ नित्य अपने घर खीर पूड़ी हलुवा अच्छी अच्छी चीज़ें बनवाते थे। अभिप्राय यह कि दीन सेठ जो कमाते थे वह खा पी डालते थे। धनाढ्य सेठ की स्त्री यह चरित्र देख हैरान थी और कहा करती थी—'हाय! हमारे बाप ने क्यों धनाढ्य के यहां व्याह किया। ऐसे धन से क्या, जो न भोगा गया न दान दिया गया इससे तो ये कंगाल ही अच्छा।" एक दिन उस धनाढ्य सेठ की स्त्री ने अपने पति से कहा कि—"आपके धनी होने से क्या लाभ न आप खा ही सकते हैं और न किसी को दे सकते हैं; आपसे तो यह कंगाल ही अच्छा जिसके यहां रोज़ हलुवा पूड़ी और खीर बना करती है।" सेठने कहा—"यह अभी निन्यानवे के फेर में नहीं पड़ा है, अच्छा आज मैं तुझे निन्यानवे रुपया देता हूं और तू कल यह रुपया एक कपड़े में बांध इस दीन सेठ के घर डाल देना।" धनाढ्य सेठ की स्त्री ने वह रुपया

एक कपड़े में बांध दूसरे दिन दीन सेठ के यहां डाल दिया दीन सेठ की स्त्री ने यह रुपयों की पोटरी पा अपने पति को दे दी। पति ने गिने तो रुपये निन्यानवे थे। उसने सोचा कि अगर मैं दो दिन हलुवा पूड़ी खीर न खाऊँ तो ये पूरे सौ हो जांय ऐसा ही हुआ, दूसरे दिन से ही हलुवा पूड़ी खीर का होना बन्द हो गया और अब दो दिन में सौ हो गये। अब इसने सोचा कि दो दिन और न खाऊं तो १०१ हो जायं। जब दो दिन में १०१ हो गये तो सोचा कि दो दिन और न खाऊं तो १०२ हो जायं। बस यह दशा देख धनाढ्य सेठ ने अपनी स्त्री से कहा कि देखो अब यह भी निन्यानवे के फेर में पड़ गया और इसी को 'निन्यानवे का फेर' कहते हैं। परमात्मा न करे इस निन्यानवे के फेर में कोई भी पड़े।

१५७—तपस्वी और चार चोर

एक महात्मा किसी वन में तप कर रहे थे। एक दिन रात को चार चोर पहुंच कर महात्मा से बोले कि—"महाराज, आप तो परोपकारी हैं, इसलिये हमारे साथ चल कर परोपकार कीजिये।" तपस्वी जी चोरों के साथ चल दिये और मन में यह सोचा कि इन दुष्टों को आज अपने परोपकार का परिचय दे देना चाहिये। जब यह महात्मा और चारों चोर एक धनिक के मकान पर पहुंचे तो चोरों ने धनिक के मकान में नकब लगा महात्मा से कहा—"महाराज, अब आप आगे आगे चलिये।" महात्मा और चारों चोर अन्दर पहुंच गये और जब चोर कोठों के अन्दर घुस माल निकालने लगे, तब महात्मा ने बहार से कोठों की जंजीर चढ़ा दीं। पास ही एक दालान में बाहर एक थाल में कुछ चपिंयां रक्खी थीं और वहीं दीपक जल रहा था। महात्मा उन्हें देख कर ला चावे और इनकी जीभ कुलबुलाने

लगी। इसलिये महात्मा ने थाल की बर्फ़ियां उठा सोचा कि पहले ठाकुरजी की नैवेद्य लगा लूं पीछे बर्फ़ियां खाऊं, अतः धनिक के मकान की भीतरी चौक में आ थाल के चारों ओर पानी फेर अपना शंख बड़े ज़ोर ज़ोर बजाने लगे। इतने में घर के सब लोग जग पड़े और मन्दिर की ओर कान लगाने लगे कि आज रात को मन्दिर में क्यों नैवेद्य लगाई जाती है। जब कुछ और ध्यान करके देखा तो घरवालों को मालूम हुआ कि यह तो हमारे घर ही में नैवेद्य लग रही है। पुनः घरवाले उठ कर गये और महात्मा से कहा—'तुम कौन?' इन्होंने कहा—"हम अमुक वन में रहते हैं, और इस प्रकार हमें चोर ले आये और चोरों ने आपके मकान में नक़ब कर हमें भी घुसेड़ा और जब चोर इस कोठरी से आपका माल निकालने लगे तो हम ने बाहर से ज़ंजीर चढ़ा दी। आपके थाल में बर्फ़ी रक्खी देख मुझे खाने की इच्छा चली तो मैंने कहा कि पहले ठाकुर जी को नैवेद्य लगा लूं फिर बर्फ़ियां खाऊं, सो अब नैवेद्य लग गई, अब आप भी प्रसाद लीजिये और चारों चोरों को कोठरी से निकाल प्रसाद दीजिये।" धनिक अपने घर कई आदमी रखते थे, अतः चोरों को कोठरी से निकाल एक एक चोर को हज़ारहा जूतों का प्रसाद दिया और अन्त में उनको पुलिस के हवाले कर तीन तीन वर्ष की क़ैद दिलाई। पुनः महात्मा ने चोरों से कहा—"कहो, हम परोपकारी हैं या नहीं?"

१५८—पांच ठगों की ठगी

एक पुरुष किसी साहूकार के यहां नौकर था बहुत काल तक नौकरी करने पर जब उसने वेतन मांगा तो साहूकार ने कहा कि—"अगर आप यह बैल लेना चाहें तो ले जाइये,

वरना इसके सिवा मेरे पास कुछ नहीं।" अतः साहूकार ने वह बैल अपने नौकर को तेरह रुपये में दे दिया। नौकर बैल लेकर घर को चला और मार्ग में एक ठगों के गांव में जा निकला। एक जगह चार ठग बैठे हुये थे और उन चारों का बुड्ढा बाप अलग बैठा था इन चारों ठगों ने उस बैलवाले को बुला कहा-" अबे बैलवाले! क्या यह बैल बेचेगा ?" बैल वाले ने कहा—"हां हां लो अगर आपको लेना हो ?" ठगो ने कहा-"बैल की क्या क़ीमत लोगे।" इसने कहा—"जो दो भलेमानस कह दें।" ठगों ने कहा—"तुम दो भलेमानसों की मानोगे ?" इसने कहा—"दो भलेमानसों की नहीं मानेंगे तो फिर किसकी मानेंगे ?" यह प्रतिज्ञा करा चारों ठग बैलवाले को अपने बाप के पास ले गये और कहा—"इनकी मानोगे ?" बैलवाले ने कहा—"हां हां, मैं मानूंगा।" बुड्ढे ने कहा—"सच सच पूछो तो बैल तीन रुपये का है।" बैलवाले ने बैल दे दिया और अपने घर को चल पड़ा। पर मार्ग में उसे मालूम हो गया कि वे चारों ठग थे और बुड्ढा ठगों का बाप था, अतः यह बैलवाला थोड़े दिन बाद स्त्री का रूप बना कर एक डोली में उसी गांव में, ठगो के मकान के सामने जो कुआं था, वहां आकर उतर पड़ा और रोने लगा, इतने में ये ठग निकले और कहा—"क्या है ?" इसने कहा—"मेरे पति ने मुझे नाराज़ होकर निकाल दिया है ?" ठगो ने कहा—"अच्छा तुम हमारे यहां बनी रहो।" इसने स्वीकार कर लिया। अब तो उन चारो ठगो में बड़ा झगड़ा होने लगा। एक कहता था इसे मैं रक्खूंगा, दूसरा कहता था मैं रक्खूंगा। यह झगड़ा देख बाप बोला कि—"तुम चारो क्यों लड़ते हो ? इसको मैं स्त्री बना रक्खूंगा और यह तुम चारों की मां बनी रहेगी। चारों ठगों ने मन्जूर कर लिया और यह बैलवाला स्त्री रूप में ठगों के घर

रहने लगा। जब बुड्ढे को यह पड़ी कि अगर मेरे लड़के इधर उधर जाँय तो मैं खूब विषय भोग करूं। अतः लड़कों को इधर उधर भेज दिया। उस दिन बुड्ढे ने खूब हलुवा पूड़ी खीर बनवा भोजन किया और वह मना रहा था कि किसी प्रकार रात आवे स्त्री भी (वही हुआ बैलवाला!) खूब शृङ्गार कर बैठ रही थी। जब रात हुई तो स्त्री ने किवाड़े मार एक रस्सा ले बुड्ढे को चारपाई से बांध गला दबा पूछा कि—'बता तेरा धन कहां गड़ा है?' बुड्ढे ने जान के भय से उसे बता दिया। उसने सबको खोद बहुत सा धन बांध एक सोटा ले बुड्ढे को बहुत ही पीटा और कहता जाता था, 'क्यों रे मक्कार! तेरह का बैल तीन का!' और इसे पीट पाट धन ले बैलवाला चल दिया। जब दो दिन बाद उस बुड्ढे के लड़के आये तो बुड्ढे को बंधा हुआ, सब देह फूली हुई और मन दर खुना हुआ देख बड़े दुःखी हुए और बाप से बोले—'यह क्या हुआ?' बुड्ढे ने कहा कि—

यह औरत न थी औलिया था बैलवाला।
मुझे बांध कर ले गया धन है साला॥

चारों ने अपने बाप को खोल दवा इलाज किया और फिर काम धन्धा करने लगे। कुछ दिन बाद वह बैलवाला वैद्य का भेष धर उसी गांव में आ विराजा। ये चारों तब फिर उन वैद्यराज के यहां पहुंचे और दो रुपये नज़र कर कहा—'महाराज, हमारे बाप बहुत बीमार हैं, आप कृपा कर उन्हें चल कर देख लीजिये।" वैद्यराज ने जाकर देखा, पर इसको तो सब हाल मालूम था, अतः इसने बुड्ढे के लड़कों से कहा कि—"अब मैं १५ दिवस रहूं तब इसे आराम हो सकता है।" बुड्ढे के लड़कों ने वैद्यराज के आगे बहुत कुछ हाथ पैर जोड़े और कहा

कि आप कृपा कर १५ दिवस ठहर जाइये, हम आप की जो फ़ीस होगी देंगे और आपकी सेवा करेंगे।" वैद्यराज का तो यह अभिप्राय ही था, अतः वे ठहर गये। दूसरे दिन उन्होंने बुड्ढे के चारों लड़कों को दूर दूर की अंट संट दवायें बता कर इधर उधर भेज दिया और जब बुड्ढा अकेला रह गया तो उसे उस के घर में एक खम्भे से बांध उसका गला दबा कर पूछा कि—"बता, अब बचा बचाया धन कहाँ रक्खा है ?" बुड्ढे ने प्राण जाते देख बचा बचाया धन भी बता दिया। इस वैद्य (बने हुए वैद्यवाले) ने सब धन खोद और एक सोंटा ले पुनः बुड्ढे को खूब पीटा और कहता था—"क्योंरे मक्कार, तेरह का बस तीन का ?" और सारा धन लेकर चला गया। जब बुड्ढे के चारों लड़के दवा लेकर आये तो बाप की यह दशा देख बड़े शंकित हुए और अन्त में सोच समझ उसी तारीख से ठगी छोड़ दी।

१५९—लाल बुझक्कड़

किसी गाँव से होकर एक हाथी निकल गया और उस के गोल गोल चकले पैर भूमि में बन गये। गाँववालों ने कहा—"यार ये काहे के चिन्ह हैं ?" सबों ने अपनी समझ के अनुसार विचारा, पर कोई विचार निश्चय न हुआ। अन्त में सबकी यह राय ठहरी कि लाल बुझक्कड़ को बुलाना चाहिये और उनसे पूछें कि ये काहे के चिन्ह हैं। जब लाल बुझक्कड़ आये तो सबोंने कहा—"गुरू! बताओ, ये काहे के चिह्न हैं ?" लाल बुझक्कड़ यह सुन कर बहुत हँसे। सबोंने कहा—"महाराज! इस समय आप क्यों हँसे ?" लाल बुझक्कड़ ने कहा कि—"हम हँसे इस लिये कि आप लोग हमारे शिष्य होकर भी यह ज़रा सी बात

न जान सके।" पुनः लाल बुझक्कड़ बहुत रोया। सबों ने कहा—"महाराज, आप रोये क्यों?" लाल बुझक्कड़ बोले कि—"रोये इससे कि हमारे बाद तुम्हें कौन ऐसी ऐसी बातें बतावेगा? जो अब सुनो भूलना नहीं—

जानै बात बुझक्कड़ और न जानै कोय।
पग में चक्की बाँध के, हिरना कूदा होय॥"

सबों ने कहा—"ठीक है।"

इसी प्रकार उस गाँववालों ने कभी कोल्हू नहीं देखा था। एक आदमी अपना कोल्हू लादे जाता था, लेकिन उसकी गाड़ी के बैल न चलने से वह उस कोल्हू को मय गाड़ी के छोड़ गया, अब गाँववाले उसी भाँति फिर हैरानी में पड़े। अन्त में उन्हीं लाल बुझक्कड़ को बुलाकर पूछा कि—"महाराज, यह क्या है?" लाल बुझक्कड़ ने कहा—

जानै बात बुझक्कड़ और न काहू जानी।
पुरानी होकर गड़ी ये खुदा की सुरमादानी॥

सबों ने कहा—"ठीक है महाराज, ठीक है।"

१६०—परम लालची

एक सेठ जी बड़े लालची थे, यहाँ तक कि अपने पेट भर भली भाँति खा पी भी नहीं सकते थे। पर उन के कुटुम्बवाले उनके इस स्वभाव को अच्छा नहीं समझते थे और अपने आप सब अच्छी प्रकार खाया पिया करते थे। एक दिन सब लोग अच्छे अच्छे पदार्थ, कोई हलुआ, कोई पूड़ी, कोई लड्डू, कोई खीर, कोई रबड़ी, कोई मलाई वगैरः उड़ा रहे थे, इतने में सेठ जी घर आ पहुँचे और यह दशा देख नांद के नीचे से मट्ठा

निकाल कर पीने लगे और बोले कि—"भर भर है तो भरभरै सही, हम भी आज मट्ठा ही पियेंगे।"

मक्खी बैठी शहद पर, पंख गये लपटाय।
हाथ मलै औ शिर धुनै, लालच बुरी बलाय॥

१६१-खुशक़िस्मत कौन है ?

एक बार युरोप के किसी बादशाह ने एक आदमी से जिसका कि नाम सालिन था पूछा कि शायद मेरे बराबर तो दुनिया में कोई खुशक़िस्मत न होगा। सालिन ने एक महा कंगाल का नाम ले कहा—"हुजूर! उससे ज्यादा खुशक़िस्मत दुनिया में और कोई नहीं है।" बादशाह ने कहा—"क्यों?" सालिन ने कहा कि—"उसने अपनी सारी आयु सदाचार ही में व्यतीत की है और उसमें किसी प्रकार के किसी कलङ्क का धब्बा नहीं और संसार में उसका यश है और जिस समय वह मरा दुनिया उसके लिए रोती थी।" बादशाह ने समझा कि अगर यह सब से ज़्यादा खुशक़िस्मत है तो दूसरा नम्बर मेरा ही होगा, यह समझ कर पूछा कि—"उसके बाद फिर कौन खुशक़िस्मत है?" इसने एक दूसरे कङ्गाल का नाम ले कहा—"हुजूर! यह उससे ज़्यादा खुशक़िस्मत है।" उसने कहा—"क्यों?" सालिन ने उत्तर दिया कि—"इसने जिस हैसियत में अपने बाप से गृहस्थी पाई थी, वह वैसी ही गृहस्थी रखता हुआ। पुत्र पौत्र भ्राता आदिकों को छोड़ता हुआ, परमेश्वर का भजन करता हुआ, संसार की सम्पूर्ण आपत्तियों को झेलता हुआ आज प्राण छोड़ता है। बस इसी प्रकार यदि आपकी बादशाहत अन्त तक बनी रहे और उसमें कोई आपत्ति न आये तो मैं आपको भी खुशक़िस्मत कहूँगा।" बादशाह ने यह सुन कर सालिन पर क्रोधित हो राज्य से निक-

जवा दिया। पुनः थोड़े ही दिन में अनायास उस बादशाह के ऊपर एक बादशाह चढ़ आया और उसने सारा राज पाट छीन लिया और उसे क़ैद कर अपने राज्य में ले गया और थोड़े दिन में उसे सूली का हुक्म दिया। जब यह बादशाह सूली पर चढ़ने लगा तो इसने बड़े ज़ोर से पुकार कर कहा कि—"सालिन! सालिन! सालिन!" तब तो यह वाक्य सुन उस बादशाह ने कि जिसने इसको सूली दी थी, इसको अपने पास बुला कर कहा कि—"आप क्या कहते हैं?" उसके पूछने पर इसने सारा क़िस्सा सालिन और अपनी बात चीत का वर्णन किया और कहा कि—"सालिन ठीक कहता था, देखिये! थोड़े दिन हुए मैं बादशाह था और आज सूली पर चढ़ रहा हूँ, इस लिए मैं सालिन का नाम बार बार पुकार रहा हूँ।" यह सुन कर बादशाह के होश हवास ठीक हो गये और उसने इसको सूली से मुक्त कर सारा राजपाट लौटा दिया।

१६२—अयोग्य मन्त्री

एक बादशाह के यहाँ एक बड़ा ही सुयोग्य मन्त्री था परन्तु वह अपनी स्त्री के विशेष वशीभूत था और इस स्त्री का भाई बिलकुल बेकार था, अतः स्त्री ने बादशाह से कह कर उस योग्य मन्त्री को हटा कर अपने भाई को नियत कराया और अपने भाई को यह समझा दिया कि तुम बादशाह की आज्ञा को कभी न तोड़ना, जैसा वे कहें वैसा ही करना। बादशाह ने एक बार इस नये मन्त्री से कहा कि—"आप १०००) रु० का एक नोट बाज़ार से ले आइये।" ये जब नोट लेने गये तो बैंक के मैनेजर ने कहा कि—"१०००) का एक तो नहीं है, पाँच पाँच सौ के दो चाहो तो ले जाओ।" ये वहाँ से लौट आये और

बादशाह से कहा कि—"१०००) का एक तो नहीं मिलता था पाँच पाँच सौ के दो मिलते थे, इसलिए मैं नहीं लाया।" बादशाह ने कहा कि—"मतलब तो एक ही था, आप क्यों न लेते आये?" कुछ दिन के बाद बादशाह की लड़की ब्याह के योग्य हो रही थी, इसलिए बादशाह ने अपनी कन्या के विवाहार्थ एक राज्य में इन मन्त्री जी को भेजना चाहा और मन्त्री जी से कहा कि—"आप एक ऐसा वर ढूँढें जिसका कुल, शील, सम्पानता, बित्त आदि बातें योग्य हों और उमर २२ वर्ष से कम न हो।" तब तो इन मन्त्री महाराज ने कहा कि—"हुजूर, अगर ग्यारह ग्यारह वर्ष के दो हों!" बादशाह ने समझ लिया कि यह मूर्ख है और उसको उसी समय निकाल बाहर किया।

१६३-भारत के शूरवीर

एक बार किसी गाँव में दो दर्जियों में परस्पर लड़ाई हुई। एक ने अपनी सुई उठाई और दूसरे ने अपनी सुई उठाई। वह उसके सामने सुई उठा कर कहता था-"क्या साले नहीं मानेगा?" और वह उससे कहता था-"क्या साले नहीं मानेगा?" इतने में एक स्त्री आ गई और बोली कि—"परमेश्वर खैर करे, आज शूरों ने शस्त्र उठाये हैं!" वाहरी शूरवीरता और वाह रे शस्त्र!

१६४-आय फँसे

एक बार मुसलमानों के ताज़िये हो रहे थे। वहाँ पर इस प्रकार भीड़ हो रही थी कि निकलने तक का मार्ग न था। इतने में उसके गोल में एक हिन्दू भाई जा पहुँचे। वहाँ गोल में सब

मुसलमान थे और वे सबके सब छाती पीट पीट कर यह कह रहे थे कि—"हाय हुस्सेन ! हाय हुस्सेन !" यह देख हिन्दू भी अपनी छाती पीट पीट यह कहने लगा कि—"आय फँसे ! आय फँसे !"

१६५—भारत

एक संन्यासी एक महा सुन्दर वन में अकेला रहता था। वह वन नाना प्रकार की औषधियों और हरी हरी घास से उपवन सा बन रहा था। संन्यासी उसी वन में निःसन्देह और निडर सुखपूर्वक अपने दिवस व्यतीत करता था। उसी वन में एक अति मनोहर तालाब स्वच्छ जल से पूरित था। एक दिन वह सायंकाल के समय तृषित हो तड़ाग पर गया, वहाँ जलपान करके तालाब की मनोहर शोभा को अवलोकन करने लगा तो क्या देखता है कि भाँति भाँति के पक्षी तड़ाग के तट के वृक्षों पर नाना प्रकार की सुहावनी सुहावनी वाणियों से चहकार मचा मचा वन को गुंजा रहे हैं और अपने दिवस भर के छूटे हुये बच्चों से मिल बड़े हाव भाव से प्यार कर कर सारे दिन के वियोग के दुःख को मिटा रहे हैं। दूसरी ओर वन का रंग आकाश की लालिमा से अपूर्व रङ्ग का हो रहा है। संन्यासी इन सब पदार्थों को विलोकता और इस शोभा को देख हर्षित हो रहा था, इतने में आकाश पर अचानक चन्द्रमा अपनी नक्षत्रों की सेना ले बड़े दल बल के साथ आकर प्रकाशित हुआ और उसने सम्पूर्ण आसमान पर अपना अधिकार जमाया और अपनी मन्द मन्द किरणों द्वारा पृथ्वी को आलोकित किया। सांसारिक जन अपने अपने कार्यों को त्याग सुखपूर्वक हर्षित हो अपनी स्त्री सहित एकत्र हो आनन्दित हुए और सारे दिन की

थकावट को शान्त करने लगे। अब दो घण्टे के समीप रात्रि व्यतीत हुई, सब लोग अपने अपने शयन करने के प्रबन्ध में हैं। जहाँ तहाँ मनुष्य-मण्डली अभी तक नहीं सोई है, कोई खेल और कौतुकों में मस्त है कोई भ्रष्ट पुस्तकों का पाठ कर रहा है, कोई ईश्वर को त्याग प्रकृति की उपासना में निमग्न है और उस समय के विद्वान् तत्वज्ञान और परोपकार त्याग केवल अपने स्वार्थ में आ इस वाक्य के अनुसार कि-"स्वार्थी दोषं न पश्यति" कर्म अकर्म, सत्य असत्य कुछ नहीं देखते!

महाशयो! इसी अवसर में वह संन्यासी जी विचार रूपी समुद्र में गोते लगा रहा था कि यकायक उसका ख़्याल एक बगीचे की ओर पहुँच गया। उसने वहाँ जाकर देखा कि यह कोई अपूर्व वाटिका है, क्योंकि इसमें बहुत से रंग विरंगे पुष्प फल आदि विद्यमान हैं और चित्र विचित्र भूषणों से भूषित शोभा दे रहे हैं। विचारा तो ज्ञात हुआ कि यह वाटिका किसी बड़े ही बुद्धिमान् की सुसज्जित की हुई है। इस वाटिका की शोभा देख संन्यासी का चित्त चाहा कि इसे अवश्य देखना चाहिये। वह संन्यासी उसी मनोहर वाटिका की ओर देखने की लालसा से जाकर वाटिका के पास पहुँचा। वहाँ क्या देखता है कि वाटिका की चारदीवारी बहुत ही ऊँची है और उसकी दृढ़ता तथा सुन्दरता भी विलक्षण ही है।

यह सब देख संन्यासी महाराज का चित्त अन्दर जाने को चाहा, इस लिए संन्यासी जी वाटिका का दर्वाज़ा ढूँढ़ने लगे, परन्तु उन्होंने दर्वाज़ा न पाया कुछ देर के बाद उनको एक नहर देख पड़ी कि जिससे उस वाटिका में पानी जा रहा था। वह बेचारा उसी नहर के तट पर बैठ गया और अन्दर पहुँचने के यत्न सोचने लगा, इसी विचार में था कि यकायक उसे एक

मित्र मिल गया जिसका नाम बुद्धि था। संन्यासी ने अपने मित्र से निवेदन किया कि मुझे इस वाटिका के देखने को इसका दर्शा बताइये। संन्यासी ने अपने मित्र की बहुत काल तक सेवा की, तब उस मित्र ने उसका फाटक बतलाया। संन्यासी उस फाटक की सुन्दरता देख महा सुखी हुआ। उसके मेहराब की बनावट ऐसी बुद्धिमत्ता से बनाई गई थी कि जिसकी बनावट एक अपूर्व शोभा दिखला रही थी और उस मेहराब में नाना प्रकार के बहुमूल्य चमकीले पत्थरों से चित्रकारी ने ऐसी चित्र विचित्र रचना की थी कि जब दिवाकर की किरणें उस पर पड़ती थीं, तो ऐसा ज्ञात होता था कि मानों दूसरा सूर्य इस मेहराब में चमक रहा है। संन्यासी इस शोभा को देख कर आश्चर्य में था। उसके मित्र ने कहा—"चलिये, अब मैं तुमको वाटिका दिखलाऊँ।" संन्यासी मित्र के साथ अन्दर गया, पर फाटक की अपूर्व छटा उसे बार बार याद आती थी। कुछ देर में वह वाटिका में पहुँचा तो वाटिका की अनुपम छटा देख अत्यन्त प्रफुल्लित हुआ। पुनः अपने मित्र के साथ इधर उधर घूम वाटिका को देखा और उसकी विचित्रता से संन्यासी दंग था। इस लिए कि उसके सम्पूर्ण पदार्थ ऐसी बुद्धिमत्ता के साथ चुने थे कि एक एक को देख संन्यासी चकित था और जब वह उनकी बनावट पर अपनी बुद्धि दौड़ाता, तो बाग के पेड़ों का मन्द मन्द उन्मत्तता से झूमना और पक्षियों का नाना प्रकार की प्यारी प्यारी आवाज़ों का करना, बुलबुलों का फूलों पर गिरना, फूलों का खिलना, नरगिस की नज़रबाज़ी आदि विचित्र तमाशे देख संन्यासी अपने आपे में न रहा। थोड़े दिन वह उस बाग में रहा, पुनः बाहर निकल भ्रमण करने लगा। बहुत दिन बाद उसे पूर्व की दिशा में एक चारदीवारी नज़र आई जैसी कि उसने उस बाग में देखी थी चश्मा और नहर

इससे बहुत कम चौड़ी थी परन्तु दर्वाज़ा खुला हुआ था और दीवार गिरी पड़ी और टूटी फूटी थी। चारों ओर से नये नये किस्म के पशु पक्षी आदमी आदि आ आ कर अपने मन चाहे हुए पदार्थ निर्भयता से बैठे खा रहे थे और कोई तोड़ तोड़ ले जा रहे थे और वाटिका के बागवान सब गाढ़ निद्रा में सो रहे थे। संन्यासी ने अपने मित्र से पूछा कि—"यह तो मुझे वही वाटिका ज्ञात होती है परन्तु नहीं मालूम कि इस की यह दशा क्यों हो गई? न तो दीवार ही में वह सुन्दरता देख पड़ती है, न दर्वाज़े ही में वह शोभा है, नहर का पानी भी वैसा स्वच्छ नहीं देख पड़ता बल्कि उसके स्थान पर गँदला और महा मटमैला जल बह रहा है।" इस पर उसके मित्रने बतलाया कि यह वह वाटिका नहीं है बल्कि दूसरी है, यह पतझड़ में ऋतु से शुष्क हो रही है और समय के हेर फेर यानी परिवर्त्तन से बर्बाद हो गई है। यह सुन संन्यासी उस बाग़ के अन्दर जो गया तो उसको बाग़ के कुछ चिन्ह दिखलाई दिये, मगर न वह स्वच्छता थी, न वह चहल पहल ही थी, नहर में कुछ पानी बह रहा था, मगर वह सफाई और सुन्दरता न थी। फूल जितने थे सब कुम्हिलागे और मुरझाये हुए पड़े थे। जहाँ घास अपनी हरियाली से तरह तरह की सुन्दरता दिखलाती थी वहाँ अब शुष्क हो हो कर काली हो रही है। जहाँ सुन्दर त्रिविध समीर शीतल मन्द सुगन्ध मन को प्रफुल्लित करती थी वहाँ अब आँधी ज़ोर से हाहाकार उठा रही है। जहाँ पिक और कोयल आदि अपने अपने प्यारे स्वरों से चित्त को आनन्दित करते थे, वहाँ अब नीच काक और उलूक घृणित स्वरों से चित्त को दुखित कर रहे हैं। वह संन्यासी यह सब देखता हुआ नहर के तट पर पहुँचा। वहाँ क्या देखता है कि थोड़े से महा स्वरूपवान् नवयुवक पुरुष आकर उसी नहर

में डुबकी लगा कर नहाने और पानी पीने लगे। जब वे वहाँ से निकले तो उन लोगों की शकल पलटी हुई थी। न वह धर्म कर्म, न वह बल बुद्धि, न वह शील स्वभाव ही था और सब के दो दो सींग निकल आये और एक दूसरे से लड़ने लगे। किसी का हाथ, किसी का पैर आदि टूटे, यानी इसी प्रकार असभ्यता का संग्राम करते करते जा रहे हैं।

संन्यासी भारतवर्ष उपवन की यह दुरवस्था देख दुःखी हुआ और उसमें सुखपूर्वक रमण करनेवाली भारत-संतान की वह दुर्दशा देख उसका दिल भर आया और ठंढी आह भर कर बोला—"क्या इस उपवन का सुधारक कोई माली ईश्वर भेजेगा?"

१६६—शील

एक ग्राम में दो भाई रहा करते थे। उनमें से एक अत्यन्त ही विद्वान्, मधुरभाषी, सरल और शांत तथा किसी दूसरे के विशेष क्रोध करने या साधारण दबाने पर बेचारा तत्काल ही दब जाता था और सदैव ऐसे स्थान में बैठता था कि जहाँ से कोई न उठा सके; और दूसरा निरक्षर भट्टाचार्य, अत्यन्त कटुवादी लकड़ी सी तोड़नेवाला और दूसरे के किंचित् क्रोध पर उसका सिर फोड़ देनेवाला था। इन दोनों में पहला भाई अपने ग्राम में जिस किसी काम के लिए किसी के पास जाता तो लोग तुरन्त ही इसकी सहायता करते थे और जब यह दूसरा किसी के पास जाता तो लोग इससे वार्त्ता भी नहीं करते थे। अतः इस ने एक दिन अपने भाई से पूछा कि—"भाई, तुम्हारे पास ऐसी कौन सी युक्ति है कि जिससे तुम से सब से मेल रहता है और आप सब जगह से अपना काम कर लाते हैं, पर हम जहाँ जाते

हैं वहाँ लोग हमसे बात भी नहीं करते।" भाई ने उत्तर दिया—"सब जगह से काम कर लाना तो क्या बल्कि—

वह्निस्तस्य जलायते जलनिधिः कुल्यायते तत् क्षणात्।
मेरुः स्वल्पशिलायते मृगपतेः सद्यः कुरंगायते॥
व्यालो माल्यगुणायते विषरसः पीयूषवर्षायते।
यस्यांगेऽखिललोकवल्लभतमं शीलं समुन्मीलति॥

अर्थ—अग्नि उस पुरुष को जल के समान जान पड़ती है और समुद्र स्वल्प नदी सा तथा मेरु पर्वत स्वल्प शिला के तुल्य जान पड़ता है और सिंह शीघ्र ही उसके आगे हरिन बन जाता है; सर्प उसके लिए फूल की माला बन जाता है, विष-रस उस पुरुष को अमृत की वृष्टि के समान हो जाता है जिस पुरुष के अङ्ग में समस्त जगत् का मोहनेवाला शील (नम्रता) प्रकाशमान है। बस, यही युक्ति है, सो आप भी धारण कीजिये। किसी भाषा-कवि का वाक्य है—

दोहा—गिरि ते गिरि परिबो भलो, भलो पकरिबो नाग।
अग्नि माहिं जरिबो भलो, बुरो शील को त्याग॥

१६७—सन्तोष

एक सेठजी बड़े धनाढ्य और अत्यन्त पुरुषार्थी; कुटुम्ब से भरे पूरे एक ग्राम में रहा करते थे और उनके समीप ही उसी ग्राम में एक अति दीन, पढ़ा लिखा विद्वान् ब्राह्मण रहा करता था। यह ब्राह्मण बड़ा ही सहनशील और संतोषी था, जो कुछ अपने परिश्रम से उपार्जन करता उसी में आनन्दित रहता, परन्तु सेठ जी सदैव तृष्णा की तरङ्गों में ही गोते खाया करते

थे। इस कारण सेठजी यद्यपि ब्राह्मण से बहुत धनवान् और परिश्रमी थे तथापि इस कवि वाक्य के अनुसार—

निःस्वो वष्टि शतं, शतो दशशतं, लक्षं सहस्राधिपो।
लक्षेशः क्षितिपालतां, क्षितिपतिश्चक्रेश्वरत्वं पुनः॥
चक्रेशः पुनरिन्द्रतां, सुरपतिर्ब्रह्मास्पदं वाञ्छति।
ब्रह्मा विष्णुपदं पुनः पुनरहो तृष्णावधिं को गतः॥

अर्थात्—निर्धन मनुष्य सौ रुपये चाहता है, सौ वाला सहस्र, सहस्रवाला लक्ष, लक्षवाला राज्य, राजा चक्रवर्ती होना चाहता है, चक्रवर्ती इन्द्र पदवी और इन्द्र ब्रह्मा पद, ब्रह्मा विष्णु पद, अतः इस तृष्णा का अन्त किसने पाया है? इसकी अवधि को किसने प्राप्त किया है? इसी प्रकार सेठ को भी दिन रात यही पड़ी रहती थी कि अब सौ के दो सौ और दो सौ के चार सौ कर लें। इससे सेठजी खाना पीना सोना अच्छे वस्त्र पहनना आदि सभी तृष्णा की तरङ्गों में भूले रहते और दिन रात इसी हाय हाय में लगे रहते थे। एक दिन पड़ोसी ब्राह्मण सेठजी को समझाने लगा कि-"सेठजी, देखो संसार दुःखों का मूल है, इसमें मनुष्य को कभी सुख नहीं मिल सकता है, हाँ यदि कुछ सुख मिल सकता है तो केवल एक संतोषी पुरुष ही को। आप भली भाँति जानते हैं, कि विशेष ख्वाहिशों का बढ़ना ही मनुष्य के लिए महान् दुःख और बंधन का हेतु है। मनुष्य की जैसे जैसे ख्वाहिशें बढ़ती जाती हैं वैसे ही वैसे वह उनके पूरा करने के प्रयत्न में लगता है और उनके पूरा हो जाने पर सुख और अधूरा रहने में मनुष्य को दुःख हुआ करता है।" परन्तु सेठ जी का मन उस समय इन बातों पर न बैठा। एक बार सेठ जी अपने घर के द्वार पर बैठे थे कि उनको एकाएक यह

सूचना मिली कि आपके लड़के के लड़का उत्पन्न हुआ। सेठजी यह सूचना पा अत्यन्त हर्षित हो रहे थे। नाना प्रकार के उत्साह सेठ जी मना रहे थे कि इतने ही में घर से दूसरी खबर आई कि जो लड़का उत्पन्न हुआ था वह और उसकी माता दोनों का देवलोक हो गया। सेठ जी यह खबर सुनते ही महान् दुःख-सागर में डूब गये और सिर पटक पटक कर रोने लगे। इस विकलता में सेठजी पड़े ही थे कि अनायास थोड़ी ही देर में एक दूत ने आकर यह कहा कि अमुक वर्ष में जो आप ने अमुक माल पर एक चिट्ठी डाली थी वह माल आप ही के नाम पड़ गया और एक लाख का माल लदा हुआ आप का जहाज़ आ रहा है। सेठ जी पुनः उस पौत्र तथा उसकी माता के कष्ट को भूल एक लाख के माल की प्राप्ति की प्रसन्नता में निमग्न हो गये और दूत से प्रश्नोत्तर करने लगे कि वह जहाज़ अब कहाँ तक आया होगा, तुम ने कहाँ छोड़ा था? यह कह ही रहा था कि थोड़ी ही देर के बाद एक दूसरे दूत ने आकर यह संदेशा दिया कि वह जहाज़ जो आप चिट्ठी में जीते थे, आ रहा था, लेकिन फलाँ बन्दर पर तूफान के आने से डूब गया। सेठ सुन फिर उसी दुःख-सागर में पड़ गये और सोचने लगे कि यथार्थ में सांसारिक ख्वाहिशों को बढ़ा उनकी पूर्त्ति के लिए तृष्णा की तरङ्गों में पड़ना दुःख ही का कारण है। सेठजी ने उसी दिन से तृष्णा पिशाचिनी को त्याग संतोष साधु की शरण ली। किसी कवि ने सच कहा है कि—

सन्तोषः परमं लाभः संतोषः परमं धनम्।
सन्तोषः परमंचायुः संतोषः परमं सुखम्॥

अर्थ—संतोष ही परम लाभ है, सन्तोष ही परम धन है, सन्तोष ही परम आयु है, सन्तोष ही परम सुख है।

१६८--दब्बूपने से स्वरूप-विस्मृति

एक बार एक शेर के बच्चे को एक गड़रिया जंगल से उठा लाया और उस को अपनी भेड़ों के साथ रखने लगा। शेर का बच्चा भेड़ों की ही रहन सहन की भाँति रहा करता, भेड़ों ही के साथ चरा करता, जहाँ वे बैठतीं वहीं वह बैठा रहता, जहाँ से उठकर वे चल देतीं वह भी चल देता, जैसे वे घुटने तोड़ कर पानी पीतीं वैसे ही पानी पीता, जैसे वे मिमियातीं वैसे ही वह भी बोला करता। गड़रिया जिस प्रकार अपनी भेड़ों पर शासन रखता था इसी प्रकार शेर पर भी शासन रखता था, यानी जिस समय गड़रिया दूर ही से शेर को डाँट बतलाया करता तो शेर वहीं से वापिस आ बेचारा दीन हो चुपचाप खड़ा हो जाता था। एक दिन ऐसा हुआ कि एक दूसरा बड़ा बलवान् शेर जंगल में जहाँ गड़रिया भेड़ें चरा रहा था आया और आकर इतने ज़ोर से गरजा कि गड़रिये की सारी भेड़ें भग गईं और गड़रिया मारे डर के एक वृक्ष के ऊपर चढ़ गया। उस बलवान् शेर ने उन भागी हुई भेड़ों का पीछा किया। उन्हीं के झुण्ड में वह शेर भी भागा जा रहा था जो कि बचपन से गड़रिये के दबाव में भेड़ों के साथ रहता था। थोड़ी ही दूर के बाद एक जलाशय पड़ा। शेर उसे उल्लंघन कर जलाशय के उस किनारे पर खड़ा हो रहा और पीछे की ओर देखने लगा कि इतने में वह दूसरा बलवान् शेर भी जलाशय के इधर के किनारे पर पहुँच कर दहाड़ने लगा। भेड़ों के साथ के रहनेवाले शेर ने जल में उस सिंह की और अपनी दोनों की एक ही प्रकार की परछाहीं देख सोचा कि मैं भी तो वही हूँ जो यह है; मैं क्यों भागता हूँ। बस, 'मैं भी तो वही हूँ' यह ध्यान आते ही इसे अपने भूले हुये स्वरूप, बल और अधिकार का ज्ञान आ गया और

इसने भी दहाड़ मारी। इसके दहाड़ मारते ही वह बलवान् शेर तो ढीला पड़ वहाँ से लौट गया, क्योंकि उसने समझ लिया कि यह भेड़ों का समुदाय नहीं किन्तु सिंहों का समुदाय है और भेड़ें भी इसकी दहाड़ सुन इसके साथ से भग खड़ी हुईं और गड़रिया भी वैसा ही भय करने लगा जैसा इस बलवान् शेर से करता था। कहाँ तो इस पर शासन करता था और अपनी सोंट के साथ इसको इधर उधर घुमाता था, कहाँ फिर उसके पास भी जाने में भयभीत होने लगा।

१६६-शान्ति से लाभ

सिकन्दर यूनान का एक बड़ा ही दिग्विजयी और प्रसिद्ध बादशाह था। उसने सुना कि अमुक स्थान में एक बड़े ही पहुँचे हुए प्रसिद्ध महात्मा रहते हैं, सिकन्दर उन महात्मा की परीक्षार्थ वहाँ गया और समीप के ग्राम में ठहर कर एक दूत के हाथ कहला भेजा कि जाओ उस साधु से कह दो कि—"दिग्विजयी सिकन्दर बादशाह आया है और उसने आपको बुलाया है, अगर आप नहीं चलेंगे तो आपको मरवा देगा।" महात्मा ने पूछा कि—"दिग्विजयी का अर्थ क्या है?" उसने कहा—"सबको जीतनेवाला, सबको मार कर वश में करनेवाला।" महात्मा ने पूछा कि—"सिकन्दर कितना करोड़ दो करोड़ मन खाता है?" दूत ने कहा—"नहीं नहीं।" तब महात्मा ने कहा—"तो लाख दो लाख मन का खानेवाला तो हो ही गा?" दूत ने कहा—"नहीं महाराज, लगभग, आध सेर के, जितना कि अन्य लोग खाते हैं उतना ही अन्न सिकन्दर भी खाता है।" साधू ने कहा—"तुम्हारे बादशाह से तो यह वृक्ष अच्छा है जो बिना किसी की हिंसा किये मेरा पेट भर देता है।" दूत ने जाकर ऐसा

ही सिकन्दर बादशाह से कहा । दूत के मुख से यह वाक्य सुनते ही सिकन्दर के रोमांच खड़े हो गये और सिकन्दर जाकर उन महात्मा साधु के चरणों पर गिर पड़ा और बोला कि—"जिस सिकन्दर ने बड़े बड़े राजों के शिर नीचे किये अथवा बड़े बड़े राजाओं के शिर अपने चरणों पर गिरवाये, वही सिकन्दर आज आपकी शान्ति के सामने शिर को आपके चरणों पर रखते है।"

१७०—दो किसी के पास नहीं आते

राजा रणजीतसिंह जी के पास एक साधू गये और जाकर यह कहा कि—"महाराज, हमने कभी अशरफ़ी नहीं देखीं, सो आप कृपा कर हमें अशरफ़ी दिखला दें।" राजा साहब ने कुछ अशरफ़ियें महात्मा जी के सामने रखवा दीं। पुनः कुछ देर के बाद महात्मा ने राजा साहब से कहा कि—"अब ये अशरफ़ियें आप उठवा लें।" राजा साहब ने कहा कि—"अब ये अशरफ़ियें मुझे उठवा कर क्या करना है, आप ही ले जाइये।" महात्मा जी ने कहा कि—"हम तो संन्यासी हैं, हम द्रव्य नहीं छूते।" राजा ने कहा कि—"जिन पुरुषों को ब्रह्मज्ञान होता है या जिनको रासायनिक ज्ञान होता है, ये दो प्रकार के महात्मा हम लोगों के तो क्या बल्कि किसी के भी दरवाजे पर नहीं जाते।"

१७१—बनावटी महात्मा

एक पादरी साहब एक शहर में उपदेशार्थ गये। वहाँ जाकर एक मछली बेचनेवाले की दूकान के सामने उपदेश करने लगे, कुछ देर के बाद जब दूकानवाले का चित्त कुछ इधर उधर हुआ

तो पादरी साहब मछलीवाले की दूकान से एक मछली चुरा अपने पाकट में डाल कर चल दिये। यह बात दूकानवाले को मालूम हो गई। तब तो दूकानवाला वहाँ से दौड़ पादरीजी के पास आ हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया और कहा कि-"महाराज पादरी साहब, आपके उपदेश से तो मुझे ईश्वर मिल गया और आयतें उतरने लगीं। पहली आयत यह उतरी है कि "या तो मछली छोटी चुरावे या फिर पाकट बड़ी रखावे।"

१७२--दुष्टों से स्त्रियों की धर्म-रक्षा

महाराज भोज के राज्य में एक वररुचि नामक ब्राह्मण पण्डित रहता था। इस ब्राह्मण से किसी अपराध होने के कारण राजा ने उसको निकलवा दिया। ब्राह्मण जिस समय ग्राम से जाने लगा तो अपनी स्त्री से कह गया कि-"मेरा इतना इतना रुपया अमुक सेठ के यहाँ जमा है, अतः जब तुझे आवश्यकता पड़े तब मँगवा लेना।" जब वररुचि ब्राह्मण राज्य से चला गया तो कुछ काल के बाद उसकी स्त्री ने अपनी दासी को भेज उस सेठ से रुपया मँगवाया, किन्तु सेठ ने दासी से कहा कि इस समय मेरी बही वगैरा सब राजा के यहाँ चली गई हैं, इस लिए रुपया नहीं मिल सकता।" दासी ने आकर ऐसा ही वररुचि की स्त्री से कह दिया। ब्राह्मणी सुन कर विवश हो चुप रही। कुछ काल के पश्चात् वररुचि की स्त्री अपनी दासी के साथ अपने ग्राम के समीप जो नदी थी उसमें एक दिन स्नान करने गई। ब्राह्मणी स्नान करके लौटी आ रही थी कि इतने में वह सेठ जिसके पास वररुचि महाराज का रुपया जमा था मिल गया और वररुचि की स्त्री को देख मोह वश हो उसने दासी से पूछा कि—"यह किसकी स्त्री है?" दासी ने कहा कि—"यह महाराज वररुचि की स्त्री है।" तब तो सेठ ने

कहा कि—"इससे कह दो कि जब रुपये की आवश्यकता पड़े तब मँगा लें।" वररुचि महाराज की स्त्री ने कहा कि—"खैर रुपये की तो जब आवश्यकता पड़ेगी तब मँगा ही लूँगी पर आप मुझे सायंकाल को मिलें, आप से कुछ कार्य्य है।" यह वार्त्ता कह ब्राह्मणी कुछ ही दूर चली थी कि मार्ग में इसे कोतवाल साहब मिले और इसे देख मोह वश हो इससे बोले कि—"तू किसकी स्त्री है, कहाँ गई थी?" ब्राह्मणी ने कहा कि-"मैं वररुचि की स्त्री हूँ अमुक स्थान में रहती हूँ।" पुनः कोतवाल ने ब्राह्मणी से कुछ बुरा संकेत किया। तब ब्राह्मणी ने कहा-"आप दस बजे रात को मेरे मकान पर आइयेगा।" जब ब्राह्मणी कुछ आगे चली तो एक दीवान साहब मिले और उन्होंने भी ब्राह्मणी को देख मोहवश हो पूछा—"तू कहाँ रहती है, किसकी स्त्री है?" वररुचि की स्त्री ने इन्हें भी अपना समाचार बतला एक बजे रात को इन्हें भी बुलाया और ब्राह्मणी अपने घर पहुँची। सायंकाल को सेठजी बड़े उत्साह और सज धज से वररुचि महाराज के घर पहुँचे। ब्राह्मणी ने प्रथम ही अपनी दासी से तीन सकोरों में तीन प्रकार के रँग, एक में काला, दूसरे में लाल, तीसरे में पीला, घुलवा कर एक कोठरी में रख छोड़ा था और वहीं तीन बड़े बड़े सन्दूकचे मँगवा रक्खे थे। जब सेठजी पहुँचे तो वररुचि महाराज की स्त्री ने कहा कि—"आप अन्दर चलिये और वहाँ यह दासी आपको स्नान करायेगी, तेल लगायेगी और जब आप शुद्ध हो जायँगे तो मैं आपके पास आऊँगी।" जब सेठ जी मकान के अन्दर कोठरी में पहुँचे तो दासी ने स्नान करा काले रंग का तेल सेठजी के सम्पूर्ण शरीर में लगाया कि इतने में ही कोतवाल जी भी पहुँचे और ब्राह्मणी की जंजीर खटखटाई। वररुचि महाराज की स्त्री ने कहा—"कौन है?" इसने कहा—"मैं कोतवाल हूँ, खोलो किवाड़े।" तब तो

सेठ ने कहा कि—"मैं कहाँ जाऊँ, अब क्या करूँ।" ब्राह्मणी ने कहा कि—"आप इस सन्दूक़ में बैठ जाइये।" यह सुन सेठ सन्दूक़ में बैठ गये। ब्राह्मणी ने सन्दूक़ बन्द कर कोतवाल को किंवाड़े खोले और कुछ वार्त्ता के बाद कोतवाल से भी वैसा ही कहा कि—"आप मकान के अन्दर जाइये, आपको यह दासी स्नान वगैरह करा तेल लगायेगी। इस भाँति आप शुद्ध हूजिये। पुनः मैं आऊँगी।" तब तो कोतवाल साहब अन्दर पहुँचे और दासी ने उन्हें स्नान करा, लाल तेल इनके सारे शरीर में मल दिया। इतने ही में दीवान साहब पहुँचे और पहुँच कर दर्वाजे की ज़ंज़ीर खटखटाई। तब ब्राह्मणी ने कहा कि--"कौन है?" दीवान साहब ने कहा कि—"मैं दीवान हूँ।" यह सुन कोतवाल साहब ने कहा कि—"अब मैं कहाँ जाऊँ, क्या करूँ, अगर दीवान जान गया तो मेरी तो नौकरी जायगी!" वररुचि की स्त्री ने कहा कि—"आप इस सन्दूक़ में बैठ जाइये।" कोतवाल साहब जब सन्दूक़ में बैठ गये तब ब्राह्मणी ने वह भी सन्दूक़ बन्द कर दर्वाजे के किंवाड़ दीवान को खोल दिये और दीवान से भी इसी प्रकार कहा कि—"आप अन्दर चल कर शुद्ध हूजिये पुनः मैं आऊँगी।" जब दीवान साहब अन्दर पहुँचे तो दासी ने स्नानादि करा इनके शरीर भर में पीले तेल का रंग मल दिया कि इतने ही में वररुचि की स्त्री ने कहा कि—"हमारा एक आदमी आ गया, आप ज़रा इस सन्दूक़ में बैठ जाइये। पुनः मैं आप को निकाल लेऊँगी।" जब दीवानजी भी सन्दूक़ में बैठ गये तब ब्राह्मणी शीघ्र ही सन्दूक़ बन्द कर दुपट्टा तान सो रही और प्रातःकाल होते ही उसने राजा के यहाँ रिपोर्ट की कि—"मेरे यहाँ चोरी हो गई।" जब राजा के यहाँ से सिपाही नक़ब देखने आये तब ब्राह्मणी ने कहा कि—"मेरा इतना इतना धन तो चोर ले गये और मेरे घर में ये तीन सन्दूकें छोड़ गये हैं,

सो ले जाइये।" राजदूत वे तीनों सन्दूकें आदमियों के सिर पर लदा राजदरबार में पहुँचे और साथ ही वररुचि महाराज की स्त्री भी पहुँची। महाराज भोज ने पूछा कि—"तू कौन है, क्या हुआ?" ब्राह्मणी ने उत्तर दिया कि—"महाराज, मैं वररुचि की स्त्री हूँ, मेरे स्वामी अमुक अपराध से जब आपके राज्य से निकाले गये तब मुझ से कह गये थे कि मेरा इतना इतना रुपया अमुक सेठ के पास है, सो जब तुम्हें आवश्यकता पड़े तब मँगा लेना। सो मैंने उन सेठ के यहाँ से रुपया मँगाया परन्तु महाराज वह नाना प्रकार के बहाने करता है, रुपये नहीं देता और इस बात की मेरी ये तीनों सन्दूकें गवाह हैं।" राजा ने कहा—"यह कैसा?" तब तो स्त्री ने एक सन्दूक पर हथेली फटफटा कर कहा—"कहरे करिया देव! मेरा इतना रुपया सेठ पर है या नहीं?" तब तो सन्दूक के भीतर से सेठ बेचारा डर के कहता है कि—"हूँ हूँ।" इसी भाँति दूसरे से कहा कि—"कहरे पीले देव, मेरा इतना रुपया सेठ पर है या नहीं?" इसने भी कहा कि—"हूँ हूँ।" इसी भाँति तीसरे को भी पुकारा। राजा को यह दृश्य देख बड़ा आश्चर्य हुआ। तब ब्राह्मणी ने राजा से सब सच्चा वृत्तान्त कह सुनाया कि महाराज, जब मेरा पति आप के राज्य से निकाला गया तो अमुक सेठ के यहाँ इतना रुपया बतला गया था। जब मैंने उस से मँगाया तब तो उस ने दिया नहीं और एक दिन जब मैं स्नान को गई तो सेठ और आपके राज्य के कोतवाल और दीवान मुझे मिले और बुरी दृष्टि से देखा तो मैंने इन्हें बुलाया और ये तीनों मेरे घर पर मेरी इज्जत लेने गये थे, सो मैंने इस भाँति इन्हें संदूकों में बन्द किया है, सो आप इन्हें उचित दंड दें।" तब राजा ने सन्दूक से तीनों देवों को निकलवा उचित दण्ड दिया।

१७३—सुशिक्षित माता का बेटा

एक बार महाराज भोज अपने पाठशाला में विद्यार्थियों की परीक्षा लेने गये। जब राजा सब ब्रह्मचारियों की परीक्षा ले चुके तो अन्त में एक ब्रह्मचारी के सामने गये। राजा ज्योंही पहुँचे तो ब्रह्मचारी ने तुरन्त ही श्लोक बना कर पढ़ा कि—

त्वद्यशो जलधौ भोज निमज्जनभयादिव।
सूर्येन्दुबिम्बमिमतो धत्ते तुम्बिद्वयं नभः॥

अर्थ—महाराज, आपके यशरूपी समुद्र में डूबने के भय से आकाश सूर्य और चन्द्र इन दोनों को तूंबा बना बाँधे बना उस पर सवार हुआ है।

तब तो महाराज ने बालक की इस चातुर्यता को देख अध्यापक महाराज से पूछा कि—"श्रीमान् पण्डित जी, इस बालक के विशेष चतुर होने का कारण क्या है?" अध्यापक जी ने उत्तर दिया कि—"महाराज, इस बालक की माता संस्कृत पढ़ी हुई है और उसने इसे प्रथम घर में ही कुछ साहित्य पढ़ाया है।"

१७४—सब से बड़ा देवता कौन ?

एक राजा ने एक संन्यासी महाराज से पूछा कि—"महाराज, संसार में सब से बड़ा देवता कौन है?" संन्यासी महाराज ने साधारण ही राजा साहब को शालिग्राम की एक काली सी बटिया उठा कर दे दी और कहा—"यही सब से बड़े देवता हैं।" राजा साहब उस बटिया को अपने घर ले गये और उस की नित्य पूजा करने लगे। एक दिन राजा साहब ने शालिग्राम की बटिया पर कुछ अन्न का पदार्थ चढ़ाया था, इस कारण उस बटिया पर एक चूहा आकर उसे खाने लगा। जब राजा

ने यह दृश्य देखा तो कहा कि—"शालिग्राम को हम सब से बड़ा देवता मानते थे, आज तो इनके सिर पर चूहा चढ़ा है, बस चूहा ही सब से बड़ा देवता है।" पुनः राजा साहब चूहे की पूजा करने लगे। कुछ काल के पश्चात् एक दिन चूहा राजा साहब की पूजा का सामान खा रहा था कि इतने में बिल्ली आ गई और बिल्ली ने चूहे की ओर ज्योंही झपाटा मारा तो चूहा भगा। बस राजा साहब ने समझ लिया कि चूहा नहीं किन्तु बिल्ली ही सब से बड़ा देवता है और राजा साहब बिल्ली की पूजा करने लगे। कुछ ही काल के बाद एक दिन बिल्ली राजा साहब के पूजा के पदार्थ खा रही थी कि इतने में एक कुत्ते ने बिल्ली पर धावा किया और बिल्ली भागी। बस राजा साहब ने समझ लिया कि बिल्ली क्या बल्कि कुत्ता ही सब से बड़ा देवता है और वे उसी की पूजा करने लगे। कुछ दिन के बाद एक दिन ऐसा हुआ कि राजा साहब कुत्ते की पूजा की तय्यारी कर ही रहे थे कि इतने में कुत्ता जहाँ कि रानी साहब रसोई बना रही थीं चला गया, रानी साहब ने एक चैला उठा उस कुत्ते के जमाया। अब तो राजा यह दृश्य देख दोनों हाथ जोड़ रानी के पैरों पड़ गये और कहा कि—"अरे बड़ा ही धोका हुआ, हम व्यर्थ इधर उधर ढूँढ़ते रहे, सब से बड़ा देवता तो हमारे घर में ही मौजूद था" और उस दिन से वे नित्य रानी की पूजा करने लगे। कुछ काल के पश्चात् राजा साहब को रानी साहब से किसी काम के बिगड़ जाने पर क्रोध आया और राजा साहब ने उठा रानी साहब के पाँच छः हंटर रसीद किये। पुनः सोचे कि रानी क्या बल्कि सब से बड़ा देवता तो हम हैं। बस राजा उस दिन से अपनी ही पूजा यानी अच्छी तरह खाने पीने लगे। कुछ काल के बाद जब राजा साहब बीमार पड़े तो विशेष कष्ट होने पर इन के मुख से निकल गया—

"हा राम।" बस राजा ने समझ लिया कि मैं भी कुछ नहीं, संसार में सब से बड़ा देवता राम है। राजा साहब उसी दिन से राम की उपासना करने लगे और अन्त में मोक्ष प्राप्त की।

१७५—खुदा को दीमक खा गई

आप लोग सुन के चकित होंगे कि खुदा को दीमक खा गई, यह क्या और किस प्रकार खुदा को दीमक खा गई? लीजिये सुनिये जिस प्रकार खुदा को दीमक खा गई—

एक महादेव का मन्दिर जंगल में था। एक महाशय वहाँ पहुँचे तो देखा कि मन्दिर तो बड़ा अच्छा बना है, पर इस में मूर्ति नहीं। कुछ लोग वहाँ पशु चरा रहे थे जब उन से पूछा तो मालूम हुआ कि इसमें चन्दन काष्ठ की मूर्ति थी, उस को दीमक खा गई। वाहरे महादेव! जब तुम अपने को दीमक से नहीं बचा सके, तो अपने उपासकों को दुःखों से कैसे बचाओगे?

१७६--शुद्ध ही बुरे को शुद्ध कर सकता है

एक वैश्य को एक पण्डितजी ने भागवत की कथा सुनाई। जब सप्ताह समाप्त हुआ तो वैश्य ने कहा—"क्यों पण्डितजी महाराज, इस भागवत का तो यह महात्म्य है कि जो कोई कथा सुने उसके लिए विमान आवे क्योंकि जब श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित को कथा सुनाई थी तो उनके लिए विमान आया था फिर हमारे लिये क्यों नहीं आया?" पण्डितजी ने कहा कि—"अब कलियुग है इस लिए अब चतुर्गुण धर्म करने से वह फल होता है।" वैश्य ने ३००) उस कथा पर चढ़ाये थे अतः उस ने ९००) और जमा कर दिये और कहा—"महाराज, तीन बार और सुनाइये।" पण्डितजी ने सेठजी को तीन बार और सप्ताह सुनाई, पर विमान फिर भी न आया। अब तो विचारे

पण्डित जी भी बड़े ही चक्कर में पड़े कि यह क्या बात है? तब तो पण्डितजी सेठ को ले कर एक महात्मा के पास पहुँचे और सारा वृत्तान्त कह सुनाया कि—"महाराज, इन सेठजी को हमने लेख के अनुसार चार बार सप्ताह सुनाई, तब भी विमान न आया, पर शुकदेवजी के तो एक ही बार सुनाने पर राजा परीक्षित के लिए विमान आया था।" तब महात्माजी ने उठकर उन पण्डित महाराज और सेठ दोनों को बाँध कर डाल दिया। जब बहुत देर तक दोनों बँधे पड़े रहे तो दोनों एक दूसरे का मुँह ताकते रहे। तब महात्मा ने कहा कि—"क्यों एक दूसरे का मुँह देखते हो, खोल न लो?" कहा—"महाराज, हम नहीं खोल सकते, आप ही कृपा करके हमें खोल दीजिये।" महात्मा ने उन्हें खोल दिया और कहा—"देखो, जिस प्रकार तुम दोनों बँधे होते हुये एक दूसरे को नहीं खोल सकते थे, इसी प्रकार तुम दोनों विषय-वासनाओं से बँधे हो, अतः एक दूसरे को खोल मुक्त नहीं कर सकते पर श्रीशुकदेवजी महाराज शुद्ध थे, विषयों से मुक्त थे, इस लिए परीक्षित को खोल सके।"

नोट—दृष्टान्त बिलकुल असम्भव है, यानी परीक्षित के लिए भी विमान नहीं आया, पर उपयोगी होने के कारण लिखा।

१७७—अमृत नदी

एक अँग्रेज़ ने लण्डन में यह सुना कि हिन्दुस्तान में एक अमृत नदी है, अतः उसने इस नदी के अमृत जल पान करने की अभिलाषा से हिन्दुस्तान को पयान किया। जिस समय वह लण्डन से कलकत्ता में आकर पहुँचा तो वहाँ के लोगों से पूछा कि—"क्यों भाइयो यहाँ पर अमृत नदी कौन सी है?" लोगों कहा कि—"यहाँ अमृत नदी तो हम लोगों ने सुनी भी नहीं; पर गंगा नदी अवश्य है। अँग्रेज़ ने समझा शायद गंगा नदी

ही का नाम अमृत नदी हो, अतः उस ने हवड़ा के पुल के नीचे जहाँ गंगा का मट्टा गँदला जल था चिल्लू में उठा पान किया और कहा कि—"यह अमृत नदी तो नहीं वल्कि इसे नरक नदी तो अवश्य कह सकते हैं" और उदासीन होकर लौट पड़ा और सोच रहा था कि मैं इतनी दूर से व्यर्थ आया। कुछ दूर चलने पर उसे एक पण्डित मिला। पण्डित ने साहब बहादुर को उदासीन देख पूछा—"साहब, आप उदासीन क्यों हैं?" साहब ने कहा कि—"हिन्दुस्तानी लोग बड़े झूठे होते हैं।" पण्डित ने कहा—"कहिये तो कि हिन्दोस्तानी कैसे झूठे होते हैं।" उसने एक अखबार निकाल कर दिखाया कि—"देखो इसमें यह छपा है कि हिन्दुस्तान में एक अमृत नदी है, सो मैंने सर्वत्र पूछा पर कहीं पता न लगा और मैं लण्डन से यहाँ तक हैरान हुआ, व्यर्थ खर्चा उठाया।" पण्डित ने कहा कि—"आइये हम आप को अमृत नदी दिखलावें।" पण्डित ने साहब बहादुर को कानपुर ले जाकर उसी गंगा का जल पिलाया, तब साहब बहादुर ने कहा कि—"यह कुछ उससे अच्छा है।" तब पण्डित ने कहा कि—"आप कृपा कर थोड़ा और आगे बढ़िये जब साहब हरिद्वार पहुँचे तो पण्डित ने कहा कि—"हुजूर, यहाँ का तो जल पान कीजिये।" साहब ने कहा कि—"यह तो बहुत ही अच्छा जल है।" पण्डितजी ने साहब से प्रार्थना कर जब गंगोत्री पर ले जाकर जल पिलाया तो साहब ने कहा कि—"हाँ यह बेशक अमृत जल है और इसके पीने से यथार्थ में मनुष्य अमृत हो सकता।"

इसका दार्ष्टान्त यह है कि साहब बहादुर ने जो शिक्षारूप अमृत नदी सुनी थी, जब यहाँ आकर पूछा कि यहाँ शिक्षा में अमृत नदी कौन है, तो लोगों ने तन्त्रों को बतलाया। तंत्रों को देख साहब ने बड़ा शोक प्रकाशित किया। पुनः पण्डित ने पुराणों

को दिखाया तो साहब ने कहा कि इस में भी वही तंत्र-शिक्षा घुसी है। पुनः पण्डित ने स्मृतियों को दिखलाया, तब साहब ने कहा हाँ ये कुछ अच्छी हैं, पर कुछ गँदलापन अवश्य है। पुनः पण्डितजी ने उपनिषद् दिखलाई तो साहब की आत्मा बहुत शान्त हुई और कहा यह बड़ा ही उत्तम जल है। पुनः पण्डित जी ने गंगोत्री अर्थात् वेदोक्त दिखलाया तब तो साहब ने कहा कि हाँ यह बेशक अमृत नदी है और इसके पीने से मनुष्य अमृत हो सकता है।

१७८—सनातनधर्म की गाड़ी

कुछ लोगों का झुण्ड सफ़र करते जा रहा था, पर मंज़िले मक़सूद दूर होने के कारण लोगों ने सोचा कि यह मार्ग हम लोग बिना किसी तेज़ सवारी के ते न कर सकेंगे। पुनः सोचा कि आज कल सब सवारियों में अगर कोई तेज़ सवारी है तो रेल है, अतः वह झुण्ड यह विचार स्टेशन पर पहुँचा और टिकट ले लेकर गाड़ी पर सवार हुआ, पर गाड़ी में एञ्जिन न था और बहुत काल तक जब एञ्जिन न लगा तब कुछ लोग घबड़ा कर उतर पड़े और बाइसिकलों पर सवार हो चल दिये। जब कुछ काल और गाड़ी खड़ी रही और न चली तो लोगों ने सोचा कि इन सब गाड़ी में बैठनेवालों से तो वही अच्छे जो बाइसिकलों पर बैठ बैठ चले गये, अतः यह सोच कुछ लोग गाड़ी से और उतरे और दो दो घोड़ों की बग्घियों पर सवार हो हो चल दिये। पर वह गाड़ी फिर भी न चली तो कुछ काल के बाद लोगों ने सोचा कि हम लोगों से तो वही अच्छे जो दो घोड़ों की बग्घियों पर चले गये। पुनः उस गाड़ी से कुछ लोगों का झुण्ड और उतरा और उतर के तीन भैंसों की गाड़ी पर सवार हो हो और कोई कोई गधों पर सवार हो हो चल दिये, पर जो लोग धैर्य्य धारण किये बैठे रहे कि जब

टिकट बटा है और हम गाड़ी पर बैठे हैं तो कभी न कभी यह गाड़ी भी चलेगी। कुछ काल के पश्चात् एक एञ्जिन ने कि जिसमें दो लाल लाल शीशे सामने और एक हरा शीशा ऊपर लगा हुआ था बड़े ज़ोर से हाव हाव करते हुए आकर एक ऐसी टक्कर गाड़ी में लगाई कि टक्कर लगाते ही कुछ गिरोह डर कर उतर पड़ा कि कहीं गाड़ी लौट न जाय, बाक़ी और लोग बैठे रहे। कुछ ही देर के बाद वह गाड़ी भैंसे की गाड़ी और गधों की सवारीवालों को मिली। अब तो गाड़ी को आगे जाता देख भैंसों की गाड़ी तथा गधे की सवारी वालों ने बड़ा ही पश्चाताप किया। पुनः थोड़ी ही देर बाद जो दो दो घोड़ों की बग्घियों पर रवाना हुए थे, गाड़ी ने उन्हें भी पीछे किया, तब तो उन लोगों ने भी बड़ा ही पश्चाताप किया। पुनः कुछ ही देर के बाद गाड़ी ने बाइसिकलवालों को भी पीछे किया तब तो बाइसिकलवाले भी पछिताने लगे और सब के सब यह सोचने लगे कि अगर हम यह जानते कि यह गाड़ी सब से आगे निकल जायगी तो हम इससे कभी न उतरते। पर अब पछिताने से होता ही क्या है।

दृष्टान्त तो यह हुआ पर इसका दार्ष्टान्त यह है कि यह वैदिक धर्मरूपी गाड़ी जिसमें कि सम्पूर्ण संसार के मनुष्य मोक्षरूपी मंज़िले मक़सूद के जाने के लिये बैठे थे पर उस गाड़ी में एञ्जिन न होने के कारण (यानी महाभारत में सब विद्वानों के नाश हो जाने के कारण इस वैदिक धर्म की गाड़ी का घसीटनेवाला कोई एञ्जिन अर्थात् विद्वान् न रहा था) प्रथम जो झुण्ड उतर बाइसिकल पर सवार हुआ वह वाममार्ग के बाद बौद्ध मत हुआ जो 'अहिंसा परमोधर्मः' की बाइसिकल पर सवार हो चल पड़ा था पुनः जो दूसरा झुण्ड दो दो घोड़ों की बग्घियों पर चला था वह मज़हब इसलाम दो घोड़ों की

दम्यी यानी खुदा और रसूल, इन दो को मानकर चल पड़े। पुनः तीसरा झुण्ड तीन भैंसों की गाड़ी तथा गधों की सवारीवाला ईसाई मत था, जिसमें तीन भैंसों की गाड़ी पिता, पुत्र, पवित्र आत्मा गधे की सवारी आदि मान कर चलने लगे। पर कुछ काल के बाद उस वैदिक धर्म की गाड़ी में स्वामी दयानन्द बालब्रह्मचारी रूप एञ्जिन जिसके दोनों नेत्र सुर्ख और दिमाग विद्या से सब्ज़ यही एञ्जिन के तीन शीशे थे, हाव हाव करना उनका संस्कृत भाषण था, उस एञ्जिन की ठोकर खण्डन मण्डन थी जिससे कितने ही भयभीत हो कोई उन्हें अपना शत्रु समझ, कोई ईसाई आदि समझ गाड़ी से उतर पड़े और जो हिम्मत किये बैठे रहे उन सबको मय उस गाड़ी के वह एञ्जिन लेकर सब से आगे निकल गया। अब तो अपने अपने पेट में सभी मतवादी चाहे ऊपर कुछ भी कहें पर इस गाड़ी में बैठने की इच्छा करते हैं, पर इस गाड़ी में यह भाव नहीं कि आगे निकलनेवालों को न बिठावे। यह एञ्जिन ऐसा है कि स्थान स्थान पर खड़ा हो हो आगेवाले भाइयों को बिठलाता जाता है और एक दिन आयेगा जब आप लोग संसार को इसी गाड़ी पर सवार देखेंगे।

तसनीफ़ को समाज के फैलाओ हर तरफ़।
प्रकाश वेद पाक का पहुँचाओ हर तरफ़॥
संसार को दिखा दो कि किनके हो तुम सपूत।
सन्तान आर्य्यों के सपूतों के तुम हो पूत॥
दिखलादो धर्म-शक्ति को तुम में है जो स्वरूप।
तुमको न कोई कह सके फिर कलियुगी कपूत॥
इक इक नियम पै जब कि हज़ारों शहीद हों।
तब जानना कि आपके जीवन मुफ़ीद हों॥

छप रहा है !　　　　　　छप रहा है !!

स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती कृत

उपनिषद्-प्रकाश

हिन्दी का
द्वितीय संस्करण

मूल्य २॥=)

इस ग्रन्थ रत्न की उर्दू की अनेक आवृत्तियां निकल चुकी हैं। हिन्दी में इस उपयोगी ग्रन्थ रत्न की प्रथमावृत्ति सन् १९२१ में हुई, पर हिन्दी जगत की मांग विशेष होने के कारण पूरी न होती देख एक वर्ष में ही द्वितीयावृत्ति का शुभ अवसर प्राप्त हुआ। इस ग्रन्थ के ग्राहकों के आर्डर छपने से पूर्व आने पर डाक व्यय माफ़ होगा।

श्यामलाल वर्मा

आर्य-बुकसेलर, बरेली।

सिर्फ़ टाइटिल—एंग्लो अरबिक प्रेस, माल रोड, लखनऊ में छपा—१९२२